मुनि वैशम्पयान जी कृत

श्री हरिवंश महापुराण

सचित्र व सरल
हिन्दी भाषा में

अनुवादक व संग्रहकर्ता
पं० श्री विवेक कौशिक
विश्वाकमित्र

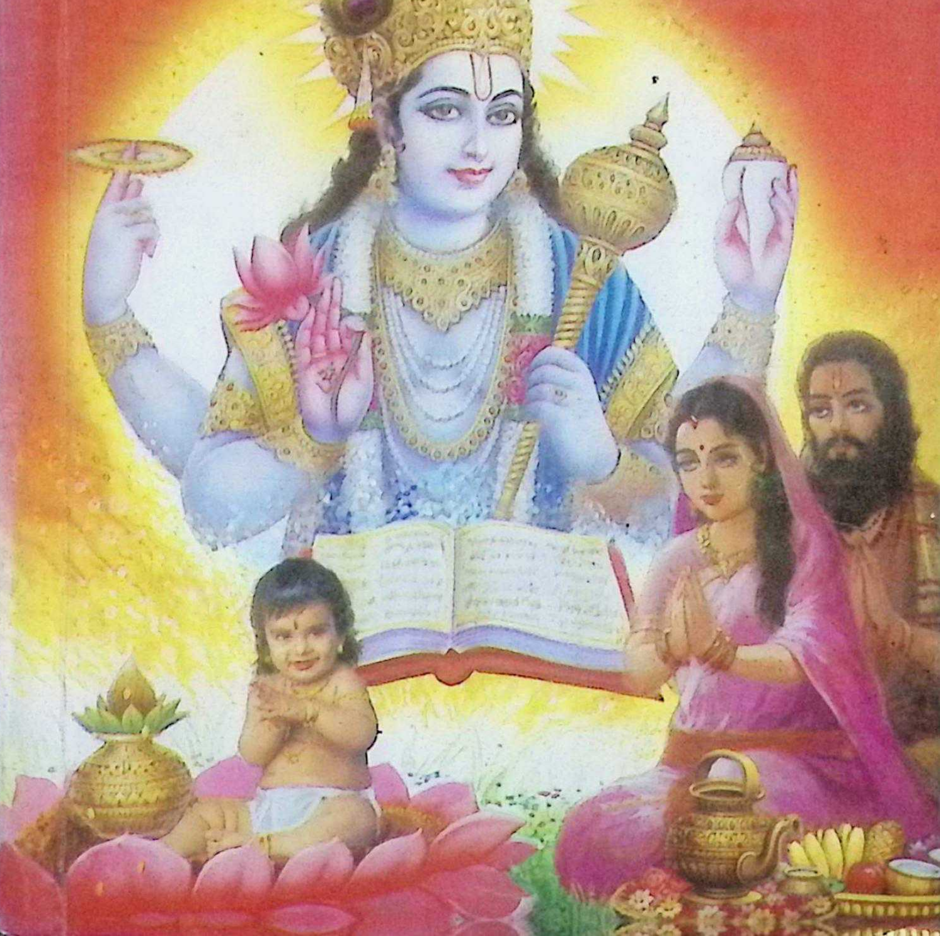

श्री विष्णुया: नम:

मुनि वैशम्पायन जी कृत

पुत्र एवं संतान लाभ प्रदाता अद्‌भुत ग्रंथ

श्री हरिवंश पुराण

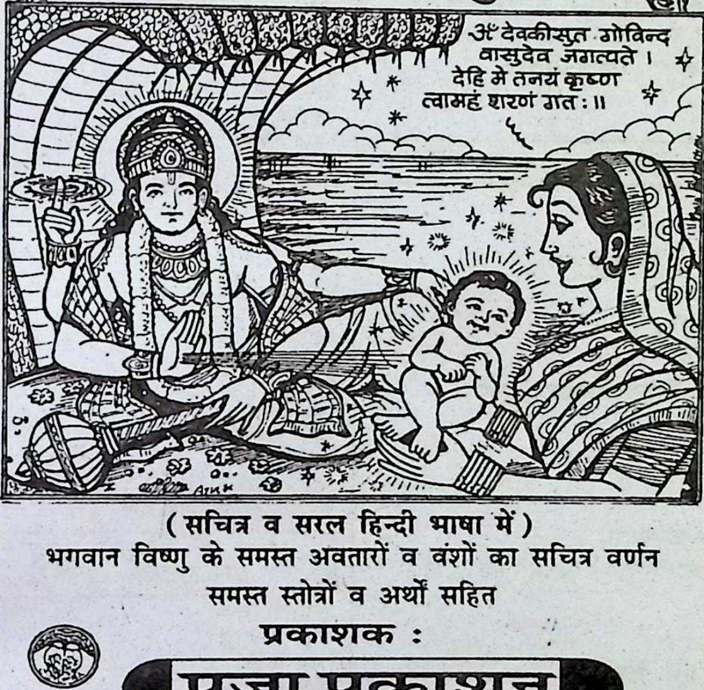

(सचित्र व सरल हिन्दी भाषा में)

भगवान विष्णु के समस्त अवतारों व वंशों का सचित्र वर्णन

समस्त स्तोत्रों व अर्थों सहित

प्रकाशक :

पूजा प्रकाशन

द्वारा

मुम्बई अक्षरों में मुद्रित

फोन : 3625241, 3626450 मूल्य : 160/ रुपये

प्रकाशक :

पूजा प्रकाशन

पुल कुतुब रोड, सदर बाजार,
दिल्ली-110006
फोन : दुकान : 3625241, 3626450

प्रमुख विक्रेता :

गर्ग कम्पनी बुकसेलर

पुल कुतुब रोड, (सदर बाजार रेलवे स्टेशन के बराबर में, दरगाह के बाहर)
सदर बाजार, दिल्ली-110006

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित है।

संस्करण : बिल्कुल नया

अनुवादक व संग्रहकर्ता :
पं. श्री विवेक कौशिक 'विश्वमित्र'

कम्प्यूटर ग्राफिक्स :
रावन कम्प्यूटर्स,
गांधी नगर, दिल्ली-110031 फोन : 2220075

मुद्रक :
एम. एस. प्रिंटर्स,
लाल कुआं, दिल्ली-110006

हमारे अन्य धार्मिक प्रकाशन

(सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशित)

श्रीरामचरित मानस (रामायण-तुलसीकृत)
श्रीमद्भागवत महापुराण (सुखसागर)
श्री शिव महापुराण सरल हिन्दी में
श्री विष्णु महापुराण सरल हिन्दी भाषा में
श्रीमद् बाल्मीकि रामायण, महाभारत, प्रेमसागर
श्रीमद् देवी भागवत सरल हिन्दी भाषा में
श्रीमद्भागवद्गीता (रंगीन चित्रों सहित)
श्री दुर्गा सप्तशती सरल हिन्दी में
व्रत और त्यौहार बारह महीनों के
नित्य कर्म पद्धति (सम्पूर्ण)
सर्वदेव पूजा पद्धति
कर्मकाण्ड भास्कर
पूजा भास्कर
सर्व देव प्राण प्रतिष्ठा
एकादशी माहात्म्य
आरती संग्रह
चालीसा पाठ संग्रह
कबीर साहब की पुस्तकें
शिरडी के साई बाबा के सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य

पूज्य श्री रामचन्द्र केशवजी डोंगरे महाराज

श्रीमद्भागवद् रहस्य
श्री तत्वार्थ रामायण
संत वाणी
रामायण रहस्य
हरि का मार्ग
भागवती प्रसादी
ज्ञान निर्झर
पाप प्रायश्चित और प्रभु
रामायण प्रसादी, गोपी गीत

पूज्य श्री मोरारी बापू हरियाणवी कृत

रामायण रसामृत
रामायण प्रवचन
भरत चरित्र
शिव कथा
संक्षिप्त रामायण, बापू का जीवन

नोट : निःसंतान दम्पत्ति को सन्तान प्रदान करने वाला, निर्धन को धनवान बनाने वाला और महापातकी मनुष्य के समस्त पापों को नाश कर देने में समर्थ ये 'हरिवंश पुराण' सुनने से अथवा पढ़ने से कलियुग में व्यक्ति को पापों से मुक्ति व संतान की प्राप्ति हो जाती है।

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक		पृष्ठ संख्या
१.	प्राक्कथन	७
२.	पथ निर्देशन	१५
३.	पुराण माहात्मय	२१
४.	पुराण श्रवण विधि एवं फल	२३
५.	नवाह्न व्रत के नियम व सावधानियाँ	२७
६.	सन्तान गोपाल मन्त्र, यन्त्र व अनुष्ठान विधि	३१
७.	सन्तान गोपाल स्तोत्र (अर्थ सहित)	३४

पुराण आरम्भ, हरिवंश पर्व

१.	आदि सृष्टि की उत्पत्ति	५१
२.	स्वायम्भुव मनु का वंश	५५
३.	मरुतों की उत्पत्ति नारद का पुनर्जन्म	६२
४.	भगवान विष्णु द्वारा पालन व्यवस्था	७२
५.	चौदह मन्वन्तरों का वर्णन	७८
६.	वैवस्वत मनु, यम, शनैश्चर आदि के जन्म का वर्णन	८६
७.	वैंवस्वत मनु का वंश	९१
८.	इंक्ष्वाकु वंश का वर्णन	९५
९.	गालव ऋषि का जन्म व त्रिशंकु की कथा	९७
१०.	सगर की उत्पत्ति की कथा	१०१
११.	श्राद्ध की विधि व फल	१०६
१२.	राजा ब्रह्मदत्त का चरित्र तथा वंश	११६
१३.	सोमवंश-चन्द्रवंश का वर्णन	१२०
१४.	यदुवंश-वृष्णिवंश का वर्णन	१३७
१५.	भगवान विष्णु के अवतारों का वर्णन	१५८

विष्णु पर्व (पूर्वार्द्ध)

१.	नारद-कंस संवाद	१७७

क्रमांक		पृष्ठ संख्या
२.	बालकृष्ण के चरित्र	१८३
३.	पांचजन्य शंख की प्राप्ति	२०७
४.	मथुरा पर जरासंध का आक्रमण	२०९
५.	कालयवन का वध	२१२
६.	रुक्मिणी स्वयंवर व हरण	२१८
७.	वैदर्भी स्वयंवर तथा रुक्मी वध	२२३
८.	नरकासुर वध तथा पारिजात की कथा	२३१
९.	पुण्यक व्रत का वर्णन	२५०

विष्णु पर्व (उत्तरार्द्ध)

१.	षट्पुरवासी निकुम्भ आदि का वध	२५४
२.	अन्धकासुर के वध की कथा	२६०
३.	भानुमती का अपहरण	२६५
४.	प्रद्युम्न द्वारा वज्रनाभ वध तथा प्रभावती से विवाह	२६९
५.	कृष्ण की संतानों का वर्णन	२७९
६.	प्रद्युम्न का अपहरण व शम्बरासुर वध	२८२
७.	सहस्रबाहु बाणासुर की कथा	२९१
८.	भगवान शंकर और श्रीकृष्ण का युद्ध	३०१

भविष्य पर्व

१.	जनमेजय का वंश तथा कलियुग का वर्णन	३१६
२.	राजा जनमेजय द्वारा यज्ञ का होना	३२४
३.	सनातन ब्रह्म, सनातन धर्म तथा कर्मफल	३२७
४.	विष्णु द्वारा इन्द्र को बंदी बनाने वाले मधु का वध	३३४
५.	समुद्र मंथन में देवताओं की सहायता	३३७
६.	विष्णु द्वारा अन्य प्रमुख अवतरण	३४१
७.	श्रीकृष्ण की कैलाश यात्रा	३५६
८.	पराक्रमी राजा पौण्ड्रक की कथा	३६१
९.	हंस और डिम्भक का वृत्तान्त	३६९
१०.	समस्त सहयोगियों सहित हंस व डिम्भक वध	३८०
११.	नन्द, यशोदा आदि से मिलकर कृष्ण का द्वारिका लौटना	३९७
१२.	महाभारत की कथा श्रवण का फल	३९९
१३.	त्रिपुरासुर वध	४०२

क्रमांक पृष्ठ संख्या

१४. हरिवंश कथा का उपसंहार....................४०६
१५ विष्णु के नाभिक कमल का वृत्तांत....................४१०
१६. हरिवंश पुराण को सुनने का फल....................४११

पुराण समाप्त

पुराण में आए प्रमुख स्तोत्र (अर्थ सहित)

१. शिव स्तोत्र-१ (पुत्रदायक)....................४१५
२. विष्णु स्तोत्र-१ (पुत्रदायक)....................४२२
३. विष्णु स्तोत्र-२ (पापनाशक)....................४३३
४. हरिहर स्तोत्र (पूजन के लिए)....................४४१
५. आर्या स्तोत्र (सर्वकामना सिद्धि)....................४४२
६. शिव स्तोत्र-२ (विजयदायक)....................४४९
७. देवी स्तोत्र (संकट-बंधन मुक्ति)....................४५५
८. हरिहरात्मक स्तोत्र-२ (सर्वार्थ सिद्धि के लिए)....................४६३
९.. मोक्षविंशक स्तोत्र (मोक्षदायक)....................४७१
१०. श्री विष्णुशतनामस्तोत्रम्....................४७८

आरती जय जगदीश हरे

ओ३म् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे । टेक ।
भक्त जनन के संकट, क्षण में दूर करे । ओ३म् १ ।
जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनसे मन का ।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का । ओ३म २ ।
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ मैं किसकी ।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी । ओ३म् ३ ।
तुम पूरन परमात्मा, तुम अन्तर्यामी ।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी । ओ३म् ४ ।
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता ।
मैं मूरख खलकामी, कृपा करो भर्ता । ओ३म् ५ ।
तुम हो एक अगोचर सबके प्राण पति ।
किस विधि मिलूँ दयामय तुमको मैं कुमती । ओ३म् ६ ।
दीनबन्धु दुखहर्ता, तुम रक्षक मेरे ।
करुणा हस्त उठाओ, द्वार पड़ा तेरे । ओ३म् ७ ।
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा ।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ संतन की सेवा । ओ३म् ८ ।
श्री जगदीश जी की आरती जो कोई नर गावे ।

श्री कृष्ण जी की आरती

आरती बालकृष्ण की कीजै, अपनों जनम सुफल करि लीजै ।
श्रीयशुदा को परम दुलारौ, बाबा की अंखियन कौ तारो ।
गोपिन के प्राणन को प्यारौ, इन पै प्राण निछावरि कीजै ॥ आरती॰ ॥
बलदाऊ कौ छोटो भैया, कनुआँ कहि कहि बोलत मैया ।
परम मुदित मन लेत वलैया, यह छबि नयननि में सरि लीजै ॥ आरती॰ ॥
श्री राधावर सुघर कन्हैया, ब्रजजन कौ नवनीत खवैया ।
देखत ही मन नयन चुरैया, अपनौ सरबस इनकूं दीजे ॥ आरती॰ ॥
तोतरि बोलनि मधुर सुहावै, सखन मधुर खेलत सुख पावै ।
सोई सुकृती जो इनकूं ध्यावै, इनकूं अपनो करि लीजै ॥ आरती॰ ॥

प्राक्कथन

'पुराण' का सामान्यतया शाब्दिक अर्थ है पुराना या पुरातन। 'पुराभवम्' या पुरानीयते' इस विग्रह से 'पुराण' की निष्पत्ति होती है। दोनों विग्रहों के आधार पर कहा जा सकता है कि आख्यायिक आदि के एकत्र संकलन का नाम पुराण है और ऐसा ही है भी। समस्त पुराणों में कथाओं के माध्यम से ज्ञान मिलता है। ये कथाएँ मूलतः दो प्रकार की हैं। पहली सूर्यवंश या चन्द्रवंश का इतिहास कहने वाली। दूसरी कूट या सांकेतिक शब्दों में दर्शन व अध्यात्म विद्या के रहस्यों का ज्ञान देने वाली।

पुराणों की विषय-वस्तु को मूलतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम—सृष्टि की उत्पत्तिः क्रम तथा विकास। दूसरा—सूर्य व चन्द्रवंशी राजाओं व अवतारों का इतिहास तथा तीसरा—सृष्टि का अन्त अथवा भविष्य। इस दृष्टि से पुराणों को केवल इतिहास मान लेना कोरी मूर्खता होगी। क्योंकि इतिहास केवल भूतकाल की ही घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण होता है। जबकि पुराणों में भविष्य का वर्णन भी है—जो आज अक्षरशः सत्य प्रमाणित होता जा रहा है। दूसरे पुराणों में वेदों तथा उपनिषदों के ज्ञान का सार भी कथाओं के माध्यम से

सांकेतिक या कूट रूप से पिरोया गया है।

विद्वानों ने पुराण के पाँच लक्षण कहे हैं–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

अर्थात्–सर्ग (कारण सृष्टि), प्रतिसर्ग (कार्य) पुनःसृष्टि व लय, देवताओं व पितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार होता है), तथा वंशानुचरित (सूर्य व चंद्रवंशी इतिहास) पुराण के यह पाँच लक्षण हैं।

प्रमुख पुराणों की संख्या १८ मानी गई है। इनमें ६ पुराण ब्रह्मा से, ६ पुराण विष्णु से तथा ६ पुराण शिव से सम्बन्धित हैं। अन्य समस्त समानताओं के बाद भी इन पुराणों में एक विरोधाभास जबरदस्त तरीके से मिलता है। ब्रह्मा संबंधी पुराणों में ब्रह्मा का, विष्णु संबंधी पुराणों में विष्णु का तथा शिव संबंधी पुराणों में शिव का वर्चस्व एवं अधिकार अन्य सभी पर सिद्ध किया गया है। इसके दो कारण हो सकते हैं। प्रथम–पुराणकार की अपने ईष्ट के प्रति श्रद्धा तथा दूसरा ज्ञानयात्रा के लिए अपनाए जाने वाले अपने पृथक मार्ग का अनुभव। इस दूसरे कारण को ढंग से समझने के लिए थोड़ा-सा विस्तार से जाना होगा।

ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा इच्छाशक्ति—ये तीन ही शक्तियाँ मूलरूप से किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक होती हैं। जैसे यदि हमें रेलवे स्टेशन जाना है, तो सर्वप्रथम हमें मार्ग का ज्ञान होना चाहिए। रेलवे स्टेशन को पहचान सकें, इसका भी ज्ञान होना चाहिए तभी हम रेलवे स्टेशन तक पहुँच सकेंगे। दूसरे—हमारे भीतर वहाँ तक जाने की सामर्थ्य होनी चाहिए, अथवा कार्य के (पहुँचने के) साधन होने चाहिएँ। केवल ज्ञान से ही हम रेलवे स्टेशन नहीं पहुँच सकते। तीसरे—हम रेलवे स्टेशन जाने का संकल्प या इरादा करें, तभी हम वहाँ पर जा सकेंगे। यदि हमारी इच्छा ही न हो, तो ज्ञान व सामर्थ्य होते हुए भी हम रेलवे स्टेशन नहीं जाएँगे। अतः इन शक्तियों के अभाव में कोई भी कार्य या व्यवहार नहीं हो सकता।

यह तीनों शक्तियाँ अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण व अद्वितीय हैं। कहना कठिन है कि तीनों में से कौन-सी शक्ति श्रेष्ठ है ? तथापि अपनी-अपनी श्रद्धा, समझ व अनुभव के आधार पर लोगों की इस श्रेष्ठता के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न राय हो सकती हैं। ज्ञानमार्गी ज्ञान को, कर्ममार्गी क्रिया को तथा हठ या संकल्प मार्गी इच्छा को श्रेष्ठ कहेंगे। यही पुराणों में आई विपरीतता के दूसरे

सांकेतिक या कूट रूप से पिरोया गया है।

विद्वानों ने पुराण के पाँच लक्षण कहे हैं-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

अर्थात्-सर्ग (कारण सृष्टि), प्रतिसर्ग (कार्य) पुनःसृष्टि व लय, देवताओं व पितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार होता है), तथा वंशानुचरित (सूर्य व चंद्रवंशी इतिहास) पुराण के यह पाँच लक्षण हैं।

प्रमुख पुराणों की संख्या १८ मानी गई है। इनमें ६ पुराण ब्रह्मा से, ६ पुराण विष्णु से तथा ६ पुराण शिव से सम्बन्धित हैं। अन्य समस्त समानताओं के बाद भी इन पुराणों में एक विरोधाभास जबरदस्त तरीके से मिलता है। ब्रह्मा संबंधी पुराणों में ब्रह्मा का, विष्णु संबंधी पुराणों में विष्णु का तथा शिव संबंधी पुराणों में शिव का वर्चस्व एवं अधिकार अन्य सभी पर सिद्ध किया गया है। इसके दो कारण हो सकते हैं। प्रथम-पुराणकार की अपने ईष्ट के प्रति श्रद्धा तथा दूसरा ज्ञानयात्रा के लिए अपनाए जाने वाले अपने पृथक मार्ग का अनुभव। इस दूसरे कारण को ढंग से समझने के लिए थोड़ा-सा विस्तार से जाना होगा।

ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा इच्छाशक्ति–ये तीन ही शक्तियाँ मूलरूप से किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक होती हैं। जैसे यदि हमें रेलवे स्टेशन जाना है, तो सर्वप्रथम हमें मार्ग का ज्ञान होना चाहिए। रेलवे स्टेशन को पहचान सकें, इसका भी ज्ञान होना चाहिए तभी हम रेलवे स्टेशन तक पहुँच सकेंगे। दूसरे–हमारे भीतर वहाँ तक जाने की सामर्थ्य होनी चाहिए, अथवा कार्य के (पहुँचने के) साधन होने चाहिएँ। केवल ज्ञान से ही हम रेलवे स्टेशन नहीं पहुँच सकते। तीसरे–हम रेलवे स्टेशन जाने का संकल्प या इरादा करें, तभी हम वहाँ पर जा सकेंगे। यदि हमारी इच्छा ही न हो, तो ज्ञान व सामर्थ्य होते हुए भी हम रेलवे स्टेशन नहीं जाएँगे। अतः इन शक्तियों के अभाव में कोई भी कार्य या व्यवहार नहीं हो सकता।

यह तीनों शक्तियाँ अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण व अद्वितीय हैं। कहना कठिन है कि तीनों में से कौन-सी शक्ति श्रेष्ठ है ? तथापि अपनी-अपनी श्रद्धा, समझ व अनुभव के आधार पर लोगों की इस श्रेष्ठता के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न राय हो सकती हैं। ज्ञानमार्गी ज्ञान को, कर्ममार्गी क्रिया को तथा हठ या संकल्प मार्गी इच्छा को श्रेष्ठ कहेंगे। यही पुराणों में आई विपरीतता के दूसरे

कारण का रहस्य है।

ज्ञान-शक्ति ही ब्रह्मा हैं (ज्ञान शक्ति के भौतिक देवता सूर्य तथा अभौतिक देवता ब्रह्मा कहे जाते हैं)। क्रिया-शक्ति ही विष्णु हैं(क्रिया के लिए ऊर्जा चाहिए। जिससे भौतिक देवता अग्नि तथा अभौतिक देवता श्री विष्णु कहे गए हैं)। इच्छा-शक्ति ही शिव हैं (इच्छा शक्ति के भौतिक देवता चन्द्रमा व अभौतिक शिव कहे गए हैं)। इन तीनों शक्तियों को ही सर्वोपरी कहा है। इसीलिए (ज्ञान की प्रधानता के कारण) सृष्टि ब्रह्मा का क्षेत्र है। पालन अथवा पुष्टी (कर्म की प्रधानता के कारण) विष्णु का क्षेत्र है। और संहार या लय (संकल्प की प्रधानता के कारण)शिव का क्षेत्र है। इसी देवत्रयी के लिए आँग्ल भाषा में 'GOD' शब्द का प्रयोग हुआ है—अर्थात्—GENRETER, OPERATOR तथा DESTROYER. इसी प्रकार प्रणव मंत्र ॐ भी (अकार+उकार+मकार) इसी देवत्रयी का प्रतीक है।

इस विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि पुराणों का यह विरोधाभास मात्र दृष्टिभ्रम है। उससे पुराणों की प्रमाणिकता, औचित्य तथा उपयोगिता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता। हम यह कहें कि 'कोई पैदा हुआ, बड़ा हुआ और मर गया।' अथवा यह कहें

कि 'कोई बड़ा हुआ, मर गया फिर पैदा हो गया।' अथवा यह कहें कि 'कोई मर गया, फिर पैदा हुआ, फिर बड़ा हो गया।'—तीनों ही बातों में कहने का तरीका अलग है, मगर मूल तथ्य एक ही है।

'हरिवंश पुराण' वास्तव में 'महाभारत' का उपसंहार कहा जा सकता है। महाभारत में जो कुछ कहने से रह गया है—जैसे ५६ करोड़ यदुवंशियों का 'मूसलपर्व' में आपस में युद्ध करके मर जाने का संक्षिप्त वर्णन, किन्तु उनकी वीरता की कथाओं का वर्णन न मिलना। अन्य महारथियों तथा यदुवंशियों के महानायक कृष्ण के संदर्भ में संपूर्ण विवरणों का न मिलना और जितना मिलना, वह विस्तार में न मिलना आदि—वह सब 'हरिवंश पुराण' में कहकर उस कमी को पूर्ण किया गया है। इसका प्रमाण है कि राजा जनमेजय महाभारत कथा सुनकर पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए थे। जब उन्होंने वेशम्पायन ऋषि से 'हरिवंश पुराण' सुना तब वे पूर्ण संतुष्ट हो पाए।

'हरिवंश पुराण' के नायक श्री कृष्ण हैं। कृष्ण के जीवन के भी उत्तरार्ध का अथवा प्रौढ़ावस्था का चरित्र इस पुराण में विशेष रूप से मुखरित हुआ है, जबकि महाभारत में कृष्ण के बाल्यावस्था से युवावस्था तक

के ही चरित्र का वर्णन मिलता है। अन्य पुराणों में भी कृष्ण की प्रौढ़ावस्था के चरित्र के संक्षिप्त प्रसंग ही मिलते हैं। हरिवंश पुराण ही कृष्ण के चरित्र के विविध आयामों को सविस्तार दिखाता है। यह इस पुराण की एक महान विशेषता है। इसकी दूसरी विशेषता पुत्र व संतानप्रदान करने वाला इसका श्रवण प्रभाव है। –जो वंध्या स्त्री को भी जननी बना सकता है।

'महाभारत' का खिल (एपैंडिक्स) होते हुए भी इस ग्रंथ में पुराणों के पाँचों लक्षण विद्यमान हैं। अतः इसे पुराण कहा जाता है। यद्यपि मूल १८ पुराणों में इसका स्थान नहीं है। तथापि यह किसी भी दृष्टि से अन्य पुराणों से हीन नहीं सिद्ध होता और पूरी गरिमा रखता है। यह भी इस पुराण की एक विशेषता है।

'हरिवंश पुराण' में–हरिवंशपर्व, विष्णुपर्व तथा भविष्यपर्व–तीन खंड हैं। संख्या में कम होते हुए भी आयतन में बहुत बड़े हैं। विशेषकर अंतिम दोनों पर्व। इतने बड़े पुराण को एक छोटी सी पुस्तक में समेटना गागर में सागर भरने जैसा कार्य है। मैंने पूर्ण प्रयास किया है कि इस कार्य में पुराण के महत्वपूर्ण प्रसंग अथवा सारगर्भित अंश छूटने न पाएँ तथा इसका प्रवाह भी बाधित न हो। भाषा शैली को भी सामान्य स्तर का

रखने का प्रयास किया है ताकि पाठकों को किसी प्रकार की क्लिष्टता का बोध न हो और सम्पूर्ण ग्रंथ की रोचकता व सरसता का वे सहजता से आस्वादन कर सकें। जहाँ आवश्यक समझा है, वहाँ महत्वपूर्ण एवं लाभकारी मंत्रों तथा स्तोत्रों को ज्यों का त्यों अर्थ सहित ले लिया है, जिससे पाठकों को 'हरिवंश पुराण' का पूर्ण लाभ प्राप्त हो सके।

संयोगवश इसके चित्रांकन का उत्तरदायित्व भी प्रकाशक मित्र ने मुझे ही सौंप दिया है। मैंने चित्रों को पौराणिक शैली में रखने का तथा विषय वस्तु के साथ न्याय करने का भरसक प्रयास किया है। महत्त्वपूर्ण व रोचक प्रसंगों को ही चित्रांकन के लिए चुना है। गुरुजनों के आशीर्वाद तथा भगवान् एकलिंग की अनुकम्पा से यह महत्त्वपूर्ण, बृहत्, गुरुत् एवं कल्याण कार्य मैं कर पाया। पाठक अवश्य ही इससे लाभान्वित होंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। फिर भी यदि कहीं कोई अवरोध, त्रुटियाँ, अपूर्णता का आभास हो, अथवा लेखन में दुरुहता की अनुभूति हो तो प्रबुद्ध पाठकगण कार्य की महत्ता व गुरुता तथा मुझ अकिंचन की अपात्रता, अयोग्यता, अल्पज्ञान, अल्पायु एवं अनुभव हीनता को दृष्टि में रखते हुए मुझे क्षमा करेंगे। तथा

प्रकाशक को इस विषय में अपनी अमूल्य राय व सुझावों से सूचित करने की कृपा करेंगे, जिससे नवीन संस्करण में सुधार किया जा सके। समस्त विश्व के कल्याण की तथा संपूर्ण विश्व शांति की शुभेच्छा के साथ।

–'विश्वमित्र'

पुनःश्च– 'हरिवंश माहात्म्य' में कुल ६, हरिवंश पर्व में कुल ५५, 'विष्णुपर्व' में कुल १२८ (जिनमें ८१ 'पूर्वार्ध में तथा शेष 'उत्तरार्ध' में हैं।), तथा 'भविष्य पर्व' में कुल १३५ अध्याय हैं। अर्थात् कुल मिलाकर पूरे पुराण में २६९ अध्याय हैं; जो 'सन्तान गोपाल अनुष्ठान विधि' को मिलाकर २७० हो जाते हैं। हमने रूपांतरण में अध्यायों को पृथक-पृथक सूचित नहीं किया है।

पथ निर्देशन

इससे पूर्व कि इस पुराण को पढ़ना आरम्भ करें--इसे अवश्य पढ़ लें।

पुराण, शास्त्र, धर्मग्रंथ, वेद, उपनिषद् आदि पढ़ने के पीछे मूलतः तीन ही कारण होते हैं। पहला—अपनी संस्कृति में रुचि, जिज्ञासा की शांति, ज्ञान-वर्धन अथवा आत्मसंतुष्टि प्राप्त करने के कारण। दूसरा—स्वस्थ मनोरंजन एवं समय व्यतीत करने के लिए पढ़ना, मगर धार्मिक संस्कारों वश अथवा संयोगवश धर्मग्रन्थ का चुनाव कर लेना अथवा आलोचना या समालोचना के भाव से धर्मग्रंथ को अध्ययन के लिए चुन लेना। तीसरा—फल प्राप्ति की आशा, पुण्यार्जन अथवा अनुष्ठानिक महत्व या मनोकामना की सिद्धि के लिए पढ़ना।

पहले कारण से पढ़ने वालों के लिए किसी भी प्रकार के विधि-विधान की आवश्यकता नहीं होती। मात्र सावधानी व चैतन्यता से पढ़ना ही उनके लिए पर्याप्त है। दूसरे कारण से पढ़ने वालों के लिए तो कहना ही क्या ? वे जैसे भी पढ़ लें उनके लिए वही ठीक है। किन्तु तीसरे कारण से पढ़ने वालों को पूर्ण

विधि-विधान, नियमों तथा मर्यादाओं का पालन करना अनिवार्य होता है। अन्यथा सफलता या लक्ष्य सिद्धि पर प्रश्न चिन्ह लग सकता है। कई बार असफल ही होना पड़ता है। परिणामत: अश्रद्धा, अविश्वास व तिरस्कार उत्पन्न होता है, जो कि विद्या, ग्रन्थ, मंत्र, स्तोत्र, शक्ति तथा प्रणाली के प्रति घोर अन्याय होता है, क्योंकि उनकी असफलता का कारण स्तोत्र आदि का निस्तेज, निर्वीय या अप्रामाणिक होना नहीं, अपितु स्वयं उनका अज्ञान, प्रमाद, असंयम तथा जल्दबाजी होती है। वे स्वयं इसके दोषी होते हैं।

यह अध्याय, यह पथ निर्देश-उन्हीं लोगों के लिए विशेष रूप से है और अति आवश्यक है। बहुत लम्बी बात नहीं करूँगा। केवल कुछ उदाहरणों पर ध्यान दीजिए।

१. पैदल चलना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। सभी जानते हैं। चलने, जाने या यात्रा करने में भी पैदल चला जाता है। टहलने या घूमने में भी पैदल चला जाता है। टहलें या यात्रा करें, स्वास्थ्य लाभ दोनों से होगा, किन्तु टहलने का उद्देश्य विचरण मात्र होता है। यात्रा का उद्देश्य गंतव्य की प्राप्ती या लक्ष्य तक पहुँचना होता है। अत: यदि किसी निश्चित स्थान पर पहुँचना हो तो

यात्रा करनी पड़ती है। टहलने से व्यक्ति कहीं भी नहीं पहुँचता अथवा कहीं भी पहुंच सकता है। यात्रा से व्यक्ति एक निश्चित स्थान पर पहुँचता है। इसलिए टहलने में कोई भी नियम पालन आवश्यक नहीं होता। मात्र चलना ही बहुत है। किन्तु यात्रा में (गंतव्य प्राप्ति के लिए) लक्ष्य तक जानेवाले किसी निश्चित मार्ग को अपनाना पड़ता है। जितना शीघ्र पहुँचना हो उसके अनुपात में गति को भी अपनाना पड़ता है। बंधन व मर्यादा का पालन करना पड़ता है। जैसे मर्जी, जहाँ मर्जी या जब तक मर्जी वहाँ नहीं चलती। अतः यदि पुराण पठन द्वारा फल प्राप्ति का अथवा अनुष्ठानिक सिद्धि का उद्देश्य हो तो नियमों व विधानों का अक्षरशः पालन किया ही जाना चाहिए–अन्यथा लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती, अथवा आंशिक रूप से ही हो पाएगी।

२. एक उदाहरण और। श्मशान अथवा टाल आदि पर बड़ी तथा अधिक संख्या में लकड़ियाँ या भार तोलने के लिए बड़ी तुला (धर्म काँटे) का प्रयोग होता है। भार क्विंटलों, टनों या मनों में होने से एक दो किलो का अंतर वहाँ कोई माएने नहीं रखता। ऐसे अंतर को नगण्य समझ कर नजर अंदाज किया जा सकता है। किन्तु पंसारी या हलवाई की दुकान पर तुला छोटी

होती है। क्योंकि माल किलो ग्राम में तोला जाता है, टनों-मनों में नहीं। अतः वहाँ एक दो किलो का अंतर भारी अर्थ रखता है। सारा हिसाब उल्ट सकता है–फिर भी दो चार ग्राम के अंतर को वहाँ भी महत्वहीन समझ कर नजरअंदाज कर दिया जाता है। लेकिन जब सुनार की बात करें तो वहाँ निहायत छोटी तुला होती है। क्योंकि माल ग्रामों में अथवा उनसे भी कम मापकों में तोला जाता है। वहाँ दो चार ग्राम का अंतर भारी महत्व रखता है। सारा हिसाब ही उलट सकता है–क्योंकि वहाँ तो माशा, तोला और रत्ती तक का अंतर अर्थपूर्ण होता है। अतः वे अपनी तुला एक शीशे के बॉक्स में रखते हैं, ताकि हवा के हल्के से झोंके से भी तोल न गड़बड़ा जाए।

उपयुक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हम जितना अधिक सूक्ष्म, जितना अधिक मूल्यवान या जितना अधिक गहन अथवा महत्वपूर्ण कार्य करते हैं, हमें अपने साधनों तथा क्रिया प्रणाली को उतना ही अधिक सधा हुआ, नियंत्रित व सर्तकता पूर्ण रखना पड़ता है। सटीक परिणामों को प्राप्त करने के लिए प्रयासों या प्रक्रिया को भी सटीक होना अनिवार्य होता है। अन्यथा अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होते।

३. रातभर नाव खेने वाला नाविक भी तट पर अथवा निश्चित गंतव्य पर नहीं पहुँच सकता। यदि वह सही दिशा में नाव को न खेता हो। उसके श्रम व ईमानदारी में कमी न होते हुए भी सही दिशा का अभाव उसे कहीं का कहीं पहुँचा सकता है। और कहीं भूल से उसने नाव की रस्सी/लंगर न खोला हो तो तमाम मेहनत के बाद भी प्रातः वह स्वयं को वहीं पाएगा, जहाँ से उसने नाव खेना आरम्भ किया था। अतः सही दिशा तथा ज्ञान के साथ, नियमों के पालन व विधान के साथ सर्तकता व सावधानी भी आवश्यक है। प्रमाद को त्याग चैतन्यता को अपनाना आवश्यक है, तभी आप इच्छित फल प्राप्त कर सकेंगे।

४. अन्त में एक बात और। समस्त धार्मिक अनुष्ठानों का मूल श्रद्धा है। समस्त देवीय उपलब्धियों का आधार श्रद्धा है। यदि प्रयासों में श्रद्धा साथ नहीं होगी तो प्रयास पूर्ण मर्यादित हो ही नहीं सकते। श्रद्धा से उत्साह तथा विश्वास उत्पन्न होता है। बिना उत्साह तथा विश्वास के सफलता संदिग्ध होती है। विश्वास व उत्साह पूर्वक किए गए कार्य ही सम्पन्न होते हैं—भले ही वे धर्म कार्य हों, अथवा अन्य सामाजिक कार्य हों। WELL BEGAN IS HALF DONE (अच्छी शुरूआत का मतलब है,

कार्य का आधा सम्पन्न हो जाना)। अतः अच्छी शुरूआत के लिए विश्वास व श्रद्धा का होना आवश्यक है। उचित मुहूर्त आदि का भी विचार करना चाहिए। क्योंकि एक तो इससे मन में उत्साह और आत्मबल बढ़ता है (कि हमने शुभ मूहुर्त में कार्य किया है तो अवश्य सफल होंगे), दूसरे, गर्म लोहे पर की गई चोट ही कामयाब होती है। उचित अवसर पर किए गए कार्यों की सफलता कभी संदिग्ध नहीं रहती तथा शीघ्र होती है।

अतः पुत्र या संतान लाभ की प्राप्ति से पुराण पाठ, स्तोत्र पाठ, मंत्र जाप आदि प्रारम्भ करने वाले पाठकों को अनुष्ठानिक विधानों का पूर्ण पालन करना चाहिए। ईश्वर अवश्य ही उन पर कृपा करेंगे। ॐ नमोः भगवते वासुदेवाय।

पूजा प्रकाशन

पुल कुतुब रोड (सदर रेलवे स्टेशन के बराबर दरगाह के बाहर)

सदर बाजार, दिल्ली-110006

दूरभाष : 3626450, 3625241

पुराण माहात्म्य

ॐ नमोः नारायणाय।

नरों में उत्तम नारायण को नमस्कार है। देवी सरस्वती और महर्षि वेद व्यास को नमस्कार है। ज्ञान प्रदाता गुरु को भी नमस्कार है। तदुपरांत 'जय' का पाठ करते हुए पुराण आरंभ करता हूँ। राजा जनमेजय द्वारा निवेदन करने पर वैशम्पायन जी ने इस प्रकार कहा–

ब्रह्माविष्णु महेशानां हरिवंश जगुवपुः।
शब्दब्रह्ममयं विद्धि हरिवंश सनातनम्।।

अर्थात्– 'हरिवंश पुराण को ज्ञानियों ने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का स्वरूप कहा है, अतः इसको सनातन शब्दब्रह्ममय ही समझना चाहिए।'

'हे राजन् ! सूर्योदय से जिस प्रकार अंधकार का नाश हो जाता है, वैसे ही हरिवंश पुराण का श्रवण अथवा पाठ मनुष्य के समस्त पापों को नष्ट करता है। इस पुराण में निष्णात् पुरुष परब्रह्म को प्राप्त करता है।'

'सूर्य, चन्द्र, अग्नि व गुरु की ओर मुँह करके मूत्र या वीर्य त्यागने वाला संतानोत्पत्ति में असमर्थ हो जाता है। फले-फूले वृक्ष लता को काट देने वाली, गर्भ गिरा देने वाली, बालकों की हत्या कर देने वाली, माता-पिता की सेवा न करने वाली, मासिक धर्म से हीन अथवा मृतवत्सा या काकवंध्या स्त्री, वंध्या तथा मासिक धर्म की अनियमितता से पीड़ित स्त्री एवं संतानोत्पत्ति में असमर्थ पुरुष–इन सभी के पाप इस पुराण के श्रवण से नष्ट होते हैं तथा उन्हें पुत्र व संतानों की निश्चित ही प्राप्ति होती है। यह इस पुराण के श्रवण का अति विशिष्ट फल है, जो किसी अन्य पुराण के श्रवण से नहीं मिलता।

'हे राजन् ! इस पुराण को श्रवण करने वाले को १८ पुराणों के श्रवण का फल एक साथ मिलता है तथा

पुनः जन्म-मरण के बंधन में नहीं पड़ना पड़ता। इस पुराण को ९ दिनों में श्रवण या पाठ करना उत्तम, इक्कीस दिन में करना मध्यम तथा ३१दिनों में करना निकृष्ट है। अब तुमसे इस पुराण के नवाह्न पाठ या श्रवण की विधि कहता हूँ, दत्तचित्त होकर सुनो–'

पुराण श्रवण विधि एवं फल

'सर्वप्रथम, हे राजन् ! ज्योतिषी द्वारा इस पुराण के सुनने का मुहूर्त जानना चाहिए; क्योंकि शुभ मुहूर्त में किए गए कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं। श्रावण (सावन), कार्तिक, आश्विन (क्वार), अगहन, माघ तथा फाल्गुन मासों में इस पुराण को सुनने से श्रोता को मनोवांछित फल शीघ्र ही प्राप्त होता है। तिथि निश्चित हो जाने पर समस्त बांधवों, मित्रों, परिचितों आदि को आमंत्रित करना चाहिए और उन सबके आवास आदि का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। कथा सुनने के लिए किसी उपवन, तीर्थ अथवा खुले मैदान का चुनाव करना चाहिए। यह संभव न हो तो अपने घर के आँगन अथवा बड़े व खुले स्थान का चयन किया जाना चाहिए। जिससे अधिक से अधिक श्रोता वहाँ सुविधा पूर्वक बैठ सकें।

'उस स्थल को भली प्रकार स्वच्छ व शुद्ध कर, गाय के गोबर से लिपवा देना चाहिए। पुष्पमालाओं, वन्दनवारों, तोरणों तथा रंग बिरंगी पताकाओं से वह स्थान सजाकर वहाँ केलों के स्तम्भों से युक्त, एक ऊँचा मंडप बनाना चाहिए। उसे फूल, चन्दोवे, वन्दनवारों तथा भगवान् के चित्रों से भली प्रकार सुशोभितकर, उसके चारों कोनों में ध्वजाएँ लगानी चाहिएँ। मंडप के अगल-बगल तथा ऊपर व नीचे सात लोकों की कल्पना करके वहाँ विरक्तों व संतों के बैठने की व्यवस्था करनी चाहिए। कथावाचक ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठ आसन की व्यवस्था कर, कथावाचक को उत्तर दिशा में मुख करके तथा श्रोताओं को पूर्व दिशा में मुख कर बैठना चाहिए। विष्णुभक्त, वेदज्ञाता तथा मर्मज्ञ विद्वान ब्राह्मण को ही वक्ता के कार्य के लिए चुनना चाहिए। वाचाल, धूर्त, पाखण्डी तथा अधर्मी ब्राह्मण को कथावाचन का दायित्व कभी नहीं सौंपें, भले ही बहुत कुलीन व विद्वान हो। और हे राजन् ! एक सुयोग्य विद्वान जो समझाने में कुशल हो—को सहवक्ता नियुक्त करना चाहिए। जो श्रोताओं के भ्रम का निवारण करने में समर्थ हो तथा अवसर आने पर कुछ समय वक्ता को विश्राम दे सके।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे नृप ! वक्ता व

श्रोताओं को कथा प्रारम्भ होने से एक दिन पूर्व ही क्षौर कर्म करा लेने चाहिएँ। शुभ मुहूर्त तथा चन्द्रमा तारों आदि की अनुकूल स्थित में, स्नान शौच आदि से शुद्ध होकर, उस गोबर लिपे स्थान पर सर्वतोभद्र मंडल बनाकर पूजन करना चाहिए। विघ्न बाधाओं के निवारण के उद्देश्य से सर्वप्रथम वक्रतुण्ड विघ्नेश्वर गणेश को पूजना चाहिए। फिर लक्ष्मी व पुत्रों सहित श्री गोपाल कृष्ण की मंडप पर स्थापना करनी चाहिए। कथा का सफल व निर्विघ्न समाप्ति के लिए अपने ईष्ट देवता, कुलदेवता तथा वास्तु देवता सहित समस्त देवताओं का पूजन करना चाहिए। तदुपरांत 'ॐ अपवित्रः' मंत्र द्वारा पवित्र हो, प्राणायाम आचमन करके, श्रीकृष्ण को साक्षी बनाकर, इस प्रकार संकल्प करना चाहिए–

संकल्पः 'मैं, अमुक नाम, गोत्र एवं प्रवर वाला, जन्म-जन्म से संचित हुए पापों के कारण उपस्थित हुई संतानबाधा के नाश के लिए, संतानोत्पत्ती के उद्देश्य से, उत्पन्न हुई संतान की दीर्घायु व कुशलता के लिए अथवा पुत्र प्राप्ति के लिए (जिस भी उद्देश्य से पुराण श्रवण करना चाहते हों–नाम, गोत्र आदि के बाद उस उद्देश्य को निवेदित करना चाहिए,) अपने पापों का शमन अथवा आत्मा के सुख संतोष व शुद्धि के लिए,

अथवा परलोक में एक कल्प तक वास के लिए, उऋण होने के उद्देश्य से अथवा मोक्ष प्राप्ति की मनोकामना से पत्नी सहित इस पवित्र पुराण का अमुक समय (जितनी अवधि में श्रवण समापन करना हो, वह निवेदित करें) में श्रद्धा पूर्वक करूँगा। इससे पूर्व निर्विघ्नता के लाभ के उद्देश्य से श्रीगणेश का पूजन करूँगा। आप कृपा कर मेरी मनोकामना को पूर्ण करें।'

'हे राजन् ! इस प्रकार संकल्प करके, कथा कहने वाले व्यास का पूजन करके, हाथ में –अक्षत, कुशवैंती, सुपारी, पुष्प, दक्षिणा (धोती, दुपट्टा, पगड़ी, चादर, स्वर्ण की अँगूठी एवं स्वर्ण के कुंडल तथा १६ पल स्वर्ण दक्षिणा में यह सब देने का विधान है। किन्तु यदि सामर्थ्य न हो तो न्यायपूर्वक सामर्थ्यानुसार दक्षिणा क्षमायाचना सहित देनी चाहिए) आदि लेकर वक्ता का वरण करें। और उनसे सफलता का आर्शीवाद लेते हुए, कलावा हाथ में बाँध देना चाहिए। तब वक्ता को भी 'कथा वाचन के उद्देश्य से मेरा वरण हुआ।'–ऐसे कहते हुए अनुष्ठान कर्ता/श्रोता के हाथ में रक्षासूत्र बाँधना चाहिए। फिर पुराण का भली प्रकार पूजन कर गणेश, व्यास, शारदा तथा भगवान् वासुदेव को प्रणाम कर पुराण को कहना या पढ़ना आरम्भ करना चाहिए।

'सब विषयों से मन हटाकर एकाग्रचित्त हो कर श्रोताओं को पुराण श्रवण करना चाहिए। वक्ता तथा हरिवंश पुराण दोनों ही में परमेश्वर सहित श्रद्धा रखनी चाहिए। श्रद्धा सदैव हितकारी होती है। मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, गुरु तथा औषधि–ये सभी श्रद्धा या भावना के अनुसार ही फल़ देते हैं। भावना पत्थर को भगवान् बना देती है। भावना से ही सिद्धि प्राप्त होती है। अतः हे राजन् ! वक्ता, पुराण व परमेश्वर तीनों में ही भावपूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिए अन्यथा इच्छित फल प्राप्त नहीं होता। पुराण के अनुष्ठान पूर्ण होने तक समस्त यम नियमों एवं शुचिता (शुद्धि व पवित्रता) का संयम सहित पालन करना चाहिए। सूर्योदय से प्रारम्भ कर साढ़े तीन प्रहर धैर्य पूर्वक हरिवंश कथा का वाचन करें। मध्याह्न में दो घड़ी विश्राम किया जा सकता है, किन्तु तब भी शेष लोगों को प्रभु कीर्तन करते रहना चाहिए। इस प्रकार विधान पूर्वक किया गया श्रवण कभी निष्फल नहीं होता।'

नवाह्न व्रत के नियम व सावधानियाँ

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ राजा ! अब तुमसे उन नियमों को कहता हूँ–इस

अनुष्ठान के पूर्ण होने तक वक्ता तथा श्रोता दोनों को ही जिनका ठीक प्रकार से पालन करना चाहिए। एकाग्रता पूर्वक सुनो।'

'व्रत पूर्ण होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करें, भूमि पर शयन करें तथा एक ही समय भोजन करें। भोजन थोड़ा किन्तु पौष्टिक हो (जैसे दूध, खीर आदि) जिससे मलमूत्र का त्याग नियमित हो तथा पेट में वायु आदि न बने अन्यथा श्रवण के समय मलमूत्र व अर्धावायु का वेग बाधा दे सकते हैं। यदि सामर्थ्य हो तो नौ दिन का अथवा सामर्थ्यानुसार उपवास करते हुए श्रवण अत्यधिक लाभकारी होता है। उपहास, ठिठोली, वार्त्तालाप आदि को श्रवण के समय कभी न करें, एकाग्रचित्त होकर कथा श्रवण करें। और हे राजन् ! मधु, उड़द, तेल आदि गरिष्ठ (देर में पचने वाले) पदार्थ, भाव से दूषित-लहसुन, प्याज, जला हुआ अन्न, हींग, मूली आदि खाद्य पदार्थों का सेवन भी उस समय में त्याग देना चाहिए। मीट, माँस, मछली, अंडा आदि सभी अखाद्य पदार्थ तथा मदिरा, तम्बाकू आदि व्यसन तो उस काल में पूर्णतः वर्जित ही रखने चाहिएँ। काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य (ईर्ष्या), लोभ तथा अहंकार एवं निन्दा, छल, कपट, असत्य, हिंसा, अतिवाचालता व कुसंग

आदि समस्त दुर्गुण उस अवधि में त्याग दिए जाने चाहिएँ।'

'स्वयं ऊँचे आसन पर बैठकर, खाट आदि पर बैठकर अथवा वक्ता व भगवान् को प्रणाम किए बिना ही पुराण कथा सुनने वाले क्रमशः अगले जन्म में कौआ, वृक्ष, विषवृक्ष होते हैं। कथा सुनते समय सोने वाले अगले जन्म में अजगर होते हैं तथा ये सभी नरक के भागी कहे गए हैं। अतः इस विषय में सदैव सतर्क रहना चाहिए। कथा के समय वाद-विवाद करने वाले अगले जन्म में गधे, कथा को न सुनने वाले शूकर, विघ्न डालने वाले ब्रह्महत्या के पाप के भागी तथा वक्ता की निन्दा करने वाले अगले जन्म में शूद्र होते हैं।'

'व्रत पूर्ण होने तक पत्तल में ही भोजन करना तथा निरन्तर (अधिकाधिक समय तक) भगवान् विष्णु के ही चरण कमलों व कृपा का चिंतन करते रहना चाहिए। ये नवाह्न व्रत के नियम हैं।'

'हे राजन् ! यदि कथा का श्रवण निष्काम भाव से न किया गया हो (किसी कामना की पूर्ति के उद्देश्य से किया गया हो), तो व्रत व कथा समापन के बाद उद्यापन अवश्य करना चाहिए। अंत में पुराण व वक्ता का पूजन कर श्रोताओं को प्रसाद आदि देवें। ब्राह्मणों

व याचकों को दान दें। कथावाचन को रेशमी या ऊनी वस्त्र (ऋतु के अनुसार) देना चाहिए तथा दक्षिणा आदि से भली प्रकार से संतुष्ट करना चाहिए। क्योंकि कथावाचक की प्रसन्नता से देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं।'

'उद्यापन की समाप्ति पर गायत्री मंत्र से हवन करें। तथा 'विष्णु सहस्त्रनाम' का पाठ करें, जिससे यदि किसी प्रकार की त्रुटि या कमी व्रत अथवा यज्ञ में भूलचूक से रह गई हो, उसका निराकरण हो सके। बाद में २४ ब्राह्मणों को पत्नियों सहित भोजन कराना तथा दक्षिणा आदि से संतुष्ट करना चाहिए। क्योंकि जल को पितरों का मुख कहा गया है, किन्तु अग्नि व ब्राह्मण को देवताओं का मुख कहा जाता है। ब्राह्मण या अग्नि को दिया गया पदार्थ देवताओं को प्राप्त होता है। जल में छोड़ा गया पदार्थ पितरों को प्राप्त होता है। ऐसा शास्त्रों का कथन है।'

'हे राजन् ! महाराज परीक्षित ने भी व्यास जी के द्वारा इसी पुराण के श्रवण से पुत्र प्राप्त किया था। यह पुराण धन, सिद्धि, मोक्ष, ज्ञान, शांति, सुख, विजय एवं पुत्र तथा संतान का विशेष रूप से देने वाला है। समस्त जघन्य व अतिजघन्य पापों को भी नष्ट करने

वाला है। नपुंसक, वंध्या, काकवंध्या, अपुष्पा, मृतवत्सा आदि सभी को संतान लाभ प्रदान करने वाला है। जिसे केवल कन्या ही उत्पन्न होती है। उसे पुत्र प्रदान करने वाला तथा अद्‌भुत फलों को देने वाला है। विप्रधन को चुराने के पाप से निःसंतान हुई स्त्री को दोष शांति के लिए इस पुराण के साथ महारुद्र जप भी करना चाहिए।'

संतान गोपाल मंत्र व अनुष्ठान विधि

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे सम्राट ! अब तुमसे संतान गोपाल मंत्र व उसकी अनुष्ठान विधि कहता हूँ।–इस मंत्र के ऋषि 'नारद', छन्द 'अनुष्टुप' देवता स्वयं 'श्री कृष्ण', बीज 'क्लीं' तथा शक्ति 'नमः' है।'

'पहले बता दिए गए मासों में शुभ मुहूर्त देखकर शुद्धि व प्रायश्चित् के बाद हाथ में कुश, जल, सुपारी व चावल लेकर अपना नाम, गोत्र व उद्देश्य निवेदित करते हुए पहले कही विधि से संकल्प करना चाहिए। अवधि तथा अनुष्ठान समाप्ति पर किए जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में भी निवेदन करें। फिर दूसरे संकल्प में जल हाथ में लेकर निर्विघ्नता के लिए स्वस्ति पुण्याह वाचन, मातृ का पूजन, नन्दी श्राद्ध एवं आचार्य आदि का वरण करते हुए प्रतिज्ञा वाक्य कहने चाहिएं। वरण

श्री सन्तान गोपाल प्राप्ति यंत्र

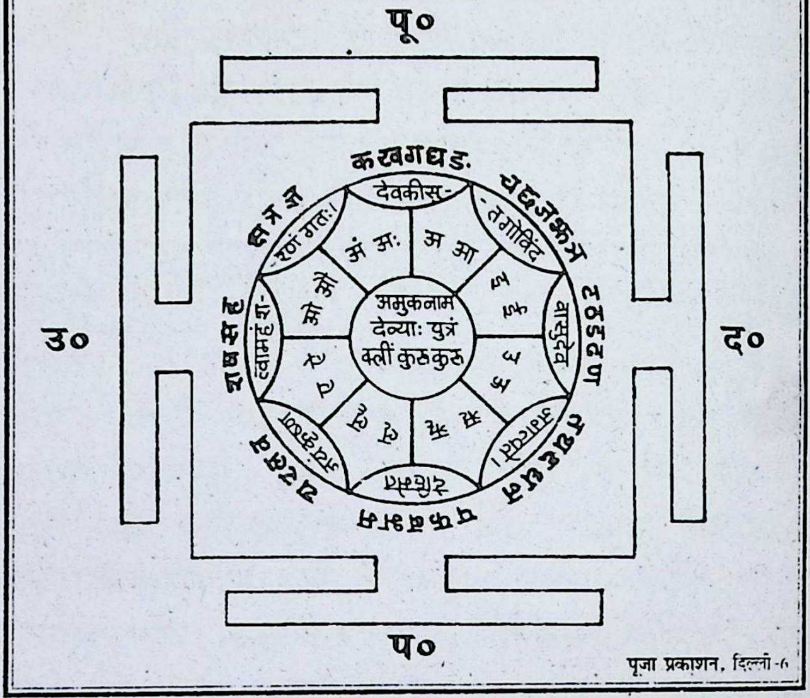

किए गए आचार्य को भी यजमान का अभीष्ट सिद्ध कराने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा करनी चाहिए।'

'फिर मंत्र न्यास के लिए निम्नलिखित मंत्रों का प्रयोग करें।—देवकी सुत गोविन्द हृदयाय नमः, वासुदेव जगत्पते शिर से स्वाहा, देहि मे तनयं कृष्ण शिखायै वषट्, त्वामहं शरणं गतः कवचाय् हुम्। ॐ नमः अस्त्राय फट्।

'मूल मंत्र यह है–'ॐ क्लीं देवकी सुत गोविंद वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः।' इस मंत्र का एक लाख बार जप करना चाहिए। (पत्नी सहित)। संकल्प के समय मंत्र संख्या भी निवेदित कर देनी चाहिए। हे राजन् ! मंत्र न्यास के पश्चात् करन्यास भी करना चाहिए। करन्यास के मंत्र इस प्रकार हैं–देवकी सुत गोविन्द अंगुष्ठाभ्याम् नमः। 'वासुदेव जगत्पते तर्जनीभ्याम् नमः। देहि मे तनय कृष्ण मध्यमाभ्यां नमः। त्वामहं शरणं गतः अनामिकाभ्यां नमः। ॐ क्लीं देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते कनिष्ठकाभ्याम् नमः। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः करतल करपृष्ठाभ्याम् नमः। करन्यास के बाद इसी प्रकार पैर से शिखा तक अंगन्यास करना चाहिए। तब जप आरम्भ करना चाहिए।

'हे राजन् ! जप की समाप्ति पर उसके दसवें भाग का हवन, हवन के दसवें भाग का तर्पण तथा तर्पण के दसवें भाग का ब्राह्मण भोजन कराएँ। (यानी एक लाख जप का दस हजार हवन, एक हजार तर्पण तथा सौ ब्राह्मणों का भोज)। हवन सामपन के बाद 'संतान यंत्र' का पूजन करें अथवा धारण करें। स्वर्णपत्र, ताम्रपत्र अथवा अष्टगंध से भोजपत्र पर यन्त्र बनवाना चाहिए

(यन्त्र साथ संलग्न है)। यह मंत्रानुष्ठान व यंत्र धारण विधि है।'

संतान गोपाल स्तोत्र

यह स्तोत्र ५१ श्लोकों वाला है। जिस स्त्री को संतान न हो उसे अवश्य ही इस स्तोत्र का पाठ नियमपूर्वक प्रातः व सायं शुद्ध होकर एकाग्रमन से करना चाहिए। (अर्थ सहित पाठ हो तो अति उत्तम है। अन्यथा स्तोत्र का पाठ तो करना ही चाहिए)। संतान लाभ के लिए यह एक अमूल्य स्तोत्र है।

संतान गोपाल स्तोत्रम्

श्री वसुदेव द्वारा कहा गया स्तोत्रः

श्रीशं कमलपत्राक्षं देवकीनन्दनं हरिम्।
सुतसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि मधुसूदनम्॥(१)
नमाम्यहं वासुदेवं सुतसम्प्राप्तये हरिम्।
यशोदाङ्कगतं बालं गोपालं नन्दनन्दनम्॥(२)
अस्माकं पुत्रलाभाय गोविन्दं मुनिवन्दितम्।
नमाम्यहं वासुदेवं देवकीनन्दनं सदा॥(३)
गोपालं डिम्भकं बन्दे कमलापतिमच्युतम्।
पुत्रसम्प्राप्तये कृष्णं नमामि युदपुङ्गवम्॥(४)

पुत्रकामेष्टिफलदं कञ्जाक्षंकमलापतिम् ।
देवकीनन्दनं बन्दे सुतसम्प्राप्तये मम ॥ (५)
पद्मापते पद्मनेत्र पद्मनाभ जनार्दन ।
देहि मे तनयं श्रीश वासुदेव जगत्पते ॥ (६)
यशोदाङ्कगतं बालं गोविन्दं मुनिवन्दितम् ।
अस्माकं पुत्रलाभाय नमामि श्रीरामच्युतम् ॥ (७)
श्रीपते देवदेवेश दीनार्तिहरणाच्युत ।
गोविन्द मे सुतं देहि न नमामि त्वां जनार्दन ॥ (८)
भक्त कामद गोविन्द भक्तं रक्ष शुभप्रद ।
देहि मे तनयं कृष्ण रूक्मिणी वल्लभ प्रभो ॥ (९)
रुक्मिणीनाथ सर्वेश देहि मे तनयं सदा ।
भक्तमन्दार पद्माक्ष त्वामहं शरणं गतः ॥ (१०)
देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (११)
वासुदेव जगद्वन्द्य श्रीपते पुरुषोत्तम ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (१२)
कञ्जाक्ष कमलानाथ परकारुणिकोत्तम ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (१३)
लक्ष्मीपते पद्मनाभ मुकुन्द मुनिवन्दित ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (१४)

कार्यकारण रूपाय वासुदेवाय ते सदा ।
नमामि पुत्रलाभार्थं सुखदाय बुधायते ॥ (१५)
राजीवनेत्र श्रीराम रावणारे हरे कवे ।
तुभ्यं नमामि देवेश तनयं देहि मे रहे ॥ (१६)
अस्माकं पुत्रलाभाय भजामि त्वां जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव रमापते ॥ (१७)
श्रीमानिमानचोर गोपीवस्त्रापहारक ।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥ (१८)
अस्मांक पुत्र सम्प्राप्तिं कुरुष्व युदनन्दन ।
रमापते वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित ॥ (१९)
वासुदेव सुतं देहि तनयं देहि माधव ।
पुत्रं मे देहि श्रीकृष्ण वत्सं देहि महाप्रभो ॥ (२०)
डिम्भकं देहि श्रीकृष्ण आत्मजं देहि राघव ।
भक्तमन्दार मे देहि तनयं नन्दनन्दन ॥ (२१)
नन्दनं देहि मे कृष्ण वासुदेव जगत्पते ।
कमलानाथ गोविन्द मुकुद मुनिवन्दित ॥ (२२)
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
सुतं देहि श्रियं देहि श्रियं पुत्रं प्रदेहि मे ॥ (२३)
यशोदास्तन्यपानज्ञं पिबन्तं युदनन्दनम् ।
वन्देऽहं पुत्रलाभार्थं कपिलाक्ष हरिं सदा ॥ (२४)

नन्दनन्दन देवेश नन्दनं देहि मे प्रभो ।
रमापते वासुदेव श्रियं पुत्रं जगत्पते ॥ (२५)
पुत्रं श्रियं श्रियं पुत्रं पुत्रं मे देहि माधव ।
अस्माकं दीनवाक्यस्य अवधारय श्रीपते ॥ (२६)
गोपालडिम्भ गोविन्द वासुदेव रमापते ।
अस्माकं डिम्भकं देहि श्रियं देहि जगत्पते ॥ (२७)
मद्वाञ्छितफलं देहि देवकीनन्दनाच्युत ।
मम पुत्रार्थितं धन्यं कुरुष्व यदुनन्दन ॥ (२८)
याचेऽहं त्वां श्रियं पुत्रं देहि मे पुत्रसम्पदम् ।
भक्तचिन्तामणे राम कल्पवृक्ष महाप्रभो ॥ (२९)
आत्मजं नन्दनं पुत्रं कुमारं डिम्भकं सुतम् ।
अर्भकं तनयं देहि सदा मे रघुनन्दनम् ॥ (३०)
वन्दे संतानगोपालं माधवं भक्तकामदम् ।
अस्माकं पुत्रसंप्राप्त्यै सदा गोविन्दमच्युतम् ॥ (३१)
ॐकार युक्तं गोपालं श्रीयुक्तं यदुनन्दनम् ।
क्लींयुक्त देवकीपुत्रं नमामि यदुनायकम् ॥ (३२)
वासुदेव मुकुन्देश गोविन्द माधवाच्युत ।
देहि मे तनयं कृष्ण रमानाथ महाप्रभो ॥ (३३)
राजीवनेत्र गोविन्द कपिलाक्ष हरे प्रभो ।
समस्तकाम्यवरद देहि मे तनयं सदा ॥ (३४)

अब्जपद्मनिभं पद्मवृन्दरूप जगत्पते।
देहि मे वरसत्पुत्रं रमानायक माधव ॥ (३५)
नन्दपाल धरापाल गोविन्द यदुनन्दन।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ॥ (३६)
दासमन्दार गोविन्द मुकुन्द माधवाच्युत।
गोपाल पुण्डरीकाक्ष देहि मे तनयं श्रियम् ॥ (३७)
यदुनायक पद्मेश नन्दगोपवधूसुत।
देहि मे तनयं कृष्ण श्रीधर प्राणनायक ॥ (३८)
अस्माकं वाञ्छितं देहि देहि पुत्रं रमापते।
भगवन् कृष्ण सर्वेश वासुदेव जगत्पते ॥ (३९)
रमाहृदय सम्भार सत्यभामामनःप्रिय।
देहि मे तनयं कृष्ण रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ॥ (४०)
चन्द्रसूर्याक्ष गोविन्द पुण्डरीकाक्ष माधव।
अस्माकं भाग्यसत्पुत्रं देहि देव जगत्पते ॥ (४१)
कारुण्यरूप पद्माक्ष पद्मनाभसमर्चित।
देहि मे तनयं कृष्ण देवकी नन्दनन्दन ॥ (४२)
देवकीसुत श्रीनाथ वासुदेव जगत्पते।
समस्त कामफलद देहि मे तनयं सदा ॥ (४३)
भक्तमन्दार गम्भीर शङ्कराच्युत माधव।
देहि मे तनयं गोपालवत्सल श्रीपते ॥ (४४)

श्रीपते वासुदेवेश देवकीप्रियनन्दन ।
भक्तमन्दार मे देहि तनयं जगतां प्रभो ॥ (४५)
जगन्नाथ रमानाथ भूमिनाथ दयानिधे ।
वासुदेवेश सर्वेश देहि मे तनयं प्रभो ॥ (४६)
श्रीनाथ कमलपत्राक्ष वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (४७)
दासमन्दार गोविन्द भक्तचिन्तामणे प्रभो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (४८)
गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रमानाथ महाप्रभो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (४९)
श्रीनाथ कमलपत्राक्ष गोविन्द मधुसूदन ।
मत्पुत्रफलसिद्ध्यर्थे भजामि त्वां जनार्दन ॥ (५०)
स्तन्यं पिबन्तं जननीमुखाम्बुजं
विलोक्य मन्दस्मिमतमुज्जवलाङ्गम् ।
स्पृशन्तमन्यस्तनमङ्गु लीभिर्वन्दे
यशोदाङ्कगतं मुकुन्दम् ॥ (५१)
याचेऽहं पुत्रसंतानं भवन्तं पद्मलोचन ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वाहमं शरणं गतः ॥ (५२)
अस्माकं पुत्रसम्पत्तेश्चिन्तयामि जगत्पते ।
शीघ्रं मे देहि दातव्यं भवता मुनिवन्दित ॥ (५३)

वासुदेव जगन्नाथ श्रीपते पुरुषोत्तम।
कुरुमां पुत्रदत्तं च कृष्ण देवेन्द्रपूजित ॥(५४)
कुरु मां पुत्रदत्तं च यशोदाप्रियनन्दन।
मह्यं च पुत्रसंतानं दातव्यं भवता हरे ॥(५५)
वासुदेव जगन्नाथ गोविन्द देवकीसुत।
देहि मे तनयं राम कौसल्याप्रियनन्दन ॥(५६)
पद्मपत्राक्ष गोविन्द विष्णो वामन माधव।
देहि मे तयं सीताप्राणनायक राघव ॥(५७)
कञ्जाक्ष कृष्ण देवेन्द्रमण्डित मुनिवन्दित।
लक्ष्मणाग्रज श्रीराम देहि मे तनयं सदा ॥(५८)
देहि मे तनयं राम दशरथ प्रियनन्दन।
सीतानायक कञ्जाक्ष मुचुकुन्दवरप्रद ॥(५९)
विभीषणस्य या लङ्का प्रवेत्ता भवता पुरा।
अस्माकं तत्प्रकारेण तनयं देहि माधव ॥(६०)
भवदीयपदाम्भोजे चिन्तयामि निरन्तरम्।
देहि मे तनयं सीताप्राणवल्लभ राघव ॥(६१)
राम मत्काम्यवरद पुत्रोत्पत्तिफलप्रद।
देहि मे तनयं श्रीश कमलासनवन्दित ॥(६२)
राम राघव सीतेश लक्ष्मणानुज देहि मे।
भाग्वत्पुत्रसंतानं दशरथात्मज श्रीपते ॥(६३)

देवकीगर्भ संजात यशोदाप्रियनन्दन ।
देहि मे तनयं राम कृष्ण गोपाल माधव ॥ (६४)
कृष्ण माधव गोविन्द वामनाच्युत शङ्कर ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालकनायक ॥ (६५)
गोपाबाल महाधन्य गोविन्दाच्युत माधव ।
देहि मे तनयं कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥ (६६)
दिशुत दिशुत पुत्रं देवकी नन्दनोऽयं
दिशुत दिशुत शीघ्रं भाग्यवत्पुत्रलाभम् ।
दिशुत दिशुत श्रीशो राघवो रामचन्द्रो
दिशुत दिशुत पुत्रं वंशविस्तार हेतोः ॥ (६७)
दीयतां वासुदेवेन तनयो मत्प्रियः सुतः ।
कुमारो नन्दनः सीतानायकेन सदा मम ॥ (६८)
राम राघव गोविन्द देवकी सुत माधव ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालक नायक ॥ (६९)
वंशविस्तारकं पुत्रं देहि मे मधुसूदन ।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ (७०)
ममाभीष्टसुतं देहि कंसारे माधवाच्युत ।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ (७१)
चन्द्रार्ककल्पपर्यन्तं तनयं देहि माधव ।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ (७२)

विद्यावन्तं बुद्धिमंतं श्रीमंतं तनयं सदा ।
देहि मे तनयं कृष्ण देवकीनन्दन प्रभो ॥ (७३)
नमामि त्वां पद्मनेत्र सुतलाभाय कामदम् ।
मुकुन्दं पुण्डरीकाक्षं गोविन्दं मधुसूदनम् ॥ (७४)
भगवन् कृष्ण गोविन्द सर्वकामफलप्रद ।
देहि मे तनयं स्वामिंस्त्वामहं शरणं गतः ॥ (७५)
स्वामिंस्त्वं भगवन् राम कृष्ण माधव कामद ।
देहि मे तनयं नित्यं त्वामहं शरणं गतः ॥ (७६)
तनयं देहि गोविन्द कञ्जाक्ष कमलापते ।
सुतं देहि सुतं त्वामहं शरणं गतः ॥ (७७)
पद्मापते पद्मनेत्र प्रद्युम्नजनक प्रभो ।
सुतं देहि सुतं देहि त्वामहं शरणं गतः ॥ (७८)
शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गपाणो रमापते ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (७९)
नारायण रमानाथ राजीवपत्रलोचन ।
सुतं मे देहि देवेश पद्मपद्मानुवन्दित ॥ (८०)
राम राघव गोविन्द देवकी वरनन्दन ।
रुक्मिणीनाथ सर्वेश नारदादिसुरार्चित ॥ (८१)
देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालक नायक ॥ (८२)

मुनि वन्दित गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (८३)
गोपिकार्जितपङ्केजमरन्दासक्तमानस ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (८४)
रमाहृदयपङ्केजलोल माधव कामद ।
ममाभीष्टसुतं देहि त्वामहं शरण गतः ॥ (८५)
वासुदेव रमानाथ दासानां मङ्गलप्रद ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (८६)
कल्याणप्रद गोविन्द मुरारे मुनिवन्दित ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (८७)
पुत्रप्रद मुकुन्देश रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (८८)
पुण्डरीकाक्ष गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (८९)
दयानिधे वासुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (९०)
पुत्रसम्पत्प्रदातारं गोविन्दं देवपूजितम् ।
वन्दामहे सदा कृष्णं पुत्रलाभप्रदायिनम् ॥ (९१)
कारुण्यनिधये गोपीवल्लभाय मुरारये ।
नमस्ते पुत्रलाभार्थे देहि मे तनयं विभो ॥ (९२)

नमस्तस्मै रमेशाय रुक्मिणी वल्लभाय ते ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालक नायक ॥ (९३)
नमस्ते वासुदेवाय नित्यश्रीकामुकाय च ।
पुत्रदाय च सर्पेन्द्रशायिने रङ्गशायिने ॥ (९४)
रङ्गशायिन् रमानाथ मङ्गलप्रद माधव ।
देहि मे तनयं श्रीश गोपबालक नायक ॥ (९५)
दासस्य मे सुतं देहि दीनमन्दार राघव ।
सुतं देहि सुतं देहि पुत्रं देहि रमापते ॥ (९६)
यशोदातनयाभीष्टपुत्र दानरतः सदा ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (९७)
मदिष्टदेव गोविन्द वासुदेव जनार्दन ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ (९८)
नीतिमान् धनवान् पुत्रो विद्यावां श्च प्रजायते ।
भगवंस्त्वत्कृपायाश्च वासुदेवेन्द्रपूजित ॥ (९९)
यः पठेत् पुत्रशतकं सोऽपि सत्पुत्रवान् भवेत् ।
श्रीवासुदेवकथितं स्तोत्ररत्नं सुखाय च ॥ (१००)

स्तोत्र के श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है।

स्तोत्र का अर्थ—लक्ष्मी नाथ पद्मनयन देवकी पुत्र भगवान् वासुदेव कृष्ण को नमस्कार है। पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से यशोदा की गोदी में बाल गोपाल रूप से स्थित, नन्द को आनन्द देने वाले मधुसूदन हरि को मेरा

नमस्कार है। पुत्र लाभ के लिए देवकी नन्दन, वसुदेव सुत तथा मुनियों द्वारा सदैव वंदना किए जाने वाले गोविन्द को मेरा प्रणाम है। गौओं के रक्षक व पालक, यदुकुल भूषण, कमलापति, अच्युत् भगवान् श्री कृष्ण को मैं पुत्र लाभ की कामना से प्रणाम करता हूँ। पुत्रेष्टि यज्ञ का फल देने वाले, कमलनयन, श्रीपति, पद्मनाभ जनार्दन को मेरा नमस्कार है। हे वासुदेव ! हे जगत् पति ! यशोदा के अंक में विराजित रहने वाले, हे रमा पति ! अपनी महिमा से कभी अलग न होने वाले तथा मुनियों द्वारा नित्य वंदित गोविन्द, हे जगदीश्वर ! मुझे पुत्र दीजिए। मैं नमस्कार करता हूँ। पुत्र लाभ के निमित्त मैं प्रणाम करता हूँ। हे श्रीपति ! देवताओं के देवता ! दीनों व शरण में आए भक्तों के दुख दूर करने वाले हे गोविन्द, हे जनार्दन ! मुझे पुत्र प्राप्त हो। मेरी रक्षा करो प्रभु।

भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, भक्तों का शुभ व कल्याण करने वाले। भक्तों के रक्षक। हे गोविन्द रुक्मणी के स्वामी ! हे कृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिए। हे सबके ईश्वर ! रुक्मणीपति मुझे पुत्र दीजिए। भक्त को कष्ट निवारण में समर्थ, कल्पवृक्ष के समान फलदायी प्रभो ! कमलपत्र से नेत्रों वाले, मैं तुम्हारी

शरण में हूँ।

देवकी पुत्र, गोविन्द, वासुदेव, हे जगत् के ईश्वर ! मुझे पुत्र दीजिए। मैं आपकी शरण में हूँ। पूरे विश्व द्वारा पूजे जाने वाले वासुदेव ! लक्ष्मीपति ! पुरुषोत्तम ! मुझे पुत्र प्रदान करें। मैं शरणागत हूँ। हे पद्मनयन, पद्मापति ! हे परोपकार करने वालों में श्रेष्ठ ! मैं आपकी शरण में हूँ, मुझे पुत्र दीजिए। हे नाभि में कमल वाले, कमला के स्वामी, मुनियों से वंदित, मुकुन्द ! मुझे पुत्र दीजिए, मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप कार्य कारण रूप हैं, सुखदाता तथा ज्ञानी हैं। हे प्रभो ! पुत्र लाभ के लिए मैं सदा आपको प्रणाम करता हूँ।

हे कमल लोचन ! रावण के शत्रु हे राम ! हे हरि ! हे कवि ! हे देवाधिदेव हरि तुमको प्रणाम करता हूँ। तुम मुझे पुत्र दो। अपने पुत्र लाभ के उद्देश्य से मैं तुमको भजता हूँ जगदीश्वर। मुझे पुत्र दीजिए हे कृष्ण, हे वासुदेव ! हे लक्ष्मी के नाथ ! हे माननी राधा के मान को तोड़ने वाले! गोपियों के वस्त्रों को चुराने वाले कृष्ण ! हे जगत्पति वासुदेव मुझको पुत्र दीजिए।'

हे रमापति, मुकन्द, वासुदेव ! हे मुनियों द्वारा वंदित माधव ! हे कृष्ण ! हे यदुनन्दन ! अपने लिए पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से मैं तुम्हारी आराधना कर रहा हूँ। हे

महाप्रभो ! मुझको पुत्र प्रदान कीजिए। –मुझे बछड़ा (प्रिय, मासूम, भोला बालक–उसे बछड़ा या वत्स कहा गया है) दीजिए।

हे पुण्डरीकाक्ष माधव ! ये सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र हैं। हे विश्वनाथ ! हमें भाग्यवान सद्पुत्र दें। हे मनोहारी रूप वाले, कमल के समान नेत्रों वाले, पद्म को नाभि से उत्पन्न करने वाले, हे शास्त्रों व पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण मुझे पुत्र दीजिए। हे देवकी के पुत्र ! श्री व सम्पदा व ऐश्वर्य से युक्त जगत्पति वासुदेव ! हे समस्त कामनाओं का फल देने वाले, मुझे पुत्र दीजिए। भक्तों की इच्छापूर्ति के लिए कल्पवृक्ष के समान। गंभीर स्वभाव वाले, कल्याण व शुभ करने वाले–अच्युत माधव ! हे गोपों पर स्नेह वर्षा करने वाले श्रीपति ! मुझको भी पुत्र प्रदान कीजिए। हे देवकी के प्रिय पुत्र वासुदेव ! हे लक्ष्मी के पति जगन्नाथ ! हे परमदयालु भक्तों पर प्रसन्न होने वाले जगत के स्वामी मुझ पर भी प्रसन्न होइए। मुझे पुत्र दीजिए। हे सम्पूर्ण सृष्टि के नाथ ! हे भूमि के नाथ ! हे दया के सागर ! हे सब कुछ जानने वाले वासुदेव ! मुझे पुत्र दो। कमल की पंखुड़ियों के समान नेत्रों वाले, लक्ष्मी बल्लभ वासुदेव ! हे सम्पूर्ण जगत के स्वामी मैं अब तुम्हारी शरण में आया हूँ, मुझे

पुत्र दो। हे दासों पर अनुकम्पा करने वाले गोविन्द। हे भक्तों के लिए चिन्तामणि के समान प्रभो ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ। मुझे पुत्र दीजिए।

हे रमापति ! हे पद्मलोचन ! हे गोविन्द ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ, हे महाप्रभो मुझे पुत्र दीजिए। हे श्रीपति ! कमलदल् लोचन ! हे गोविन्द ! हे मधुसूदन ! मैं पुत्र प्राप्ति की फलेच्छा के साथ तुम्हारी पूजा करता हूँ, हे जनार्दन !

हे सीता जी के प्राणों के स्वामी ! हे राघव ! मैं आपके चरणकमलों के चिंतन में निरंतर संलग्न हूं। मुझे पुत्र प्रदान कीजिए। हे रासबिहारी ! पुत्रोत्पत्ति के फल दाता, अभिलाषा पति, वरदाता, हे श्री (लक्ष्मी) के स्वामी। कमल के आसन पर बैठने वाले ब्रह्मा द्वारा पूजे जाने वाले, हे सीता के नाथ तथा छोटे भाई लक्ष्मण वाले राम ! हे राघव मुझे पुत्र दें। मुझे दें। हे दशरथ पुत्र, देवकी के उदर से अवतीर्ण होने वाले। हे श्रीपति ! हे यशोदा के प्रिय पुत्र ! हे राम ! हे कृष्ण ! हे गोपाल ! हे माधव ! मुझे पुत्र प्रदान करें। हे वामन ! हे कृष्ण ! हे गौओं का पालन करने वाले, हे कभी च्युत न होने वाले। हे शुभकारी ! वासुदेव ! हे जगदीश ! मुझको पुत्र प्रदान करें। हे गोपों के बालकों के नायक ! मुझे पुत्र दीजिए।

हे गोपकुमार ! हे गोविन्द, माधव और अच्युत। तुम धन्य हो, तुम धन्य हो। हे कृष्ण, हे जगत्पति वासुदेव मुझे पुत्र दो। हे देवकी नन्दन मुझे पुत्र दीजिए, पुत्र दीजिए। मुझे शीघ्र ही भाग्यवान तथा पुण्यदान पुत्र का लाभ कराइए। हे श्रीपति ! हे राघव ! हे रामचन्द्र ! मुझे दीजिए। मुझे दीजिए। हे प्रभो ! मुझे वंश के विस्तार के लिए पुत्र दीजिए। दीजिए वासुदेव। मुझे पुत्र दीजिए। हे वासुदेव नन्दन, हे सीता के नायक, हे देवकी पुत्र, हे राम, हे गोविन्द, हे राघव, हे माधव ! मुझको पुत्र दीजिए। हे मधुसूदन ! मुझे वंश का विस्तार करने वाला पुत्र प्रदान कीजिए। मैं आपकी शरण में आया हूँ प्रभो। मुझे पुत्र दीजिए। मुझे पुत्र दीजिए।

हे पुत्र लाभ कराने वाले, पुत्र व सम्पत्ति को देने वाले, देवताओं द्वारा पूजे जाने वाले, गोविन्द ! हे कृष्ण ! हम सदा ही आपकी वन्दना करते हैं। करुणा-निधि ! गोपियों के प्राणनाथ मुर नामक असुर का वध करने वाले ! आपको पुत्र लाभ के लिए मेरा प्रणाम है। हे विभु (सर्वत्र व्याप्त) आपको प्रणाम है। हे रमा के स्वामी रुक्मणी के नाथ हे श्रीपति ! हे गोप बालकों के नेता ! आप मुझे पुत्र दें। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे वासुदेव ! हे सदैव ही लक्ष्मी की इच्छा रखने वाले।

हे पुत्र प्रदाता ! हे रंगशीय ! हे शेषनाग की शैय्या पर सोने वाले आपको नमस्कार है। हे रमापति ! हे शेष शायि ! हे ग्वालों के नायक ! हे दीनों के कल्पवृक्ष ! हे राघव ! मुझ सेवक को पुत्र प्रदान कीजिए। पुत्र दीजिए, पुत्र दीजिए। हे रमापति, हे यशोदा के अभीष्ट पुत्र! हे सदा मनोवांछित पुत्र देने वाले, मुझे पुत्र दीजिए। मुझे पुत्र दीजिए कृष्ण, मैं शरणागत हूँ। मेरे ईष्ट देव गोविन्द। हे जनार्दन वासुदेव। मुझे पुत्र दीजिए, हे कृष्ण मैं आपकी शरण में हूँ। हे इन्द्र द्वारा पूजित देवेश्वर वासुदेव । आपकी कृपा से नीतिवान, धनवान, गुणवान तथा विद्यावान पुत्र प्राप्त होता है।

वासुदेव द्वारा कहे इस स्तोत्र का पाठ जो भी करता है उसे सद्पुत्र भी प्राप्त होता है तथा रत्न सुख भी प्राप्त होता है। (पुत्ररत्न प्राप्त होता है।) प्रतिदिन नित्य इस स्तोत्र का पाठ करने से तत्काल पुत्र का लाभ होता है। शीघ्र ही धन,सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य एवं राज्य लाभ होता है, इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है

गर्ग कम्पनी बुकसेलर

पुल कुतुब रोड, (सदर रेलवे स्टेशन के बराबर दरगाह के बाहर) सदर बाजार, दिल्ली-6

फोन न० : 3626450, 3625241

हरिवंश पुराण आरम्भ

हरिवंश पर्व

॥ ॐ नमोः भगवते वासुदेवाय ॥

आदि सृष्टि की उत्पत्ति

महाभारत की कथा सुनना पुष्कर तीर्थ में स्नान करने से भी अधिक पुण्य देने वाला है। हरिवंश पुराण को सुनने का फल तो इससे भी कई गुना अधिक है। व्यास जी तथा श्री बाल्मीकि जी ने ऐसा कहा है। ब्रह्मा के भी आदि कहे जाने वाले नारायण भगवान् वासुदेव तथा नारायण के ही अंश से उत्पन्न पुत्र (शुकदेव) वाले वेद के भंडार व्यास जी का भी मैं स्मरण करता हूं। ॐ नमोः नारायणाय।

नैमिषारण्य के कुलपति महामुनि शौनक जी ने भगवान् विष्णु के श्री चरणों का स्मरण कर सर्वशास्त्रों में कुशल धर्मात्मा सूत जी के पुत्र से पूछा–हे सूत पुत्र ! आपने महाभारत के अन्तर्गत समस्त भरतवंशियों का रोचक इतिहास सुनाया। देवता, दानव, सूर्य, राक्षस, गंधर्व, यक्ष तथा सिद्ध आदि की एवं उनके अद्भुत

कर्मों व पराक्रम की विचित्र कथाएँ सुनाईं। कुरुवंशियों का भी वर्णन किया। वह सभी अमृत के समान सुखकारी था। किन्तु हे लोमहर्षक पुत्र ! आपने वृष्णि तथा अंधकवंश का वर्णन नहीं किया। अतः कृपा कर हमें इस विषय में भी बताइए।' तब सूतपुत्र जी ने कहा, 'हे मुनिश्रेष्ठ शौनक ! आपका प्रश्न बड़ा ही सुंदर है। महाभारत कथा को पूर्णता देने वाला एवं मंगलकारी है। राजा जनमेजय के पूछे जाने पर धर्मज्ञ व्यास जी के पुत्र वैशम्पायन जी ने जिस प्रकार उनसे वृष्णि वंश तथा अंधक आदि वंशों का वर्णन किया था—वही वर्णन मैं तुमको सुनाता हूँ। तुम ध्यान पूर्वक सुनो—'

'मंगल व्यापक विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृतय् हृषीकेश अचराचर गुरुं हरिम्॥

'जो सर्वत्र व्यापक, मंगल के मूल, वरण किए जाने योग्य, निर्विकार, निर्दोष एवं सदा शुद्ध भगवान् विष्णु हैं। उन जगत् सृष्टा हृषीकेश भगवान् हरि को प्रणाम करके—जो समस्त चराचर सृष्टि के गुरु हैं। —मैं तुमको वह प्रसंग सुनाता हूँ।'

'जनमेजय द्वारा महाभारत कथा सुनकर तृप्त न होने तथा वृष्णि व अंधक वश के महारथियों आदि के चरित्रों के सम्बन्ध में जिज्ञासा करने पर—व्यास जी के

शिष्य वैशम्पायन जी ने इस प्रकार कहा'–

'हे राजन् ! आपको जो चरित्र मैं सुनाने जा रहा हूं, यह दिव्य, अनेकअर्थों से युक्त, पापविनाशक तथा ज्ञान की वृद्धि करने वाला है। इस कथा को, भली प्रकार समझ कर आत्मसात् कर लेने वाले व्यक्ति का वंश दृढ़ होता है और वह स्वर्ग में भी पूजा जाता है।'

'हे राजन् ! संसार की सृष्टि का अव्यक्त कारण, जो प्रधान पुरुष है वही ब्रह्म है। उसी ब्रह्म को तुम नारायण का उपासक ब्रह्मा समझो। महत् से अहंकार, अहंकार से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी ये सूक्ष्म महाभूत उत्पन्न हुए। इन्हीं पंचमहाभूतों से समस्त जीवों तथा सृष्टि की उत्पत्ति होती है। सृष्टि का यही क्रम अनादि काल से चला आ रहा हैं। पंच महाभूतों की उत्पत्ति के बाद सृष्टि की रचना तथा प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा से स्वयंभू (स्वयं उत्पन्न होने वाले) भगवान् ने सर्वप्रथम जल को उत्पन्न करके उसमें वीर्य का प्रतिपादन किया और उसे ही अपना निवास बनाया।'

'जल को 'नार' भी कहते हैं। जल में वास करने के कारण वे ईश्वर 'नारायण' भी कहे जाते हैं–वीर्य सम्पादित तत्व स्वर्णमयी अण्ड में परिवर्तित होकर उसी

जल में विश्राम करने लगा। उसी अण्डे से हिरण्यगर्भ ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए–ऐसा मैंने सुना है। उस अण्डे के एक खण्ड से स्वर्ग व दूसरे से ब्रह्मा ने पृथ्वी की रचना की। तथा उनके मध्य सूर्य चन्द्र आदि गृह नक्षत्रों तथा दसों दिशाओं की रचना की। तदनन्तर पृथ्वी पर –काल, मन, वाणी, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की रचना की। फिर पूर्व की भांति पुनः सृष्टि की इच्छा से, प्रजापतियों के उत्पत्ति के उद्देश्य से सात ऋषियों–मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा महातेजस्वी वसिष्ठ की रचना की। ये सातों ही ब्रह्मा के मन से उत्पन्न ब्राह्मण सप्तऋषि कहे गए–ऐसा पुराणों का निश्चय है।'

हे राजन् ! ब्रह्मा ने फिर क्रोध से रुद्र की रचना की। तब पूर्वजों के भी पूर्वज सनत् सनन्दन आदि सात पुरुषों की रचना की। फिर विद्युत, मेघ, वज्र, इन्द्रधनुष तथा औषधियों की रचना की। इसके बाद यज्ञ की सिद्धि के लिए ऋग, यर्जु तथा सामवेद रचे। तत्पश्चात् अपने मुख से देवताओं को तथा वक्ष से पितरों को उत्पन्न किया। उपस्थ (लिंग) से मनुष्यों तथा जंघाओं से असुरों को उत्पन्न किया। ऐसा हमने सुना है। तदनन्तर अपने ही शरीर से छोटे-बड़े अन्य जीवों को उत्पन्न किया। इतने

से संतुष्ट न होकर, सृष्टि में और वृद्धि की इच्छा से ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो भाग किए। एक को पुरुष व दूसरे को स्त्री का रूप दिया। फिर उन स्त्री पुरुषों ने अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की।'

वैशम्पायन जी आगे बोले, 'हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मा ने स्वयं के तेज से पृथ्वी व स्वर्ग में व्याप्त होकर सृष्टि की। बाद में भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा द्वारा विराज की सृष्टि की। तब विराज ने आदि पुरुष को उत्पन्न किया। यह आदि पुरुष मनु कहलाया। मनु के द्वारा ही की गई सृष्टि (सर्ग) को मन्वन्तर कहते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में मनु बदल जाते हैं। अतः एक मनु का काल ही मन्वन्तर माना जाता है। हे राजन् ! मनु तक की सभी सृष्टि नारायणिक सृष्टि है और अयोनिजा (बिना योनि से ही उत्पन्न हो जाने वाली) हैं। यह आदि सर्ग (प्रारम्भिक सृष्टि) कहा जाता है। इसे जानकर मनुष्य कीर्तिवान, आयुष्मान तथा शास्त्रज्ञ हो मनचाही मति पाता है।'

स्वायम्भुव मनु का वंश

वैशम्पायन जी बोले, 'अयोनिजा सृष्टि के बाद आपव नामक प्रजापति ने शतरूपा नामक स्त्री को पत्नी के रूप में ग्रहण किया। आपव की महिमा से शतरूपा

अनेक रूप धारण करने वाली हुई (इसीलिए उसका नाम शतरूपा अर्थात् 'सौ रूपवाली' हुआ।) उस शतरूपा ने १०,००० वर्षों तक कठोर तप किया। तब संतानोत्पत्ती की इच्छा से वह अपने पति के पास लौटी। वैराज नामक उसका वीर्यवान् पति ही स्वयम्भुव मनु कहलाया। उनके ७१ युगों के काल को मन्वन्तर कहते हैं। वैराज मनु और शतरूपा से वीर नामक पुत्र हुआ। वीर ने काम्या नामक पुत्री को उत्पन्न किया। काम्या के दो पुत्र प्रियव्रत तथा उत्तानपाद हुए। प्रजापति कर्दम के भी काम्या नामक पुत्री थी। उसके चार पुत्र–सम्राट, विराट, कुक्षि व प्रभु हुए। जो प्रियवत के संसर्ग से उत्पन्न हुए थे। उत्तानपाद को प्रजापति अत्रि ने पुत्र रूप से ग्रहण किया। बाद में उत्तानपाद ने सुनृता नामक स्त्री से–ध्रुव, कीर्तिमान, शिव और अयस्वति–ये चार पुत्र उत्पन्न किए। यह सुनृता धर्म की कन्या थी जो अश्वमेघ यज्ञ से उत्पन्न हुई थी। आगे चलकर ध्रुव ने तीन हजार देव वर्षों तक भगवान् विष्णु की तपस्या कर परम पद प्राप्त किया था। जो कि उपमा रहित और अचल है।

'हे राजन्! इस ध्रुव के तप की महानता तथा प्राप्त हुए ऐश्वर्य से प्रभावित होकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने भी ध्रुव की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। कालान्तर में ध्रुव ने

शम्भु नामक स्त्री से भव्य और शिलष्टि नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। शिलष्टि ने सुच्छामा नामक स्त्री से–रिपु, पुण्य, रिपुञ्जय, वृकल और वृकतेज नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किए। रिपु ने बृहती नामक स्त्री से तेजस्वी, चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वरिण की पुत्री पुष्करणी से चाक्षुष ने मनु, को उत्पन्न किया। मनु ने प्रजापति अरण्ड की पुत्री नड्वला से–उरु, पुरु, शतद्युम्न, तवस्वी, सत्यवान, कवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा अभिमन्यु नामक दस पुत्र उत्पन्न किए। अग्नि सुता महाप्रभा द्वारा उरु ने अंग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अंगिरा तथा गय नामक छः पुत्र और अंग ने सुनीथा से बेन नामक एक ही पुत्र उत्पन्न किया। –यह बेन देवद्रोही हुआ। ऋषियों द्वारा बेन की दाहिनी भुजा का मंथन करने से पृथु उत्पन्न हुआ। बेनपुत्र पृथु के जन्म पर ऋषियों ने भविष्यवाणी की थी कि 'पृथु उत्तम प्रजापालक, यशस्वी, तेजस्वी और महापराक्रमी राजा होगा। तथा प्रजा उसके राज्य में अत्यंत प्रसन्न व संतुष्ट रहेगी।'

पृथुवंश –वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे श्रेष्ठ भरतवंशी ! राजसूय यज्ञ द्वारा अभिषिक्त होने वाले राजाओं में पृथु प्रथम था। पृथु द्वारा किए यज्ञ की अग्नि

से सूत व मागध जातियाँ उत्पन्न हुईं। प्रजा के कल्याण के लिए इन्हीं राजा पृथु ने–देवताओं, दानवों, ऋषियों, पितरों, गंधर्वों, अप्सराओं, सर्पों, वृक्षों, लताओं तथा पर्वतों आदि के साथ मिलकर पृथ्वी का दोहन किया। इस प्रकार दुहे जाने पर पृथ्वी ने उनको अन्न आदि, औषधियाँ तथा खनिज सम्पदा रूपी पदार्थ दुग्ध रूप में दिए। बाद में पृथु से अन्तर्द्धि तथा वालित नामक दो पुत्र दिए। अन्तर्द्धि ने शिखण्डिनी नाम की स्त्री से विवाह कर हविर्धान नामक पुत्र पैदा किया। हविर्धान ने अग्नि की पुत्री धिषणा द्वारा–प्राचीन बर्हि, शुक्ल, कृष्ण, व्रज, गय तथा अजिन नाम के छः पुत्र पैदा किए। प्राचीन बर्ही अपने पिता से भी महान हुए। उन्होंने प्रजा की हर प्रकार से वृद्धि की। उन्हीं के शासन काल में कुशों को पूर्व की ओर अग्रभाग करके रखे जाने की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। प्राचीन बर्ही ने तप करने के पश्चात समुद्र की पुत्री सर्वणा से विवाह किया। सर्वणा से उत्पन्न दस पुत्र (विष्णु तथा भागवत पुराण में १०० का उल्लेख है। कहीं १००० भी कहे गए हैं) उत्पन्न किए। गुणों व रूपों में समान होने के कारण वे सभी एक ही नाम वाले हुए। धनुर्विद्या में निपुण वे सभी प्रचेता कहलाए।'

प्रचेता गण – 'प्रचेता गणों ने समुद्र के भीतर ही रह कर १०,००० वर्षों तक तप किया।' वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे राजन् ! प्रचेताओं के तप में संलग्न हो जाने से पृथ्वी राजा से हीन हो गई। प्रजाओं का रक्षक न होने से सम्पूर्ण पृथ्वी को वृक्षों ने इस प्रकार ढक लिया कि प्रजाएँ नष्ट होने लगी। (आकाश व पृथ्वी का सम्पर्क वृक्षों से घिर जाने के कारण टूट गया। न तो पृथ्वी पर तब हवा ही चल पाती थी, न प्रकाश व ऊष्मा ही आती थी; अतः प्रजा नष्ट होने लगी)। दस हजार वर्षों तक पृथ्वी अंधकार में डूबी रही। जब प्रचेताओं को यह ज्ञात हुआ, तो वे तप छोड़कर समुद्र से बाहर आए, और क्रोधित होकर अपने मुख से छोड़ी अग्नि तथा वायु द्वारा वृक्षों को शुष्क कर जलाने लगे। इस प्रकार जब बहुत थोड़े से वृक्ष रह गए तब वृक्षों व वनस्पतियों के राजा सोम की प्रार्थना पर वे शांत हुए। तब सोम ने वृक्षों की कन्या मारिषा से प्रचेताओं का विवाह किया। सोम के तेजांश तथा प्रचेताओं के तेजांश से संयुक्त मारिषा चन्द्रवंश को बढ़ाने वाली हुई।'

मारिषा का जन्म –(विष्णु पुराण में मारिषा के जन्म की बहुत सुंदर कथा मिलती है। पाठकों के लाभार्थ उसे संक्षेप में दे रहे हैं। कण्डुऋषि के तप से

आतंकित होकर प्रम्लोचा नामक अप्सरा को इन्द्र ने तपभंग के लिए भेजा। प्रम्लोचा की हँसी तथा कमर विशेष रूप से सुंदर, उत्तेजक तथा कामुक मानी गई हैं। कण्डुऋषि उसके रूप जाल में फँस गए। एक हजार वर्षों तक उन्होंने प्रम्लोचा के साथ विहार किया। प्रम्लोचा के साथ उठाए सुख के प्रभाव में वे कालावधि भूल गए। एक हजार वर्ष उन्हें एक दिन के समान मालूम पड़े। अतः एक सांय वे संध्या वंदन के लिए जाने लगे। तब प्रम्लोचा ने उपहास करते हुए कहा कि उन्हें १००० वर्षों के बाद संध्या करने की याद आई है। इस पर कण्डुऋषि को आश्चर्य हुआ। वे बोले कि अभी तो एक दिन ही बीता है। इस पर प्रम्लोचा हँसने लगी और कहा कि 'दुख में व्यक्ति को समय देर में बीतता मालूम होता है किन्तु सुख में मानो पंख लगाकर समय उड़ जाता है।' वास्तव में कण्डुऋषि एक दिन नहीं एक हजार वर्ष प्रम्लोचा से रमण करते रहे हैं। तब कण्डुऋषि को अत्यंत क्रोध आया। गलती उनकी भी थी अतः कण्डु ने प्रम्लोचा को शाप नहीं दिया, किन्तु तुरन्त आश्रम को त्याग देने का आदेश दिया। प्रम्लोचा शाप भय से पसीने पसीने होती हुए जब आकाश मार्ग से गई तो उसका गर्भ पसीने की बूंदों के रूप में वृक्षों के पत्तों पर गिर गया।

तब वायु ने उन बूंदों को एक स्थान पर एकत्रित किया और सोम ने अपनी अमृतमयी किरणों से उस गर्भ का पोषण किया। वही बाद में वृक्षों की पुत्री 'मारिषा' कहलाई। अप्सरा के अंश से वह बहुत सुंदर हुई। कण्डुऋषि, सोम तथा पवन के तेजांश से वह भविष्य में चन्द्रवंश को बढ़ाने वाली हुई। बाद में अपने पाप की शांति के लिए कण्डुऋषि ने 'पाप प्रशमन स्तोत्र' या 'ब्रह्मपार स्तोत्र' की रचना की। इच्छुक पाठक विष्णु पुराण में इस स्तोत्र को देख सकते हैं।)

दक्ष प्रजापति –'हे राजन् ! प्रचेताओं ने मारिषा के गर्भ से दक्ष प्रजापति को उत्पन्न किया। दक्ष प्रजापति ने चन्द्रवंश की वृद्धि करने वाले अनेक पुत्रों को, दो व चार पैर वाले प्राणियों को, अनेक जीवों को तथा अनेक कन्याओं को उत्पन्न किया। इन कन्याओं में से दस धर्म के साथ, तेरह कश्यप के साथ, अट्ठाईस चन्द्रमा के साथ, (एक कामदेव तथा एक शिव के साथ) ब्याही गईं। उन कन्याओं से –देवता, दानव, दैत्य, असुर, नाग, गन्धर्व, पक्षी, गौ (पशु), आदि अनेक प्रकार की संतानें उत्पन्न हुईं। और तभी से मैथुनिक सृष्टि (स्त्री व पुरुष द्वारा सम्भोग करने से) का आरम्भ हुआ। इससे पूर्व की सृष्टि मनद्वारा, संकल्प

द्वारा, दर्श (देखने) अथवा स्पर्श द्वारा ही हुई थी।' –इतना कह कर वैशम्पायन जी मौन हो गए।

मरुतों की उत्पत्ति व नारद का पुनर्जन्म

वैशम्पायन जी को मौन होते देख राजा जनमेजय बोले, 'प्रभो ! दक्ष प्रजापति की कन्याओं से उत्पन्न विभिन्न संतानों का भी सविस्तार वर्णन कीजिए।'

इस पर वैशम्पायन जी ने आगे कहा–'हे राजन् ! पहले दक्ष प्रजापति ने देवता, गंधर्व, यक्ष, ऋषि, पशु, भूत, सर्प तथा पिशाच आदि की मानसिक सृष्टि की। किन्तु उसको पर्याप्त न देख फिर कन्यायें उत्पन्न कर मैथुनिक सृष्टि को आरम्भ किया। इसके लिए उन्होंने प्रजापति वीरण की पुत्रि आसिक्नी से विवाह किया। सर्व प्रथम आसिक्नी ने दक्ष ने ५००० पुत्रों को उत्पन्न किया। फिर उन्हें सृष्टि को बढ़ाने के लिए संतानोत्पत्ति का आदेश दिया। ये सब पुत्र 'हर्यश्व' कहे गए। नारद जी ने 'हर्यश्वों' से कहा कि जब तक वे लोग अपने व भूमि के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त करते, तब तक वे भला कैसे सृष्टि कर सकते हैं। क्योंकि पूर्णता से ही पूर्णता उत्पन्न होती है। अपूर्ण व्यक्ति सृजन नहीं कर सकता।'

'हे भरतशिरोमणि ! नारद द्वारा ऐसा समझाए जाने पर 'हर्यश्व' आत्मज्ञान तथा भूमि के प्रमाण को जानने के लिए अलग-अलग दिशाओं में चले गए, सृष्टि कर्म में संलग्न नहीं हुए। तब सृष्टि बढ़ाने के उद्देश्य से दक्ष ने १००० पुत्र और उत्पन्न किए और उनको प्रजा वृद्धि का आदेश दिया। वे सभी 'शबलाश्व' कहे गए। किन्तु नारद जी ने उनको भी उपदेश देकर प्रजाउत्पत्ति के कर्म से हटा दिया। अतः 'शबलाश्व' भी अपने भाइयों की भांति आत्मज्ञान की प्राप्ति में लग गए। इस प्रकार नारद द्वारा अपने पुत्रों को प्रजा उत्पादन के कार्य से हटा कर पुनः आत्मज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर लगा दिए जाने पर दक्ष को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने नारद को पुनः गर्भ में वास करने का श्राप दे दिया, जिससे नारद नष्ट हो गए। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए गए हुए हर्यश्व तथा उनको ढूँढने गए शबलाश्व उसी प्रकार वापस नहीं लौटे, जिस प्रकार समुद्र में जाकर नदियाँ वापस नहीं लौटतीं (अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण वे ईश्वर में ही विलीन हो गए) तभी से 'भाई को ढूँढने के लिए गए भाई नष्ट हो जाते हैं'—इस प्रकार की मान्यता प्रचलित हुई।'

बाद में नारद जी को कश्यप मुनि ने दक्ष की कन्या

के गर्भ से पुनः उत्पन्न किया। इस प्रकार नारद जी के दो जन्म–प्रारम्भ में ब्रह्मा के मानस पुत्र के रूप में, बाद में कश्यप जी के पुत्र के रूप में हुए। इस प्रकार दक्ष द्वारा नारद जी को दिया पुनः गर्भवास का शाप पूर्ण हुआ।

अपने पुत्रों के नष्ट हो जाने (ईश्वर लीन हो जाने) के कारण दक्ष ने प्रजा बढ़ाने के उद्देश्य से वीरणी से साठ कन्याएं उत्पन्न कीं। उन साठ में–अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, विश्वा, साध्या, संकल्पा तथा मुहूर्ता नामक दस कन्याएँ धर्म से ब्याही गई थीं। तेरह कश्यप से, अट्ठाइस चन्द्र से, चार अरिष्टनेमी से, दो भृगुपुत्र से, दो आंगिरस से, दो कृशाश्व से, एक कामदेव और एक शिव से ब्याही गई थी। उनका वृत्तांत आगे कहूँगा। पहले धर्म से ब्याही गई दस दक्ष कन्याओं के वंश का वर्णन करता हूँ, सुनो–

धर्म व चन्द्रमा का वंश–'धर्म के विश्वा से विश्वदेव, साध्या से–साध्य, मरुत्वती से मरुत्वान्, वसु से वसु, भाने से भानु, मुहूर्ता से मुहूर्तज, लम्बा से घोष, यामी द्वारा नागवीथि, अरुन्धति द्वारा पृथ्वी के समस्त विषय तथा संकल्पा से सर्वात्मा और संकल्प नामक संतानें हुईं। चन्द्रमा को दी गई दस पुत्रियाँ सब नक्षत्र

संज्ञक थीं। रोहिणी, श्लेषा, आर्द्रा, मृगशिरा, भरणी आदि उनके नाम ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध हैं। इनसे जो उत्पन्न हुए थे—वे आठ तेजस्वी वसु—आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास नाम से प्रसिद्ध हैं। आप से वैतण्ड्य, श्रम, शांत व मुनि ये चार पुत्र हुए। ध्रुव के पुत्र लोकों को वश में रखने वाले 'काल' हुए। सोम के वर्च्चा, धर के हुत तथा हव्यवह नामक पुत्र हुए। एक अन्य पत्नी से धर ने बाद में शिशिर, प्राण तथा रमण नामक पुत्र भी उत्पन्न किए। अनिल से मनोजव तथा अविज्ञातगति नामक पुत्र हुए।'

'हे राजन् !' अनल (अग्नि) के पुत्र कुमार हुए। कृतिकाओं द्वारा पाले जाने के कारण कुमार का एक नाम कार्तिकेय भी हुआ। शाल, विशाल तथा नैगमेय कुमार के छोटे भाई थे। स्कन्ध व सनत्कुमार को भी अग्नि ने अपने चौथाई अंश से उत्पन्न किया। प्रत्यूष नामक वसु के नय ऋष्टि नामक पुत्र तथा देवल नामक कन्या उत्पन्न हुए। देवल के क्षमाशील तथा तपस्वी दो पुत्र हुए। देवगुरु बृहस्पति की बहिन ब्रह्मचारिणी योगसिद्धा प्रभास नामक आठवें वसु से विवाहित थीं। उनसे प्रभास ने प्रजापति विश्वकर्मा को उत्पन्न किया। ये विश्वकर्मा अनेक कलाओं के प्रवृतक, अनेक आभूषणों

तथा अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करने वाले देवशिल्पी हुए। देवताओं के विमानों की रचना भी इन्होंने ही की थी। वास्तुकला तथा शिल्पकला पर तो विश्वकर्मा का विशेषाधिकार हुआ। इस प्रकार यह आठ वसुओं का वंश संक्षेप में तुमसे कहा तथा धर्म व चन्द्रमा को ब्याही गई दक्ष पुत्रियों के वंशों को भी कहा। अब कश्यप को ब्याही गई तेरह दक्षपुत्रियों के वंश का वर्णन भी सुनो।'

कश्यप ऋषि का वंश–'दक्ष प्रजापति के तेरह पुत्रियाँ–सुरभि, अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खशा, विनता, ताम्रा, इरा, कद्रू तथा क्रोधावशा आदि कश्यप से विवाहित थीं। सुरभि ने तप द्वारा शंकर जी को प्रसन्न किया। उनकी कृपा से उसे कश्यप द्वारा ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए। जो–अजैकपाद, अहिंबुधन्य, त्वष्टा, रुद्र, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित वृषाकपि, शम्भु तथा कदर्पी नाम से जाने गए। त्वष्टा के पुत्र महाप्रतापी विश्वरूप हुए। हे राजन् ! पुराणों ने रुद्रों की संख्या १०० मानी है। जिनसे यह सारा जगत व्याप्त है। उनमें मृगव्याध, सर्प और कपाली ये तीन भुवन के रुद्र कहलाते हैं, किन्तु सुरभि के गर्भ से उत्पन्न ग्यारह रुद्र विशेष प्रसिद्ध माने गए हैं।'

'अब कश्यप की अन्य पत्नियों का वंश भी कहता

हूँ–वैशम्पायन जी आगे बोले, 'अदिति के बारह पुत्र हुए–जो आदित्य कहे गए। ये बारह सूर्य ही इससे पूर्व के चाक्षुष मन्वन्तर में तुषित नाम बारह देवता थे। जो इस वैवस्वत् मन्वन्तर में लोक कल्याण के लिए बारह आदित्यों के रूप में उत्पन्न हुए। इनके नाम क्रमशः विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वा, मित्र, सविता, वरुण, अंश तथा भग हैं। कश्यप की शेष पत्नियों में–दिति से दैत्य, कद्रू से सर्प, विनता से गरुड़ एवं अन्य पक्षी, दनु से दानव आदि पुत्र हुए। इनके विषय में आगे विस्तार से कहूँगा। अब दक्ष की अन्य पुत्रियों की संतानों के विषय में भी कहता हूँ। सुनो।'

'प्रजापति अरिष्ट नेमी को ब्याही गई–दक्ष की चार पुत्रियों से विद्युत के समान तेजस्वी १६ पुत्र हुए। कृशाश्व को ब्याही गई दो पुत्रियों से महर्षियों द्वारा सम्मानित प्रयंङ्गीरसिअ तथा देवव्रहण नाम के दो पुत्र हुए। तुम्हें बताता चलूँ कि, प्रत्येक कल्प (चार युगों) बीत जाने पर पहले युग में ३३ देवता कामज व मैथुनिक सृष्टि से उत्पन्न होते हैं। ऐसा वेदों में भी कहा गया है।

'हे राजन् ! कश्यप ऋषि की पत्नी दिति से हुए दैत्यों के नाम हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष थे। उनके एक बहिन भी थी, जिसका नाम सिंहिका था। वह विप्रचित्ति

से ब्याही गई थी। सैंहिकेय नामक उसका पुत्र हुआ था–सैंहिकेय के अगणित पुत्र पौत्रादि हुए। अब प्रमुख दैत्य हिरण्यकशिपु के विषय में सुनो–अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और संह्लाद नामक चार पुत्र हिरण्यकशिपु के हुए। ह्लाद से ह्लद, संह्लाद से सुन्द तथा निसुंद, अनुह्लाद से आयु व शिवि तथा प्रह्लाद से विरोचन नामक पुत्र हुए। यह प्रह्लाद पुराणों में वर्णित नहीं, महाभक्त थे जिनकी रक्षा के लिए भगवान् ने स्वयं नृसिंहावतार लिया था। प्रह्लाद पुत्र विरोचन से बलि नामक महादानी पुत्र हुए, जिनसे वामनावतार ने तीन पग भूमि दान माँगी थी। बलि के बाण, धृतराष्ट्र इन्द्रवापन, कुम्भनाद, गर्दभाक्ष तथा कुक्षि आदि १०० पुत्र हुए। इनमें बाण महाबलवान और शिवभक्त था। इसी बाणासुर ने तप द्वारा शंकर को प्रसन्न करके उन्हें अपने नगर का रक्षक बनाया था। लोहिती नामक स्त्री से बाणासुर का इन्द्रदमन नामक पुत्र हुआ, जिसने लाखों की संख्या में असुरों को उत्पन्न किया।'

'दिति के दूसरे पुत्र हिरण्याक्ष के महाविद्वान पाँच पुत्र हुए जो–कालनाभ, महानाभ, भूतसंतापन, शकुनि व झर्झर के नाम से जाने गए। अब दनु नामक दक्षपुत्रि से कश्यप ने जो दानव उत्पन्न किए उनके विषय में

कहता हूँ—दनु ने महाबली, पराक्रमी तथा तपस्वी सैंकड़ों पुत्र उत्पन्न किए। द्विमूर्धा, शकुनि, विभु, शंकुशिरा, शंकुकर्ण, विराध, गवेष्ठी, दुन्दुभि, अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मरिचि, वृक्, विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, वज्रनाभ, महाबाहु, महाबल, तारक, वैश्वानर, पुलोमा, महासुर, स्वर्भानु, वृषपर्वा, केशी, तुहण्ड, मद, आर्तचन्द्र, असिलोमा, प्रमद, मय, कुपथ, हयग्रीव, शम्बर, शरभ तथा विप्रचित्ति आदि उनमें प्रमुख हैं। इन सबके पुत्र-पौत्रों की गणना अत्यंत कठिन है। यह सभी दानव कहे गए।'

'दानवों के वंश में बाद में पुलोमा, कालिका, उपदानवी, हयशिरा, शर्मिष्ठा, प्रभा, शचि (जो बाद में इन्द्र की पत्नी हुई—पुलोमा की पुत्री है) आदि प्रमुख कन्याएँ तथा पौलोम, कालिकेय, नहुब, सृंजय, पुरु, दुष्यन्त, महाबली, विकट आदि प्रमुख पुरुष हुए। बाद में दैत्यों और दानवों के सम्पर्क से अनेक पराक्रमी महाभट उत्पन्न हुए, जिनमें—व्यंश, शल्य, वातापि, नमुचि, इल्वल, नरक, शुक तथा वज्रनाभ आदि तेरह प्रमुख हैं। राहू भी इन्हीं में एक है जो सदा सूर्य को कष्ट देने वाला है। हे राजन् ! इसी दानवों के वंश में ताड़का, मारीचि, बली, दुर्दमनीय आदि भी हुए। दुर्दमनीय की छः पुत्रियों—काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि तथा

ताम्रा से बाद में क्रमशः कौऐ, उल्लू, बाज, गिद्ध आदि अशुभ पक्षी तथा ऊँट, गधे आदि पशु एवं मगर, महामत्स्य (व्हेल) आदि जलचर उत्पन्न हुए। इस प्रकार यह दक्ष पुत्री दनु की संतानों की व्याख्या की, जो दानव कहलाए।'

'हे राजन् ! जैसा कि बताया था–विनता नाम की दक्षपुत्री ने अरुण, गरुड़ आदि पक्षियों को, सुरसा ने अनेक सिर वाले पुत्रों को तथा कद्रू ने सर्पों को उत्पन्न किया था। कद्रू से उत्पन्न होने वाले सर्पों में से प्रधान के नाम भी कहे देता हूँ। शेषनाग, वासुकि, तक्षक, महापद्म, शंख, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, कर्कोटक, धनंजय, महानील, दुर्मुख, शंखपाल तथा पुष्पदृंष्ट आदि उनमें प्रमुख हैं। दक्षपुत्रि इरा से वृक्ष, लता, तृण, वल्लरी आदि खशा नामक दक्षपुत्री से यक्ष, राक्षस व अप्सरा आदि, अरिष्टा नामक दक्षपुत्री से गंधर्व, किन्नर आदि तथा सुरभि ने बाद में गाय, भैंस आदि पशुओं को उत्पन्न किया। दक्ष पुत्री सुरभि ने प्रारम्भ में ग्यारह रुद्र भी उत्पन्न किए थे इसीलिए रुद्र को 'पशुपति' भी कहा जाता है। हे राजन् ! ये स्थावर जंगम जीव सब कश्यप की संतानें हैं। आगे इनकी संततियाँ लाखों करोड़ों में हैं। उनका वर्णन तो बड़ा कठिन है। असंभव सा ही है।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे भरत श्रेष्ठा बाद में दानवों और देवताओं में विरोध हो गया। आदित्य देवताओं के पक्ष में और दैत्य दानवों के पक्ष में हो गए। किन्तु दैत्य आदित्यों से पराजित तथा नष्ट होने लगे। अपने पुत्रों का विनाश होते देख दिति ने सेवाद्वारा अपने पतिकश्यप को प्रसन्न किया और उनसे इन्द्र के वध में समर्थ एक पुत्र माँगा। कश्यप जी ने कहा कि यदि वह १०० वर्षों तक पवित्रता पूर्वक गर्भधारण किए रहेगी तभी उसे ऐसा पराक्रमी पुत्र प्राप्त होगा। दिति ने यह शर्तमान कर गर्भधारण कर लिया और पवित्रता पूर्वक रहने लगी। कश्यप जी तप के लिए पर्वतों पर चले गए। हे राजन् ! इन्द्र सहित सभी देवता यह विवरण जानकर अत्यंत ही चिंतित हो गए। और दिति के दोष ढूँढने के प्रयास करने लगे। सौ वर्ष पूर्ण होने से पूर्व ही दिति से पवित्रता की शर्त भंग हो गई। वह बिना पैर धोए ही सोने चली गई। इन्द्र तो ताक में ही था। दोष पाते ही वह सूक्ष्म रूप धारण कर दिति के गर्भ में प्रविष्ट हो गया और वज्र द्वारा गर्भ के सात खण्ड कर दिए। खण्डित होकर रोते हुए गर्भ को इन्द्र ने 'मा रुत' (मत रोओ) ऐसा कह कर पुकारा। किन्तु वे सात खण्ड सात गर्भों में परिवर्तित हो गए। तब इन्द्र ने प्रत्येक के सात-सात टुकड़े और कर

दिए। इस प्रकार वे (७×७=४९) उनचास हो गए। यही बाद में उनचास मरुत कहे गए। (क्योंकि इन्द्र ने उन्हें 'मा रुत' कह कर पुकारा था)। ये सभी मरुत इन्द्र के सहायक हुए। यह कश्यप वंश का वृत्तांत पूरा हुआ।'

भगवान् विष्णु द्वारा पालन व्यवस्था

वैशम्पायन जी बोले, 'हे राजन् ! तब सृष्टि में व्यवस्था व सहजता पूर्वक संचालन के लिए विष्णु प्रत्येक दल में अलग-अलग प्रजापति बनाए। पृथु को मनुष्यों का राजा बनाया। वनस्पतियों, नक्षत्रों तथा द्विजों का राजा चन्द्रमा को बनाया। बारह आदित्यों का राजा विष्णु नाम आदित्य को बनाया। आठों वसुओं का अग्नि को, उनचास मरुतों का वासव को, प्रजापतियों का दक्ष को, दैत्यों का प्रह्लाद को, पितरों का सूर्यपुत्र यम को, ग्यारह रुद्रों, राक्षसों, मंत्रों, यक्षों, वृतों तथा षोडश मातृकाओं का शंकर को, दानवों का विप्रचित्तों को, भूत पिशाचों का शिव को, पर्वतों का हिमालय को, नदियों का सागर को, आकाश का वायु को, गंधर्वों का चित्ररथ को, नागों का वासुकी को, सर्पों का तक्षक को, पक्षियों का गरुड़ को, हाथियों का ऐरावत को, घोड़ों का उच्चैश्रवा को, वनचरों का सिंह को, गौओं

का सांड को, वृक्षों का पीपल को, वर्षा का मेघ को, देवताओं का इन्द्र को, फणधरों का शेषनाग को, अप्सराओं तथा किन्नरों का कामदेव को, ऋतु-मास, दिन-रात आदि समय का/काल का सूर्य को राजा बनाया।'

पृथु का चरित्र—जनमेजय द्वारा आग्रह करने पर वैशम्पायन जी ने राजा पृथु का पवित्र चरित्र सुनाते हुए आगे कहा—हे राजन् ! अति प्राचीन काल में क्षेत्रीय वंश में अंग नामक राजा हुए थे। मृत्युपुत्री सुनीता के गर्भ से उन्हें वेन नामक पुत्र प्राप्त हुआ। वेन कुत्सित वृत्तियों वाला, धर्म से गिरा हुआ तथा तत्वज्ञान से हीन था। वह देव द्रोही हुआ। उसके शासन काल में वेद अध्ययन, यज्ञ तथा आराधना आदि पर प्रतिबंध लग गया। वह स्वयं को ही यज्ञ कहता था। मरीचि आदि सप्तऋषियों द्वारा समझाए जाने पर भी उसने अपना हठ, मूर्खता व अहंकार नहीं छोड़ा। उल्टा वह उन्हीं का उपहास करने लगा। तब क्रुद्ध होकर सप्तऋषियों ने नए राजा को पाने के लिए वेन को पकड़कर उसकी दाईं जाँघ को मथा। उस मंथन से एक काला व नाटा पुरुष उत्पन्न हुआ, जो भयभीत भाव से हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। महर्षि अत्रि ने उसे 'निषीद्' (बैठ जाओ) कह कर पुकारा।

यही बाद में निषाद वंश को उत्पन्न करने वाला हुआ। उसी से पर्वतों पर वास कग्ने वाली, तुषार, धींवर तथा तुम्बर आदि अशुद्ध व असभ्य जातियों के लोग उत्पन्न हुए।'

'कार्य को सिद्ध न हुआ देख ऋषियों ने अरणी मंथन की भाँति तब वेन के दाएँ हाथ को मथा। इस मंथन से अत्यंत तेजस्वी व यशस्वी एक पुरुष उत्पन्न हुआ जो कवच पहने हुए तथा धनुषबाण धारण किए हुए था। उसका नाम पृथु हुआ। वेन के पिता अंग स्वयं बहुत कुशल और सद्गुणी थे। दाईं जाँघ को मथने से वेन का कलुष (पाप व मल) निषीद के रूप में उसके शरीर से निकल गए थे। अतः दाईं भुजा के मंथन से वेन के शरीर में रह गए उसके पिता अंग के सात्विक व श्रेष्ठ अंश से पृथु की उत्पत्ति हुई। सात्विक अंश से उत्पन्न होने के कारण वे सद्गुणी हुए। प्रजा योग्य राजा के रूप में पृथु को पाकर प्रसन्न हो गई। पृथु ने भी प्रजा का कुशलता से पालन किया। पृथु जैसे सद्पुत्र की उत्पत्ति के कारण वेन को स्वर्ग प्राप्त हुआ। प्रजा से प्रेम करने के कारण पृथु को 'राजा' कहा गया। तभी से प्रजा की रक्षा, पालन व संचालन करने वाले शासकों को राजा कहा जाने लगा।'

'हे वीर जनमेजय ! पृथु के सद्गुणों से, प्रताप और महानता से उस समय में पृथ्वी बिना जोते ही कामना मात्र से अन्न दे देती थी। गौएँ कामधेनु की भांति सबकी कामनाएँ पूर्ण कर देती थी। राजा पृथु द्वारा किए गए ब्रह्मयज्ञ में सोम रस निकालते समय परम बुद्धिमान सूत जी तथा बुद्धिमान मागध जी का जन्म हुआ। देवर्षियों ने सूत जी व मागध जी से पृथु की स्तुति करने के लिए कहा। तब सूत जी और मागध जी बोले कि पृथु के गुण, स्वभाव कर्मों आदि को जाने बिना वे कैसे स्तुति कर सकते हैं ? तब देवर्षियों ने राजा पृथु द्वारा भविष्य में किए जाने वाले महान कर्मों को बताया। उनसे प्रभावित होकर सूतजी व मागध जी ने पृथु की स्तुति की। तब से स्तुति कर्म करने वालों को सूत-मागध कहा जाने लगा।'

पृथ्वी का दोहन –हे राजन् ! अपनी स्तुति से प्रसन्न होकर पृथु ने सूतजी को अनूप देश तथा मागध जी को मगध देश प्रदान किया। इन महर्षियों ने तब प्रसन्न होकर प्रजा से कहा कि प्रथु उन्हें जीविका देने वाला होगा। यह सुन कर प्रजा जन पृथु से जीविका के प्रबन्ध का आग्रह करने लगे। महापराक्रमी पृथु तब प्रजा की जीविका व कल्याण के लिए धनुषबाण लेकर

पृथु और पृथ्वी

पृथ्वी को पीड़ित करने लगे। पृथ्वी तब गाय का रूप धरकर समस्त लोकों में भागने लगी, किन्तु न तो उसे कहीं शरण मिली, न ही पृथु के पैने बाणों ने उसका पीछा छोड़ा। अन्ततः वह पृथु की ही शरण में आकर इस प्रकार बोली, 'हे राजन् ! तुम मुझे नष्ट मत करो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगी। तुमको तुम्हारी प्रजा के लिए प्रचुर अन्न, औषधियाँ, दुग्ध, रत्न तथा सम्पदाएँ आदि दूँगी। किन्तु हे वीर ! उपाय द्वारा ही सब कार्य सिद्ध होते हैं। अतः तुम मुझे 'दुग्ध दान' (फल देने को दुग्ध दान

कहा, क्योंकि पृथ्वी गाय के रूप में थी) के लिए प्रेरित करो। किसी बछड़े को मेरे सम्मुख लाओ, जिससे वात्सल्य से प्रेरित होकर मेरे थनों से दूध (सम्पदाएँ) झरने लगेगा। तब तुम मुझे समतल कर देना, जिससे वह दूध (सम्पदाएँ) सब ओर समान रूप से फैल जाए और तुम्हारी प्रजा को समान रूप से मिल सके।'

'हे जनमेजय ! तब पृथु ने अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वतों को ऊपर नीचे कर पृथ्वी को समतल किया। ग्राम, नगर, खेत आदि की व्यवस्था की। पृथ्वी के परामर्श पर स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाया गया। जब गौरूपा पृथ्वी के थनों से दूध झरने लगा तो पृथु ने उस दुग्ध रूपी अन्न व सम्पदाओं को दुहा और पृथ्वी पर समान रूप में वितरित कर अपनी प्रजा को जीविका, सुविधाएँ तथा व्यवस्था व सामग्रियाँ प्रदान कीं। तब ऋषियों ने भी चन्द्रमा को बछड़ा अंगिरा पुत्र बृहस्पति द्वारा उस गौरूपा पृथ्वी का दोहन कराया और वेदरूपी पात्र में तप व ज्ञान रूपी दूध प्राप्त किया। देंवताओं ने इन्द्र को बछड़ा और सूर्य को दुहने वाला बनाकर हरिस्वरूप दुग्ध का तथा नागों ने तक्षक को बछड़ा व ऐरावत एवं धृतराष्ट्र को दुहने वाला बना कर विषरूप दूध का दोहन किया। इसी प्रकार असुरों ने भी माया

रूपी दूध का दोहन किया। पितरों ने स्वधा रूपी दूध, यक्षों ने अक्षय अन्तर्धान, राक्षसों व पिशाचों ने रक्त, तथा पर्वतों ने औषधि व रत्न रूपी दुग्धों का दोहन किया। इस प्रकार पृथु के प्रताप से उसकी समस्त प्रजाओं ने अपनी-अपनी इच्छानुसार पृथ्वी से फल प्राप्त किए। पृथु द्वारा जीवनदान देकर अपनी पुत्री बना लेने के कारण ही वसुन्धरा का नाम 'पृथ्वी' (पृथु की दी हुई) कहा जाने लगा। (क्योंकि दोहन के बाद ही खनिज, सम्पदाओं आदि से परिपूर्ण पृथ्वी वास्तविक रूप में सामने आई थी)। पृथ्वी दोहन पृथु का अति महान कर्म था।'

चौदह मन्वन्तरों का वर्णन

जनमेजय बोले, 'हे तपोधन ! कृपया हमें मन्वन्तरों का काल तथा उनमें होने वाली सृष्टि व प्रलय के विषय में भी सविस्तार कहिए। ज्ञान रूपी अमृत जो आपके मुख से झर रहा है, उसके श्रवण व सेवन से मेरे कान व बुद्धि तृप्त नहीं हो रहे। 'और अधिक, और अधिक' ऐसा आत्मा बराबर कह रही है। अतः कृपा कर हमारी जिज्ञासा का समाधान करें।'

तब वैशम्पायन जी इस प्रकार बोले– 'हे कौरण्य !

जो तुमने पूछा है, उसका विस्तार से वर्णन तो कई शताब्दियों में भी नहीं हो सकता। फिर भी तुम्हारी जिज्ञासा की शांति के लिए इसे संक्षेप में कहता हूँ। सुनिए–

'स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, भौत्व एवं रौच्य ये दस मनु हैं। इस समय वैवस्वत मन्वन्तर (वैवस्वत मनुकाल) चल रहा है। ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरुसावर्णि तथा दक्षसावर्णि–ये चार पर्वत पर तप करके सिद्ध हो जाने के कारण 'मेरुसावर्णि मनु' कहे गए हैं। इस प्रकार कुल १४ मनु हमने सुने हैं। वैवस्वत मनु वर्तमान काल के हैं। इससे पूर्व के मनुओं के मन्वन्तर समाप्त हो चुके हैं। इसके बाद में कहे गए मनु भविष्य में होंगे। अब इन मनुओं के पुत्र जो देव व ऋषिगण हैं–उनके विषय में भी बता रहा हूँ। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ ये सात ऋषि स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा के मानस पुत्र हुए। जो सदा उत्तर दिशा में वास करते हैं। (सप्तऋषि तारा मंडल) यामा नाम के देवता भी इसी मन्वन्तर में हुए। स्वायंभुव के–अग्निध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान, हव्य, सवन तथा पुत्र नाम वाले दस पुत्र हुए। यह प्रथम मनु

स्वायंभुव के मन्वन्तर का संक्षिप्त वर्णन हुआ।'

'स्वारोचिष मन्वन्तर में वशिष्ठ के सात पुत्र–और्व, स्तम्ब, काश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त तथा निश्च्यवन–ही सप्तऋषि हुए। इस मन्वन्तर में तुषित नाम के देवता हुए। हविर्ध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अयस्मय, प्रथित, नभस्य, नभ व ऊर्ज नामक दस पुत्र स्वरोचिष मनु के हुए। अब तीसरे–मन्वन्तर के विषय में सुनिए। उत्तम मन्वन्तर में–वशिष्ठ के ही ऊर्ज आदि पुत्र सप्तऋषि हुए तथा भानु नामक देवता हुए। उत्तम के दस पुत्र क्रमशः ईष, ऊर्ज, तनुज, मधु, माधव, शुचि, शक्र, सह, नभस्य तथा नभ हुए। चौथे मन्वन्तर में तामस मनु हुए। काव्य, पृथु, अग्नि, जन्यु, धाता, कपीदान तथा अकपीदान ये सप्तऋषि एवं सत्य नामक देवता हुए। तामस के पुत्र–द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तन्वी, धन्वी, परंतप, तथा अकल्मष ये दस हुए। पाँचवें रैवत नामक मनु के दस पुत्र क्रमशः धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, अरव्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् और कवि थे। तब रैभ्य नामक देवता हुए और उस मन्वन्तर में वेदबाहु, यदुध्र, मुनि वेदगिरा, सोम पुत्र उर्ध्वबाहु, हिरण्यरोमा, पर्जन्य तथा अत्रिपुत्र सत्य नेत्र–ये सप्तऋषि हुए।'

'छठे चाक्षुष मन्वन्तर में चाक्षुष नामक मनु के ऊरु आदि दस पुत्र हुए। भृगु, नभ, विवस्वान, सुधामा, विरजा, अतिनामा तथा सहिष्णु–ये सात ऋषि हुए। अंगिरा के पौत्र व नड्वला के पुत्र–आद्य, प्रभूत, ऋभव, पृथम्भव तथा लेखा नाम के देवता इस मन्वन्तर में हुए थे। हे राजन् ! सातवाँ मन्वन्तर जो अब चल रहा है। इसमें वैवस्वत नामक मनु हुए हैं। अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र तथा ऋचीक पुत्र जमदग्नि सप्तऋषि हों (वशिष्ट पुत्रों को भी वशिष्ठ ही कहा जाता है।) साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत, वसु, आदित्य तथा अश्विनी कुमार इस मन्वन्तर के देवता हैं और वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हैं। इन ऋषियों तथा राजाओं के पुत्र पौत्रों से सकल विश्व व्याप्त है। उनचास मरुत् इन मन्वन्तरों की रक्षा व व्यवस्था का कार्य करते हैं। मन्वन्तर के बीत जाने पर उस मन्वन्तर के ऋषि तथा देवता कार्यपूर्ण हो जाने के कारण ब्रह्मलोक को चले जाते हैं और नए ऋषि व देवगण कार्य भार संभाल लेते हैं। इसी प्रकार उनचास मरुतों में से २८ भी ब्रह्मलोक चले जाते हैं, उनका स्थान लेने के लिए तप द्वारा स्वयं को योग्य व अधिकारी सिद्ध कर चुके नए मरुत् आ जाते हैं। अब मैं तुमसे आने वाले मन्वन्तरों के

विषय में कहता हूँ।

'हे राजन् ! चार जो 'मेरु सावर्णि मनु' पहले गिना आया हूँ। उनमें वैवस्वत मनु को मिला लेने पर पाँच हो जाते हैं। ये पाँचों सावर्णि मनु कहे गए हैं। वेवस्वत के अतिरिक्त शेष चार ब्रह्मा के पुत्र हैं और पर्वतों पर तप करते रहने के कारण 'मेरूसावर्णि' कहे जाते हैं। प्रजापति रुचि के पुत्र 'रौच्य' तथा देवभूति से उत्पन्न होने के कारण 'भौत्य' कहे जाते हैं' भविष्य में इन्हीं मनुओं के मन्वन्तर होंगे। अति संक्षेप में इन मन्वन्तरों को भी सुनिए'–

'सावर्णि मन्वन्तर में–राम, व्यास, अत्रिपुत्र, दीप्तिमान्, भारद्वाज, गोत्रीय द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा, गौतमगोत्रीय, शरद्वान्, कौशिक, गालव–सप्तऋषि होंगे। सावर्णी मनु के दस पुत्र–वरीयान, अवरीयान, संमत, धृतिमान, वसु, चीष्णु, सचिष्णु, अधृष्णु, वाज तथा सुमति होंगे। दूसरे सावर्णि मन्वन्तर में–पुलस्त्य गोत्रीय मेघातिथि, कश्यप गोत्रीय वसु, भार्गव, अंगिरा, वसिष्ठ गोत्रीय सावन, अत्रिगोत्रीय, हव्यवाहन तथा पुलह गोत्रीय सत्य ये सात ऋषि होंगे। दूसरे सावर्णि मनु के–धृष्टकेतु, निराकृति, पृथु, श्रवा, भूरिद्युम्न, ऋची, कोष्टहत और गय तथा रोहित होंगे। दसवें मन्वन्तर में–हदिष्मान्,

सुकृति, आयोमूर्ति, अष्टम, प्रमिति, नभोग तथा नभ के पुत्र सत्य–ये सप्तऋषि होंगे। अग्नि व भूमि दो देवता होंगे। मनुक, सुत, निकुषंज, वीर्यवान, शतनीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिधाम व सुर्वचा ये दस पुत्र दसवें मनु के होंगे। अगले मन्वन्तर में हदिष्मान्, हदिष्मान्य, तरुण, अनध, उदधिष्ण्य, निश्वर तथा पुलह सप्तऋषि होंगे। ब्रह्मा के तीन पुत्र तब देवता होंगे। उस मनु के पुत्र–संवर्त्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, क्षेमधन्दा, दृढ़ायु, आदर्श पाण्डक आदि होंगे।'

'बारहवें मन्वन्तर में द्युति, सुतपा, तपोमूर्ति, तपस्वी, तपोशन, तपोरवि तथा धृति सप्तऋषि तथा ब्रह्मा के पाँच मानस पुत्र देवगण होंगे। तेरहवें मन्वन्तर में धुतिमान्, हव्य, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निस्प्रकम्प, निर्मोह तथा सुतपा सप्तऋषि होंगे तथा ब्रह्मा द्वारा कहे तीन गण देवता होंगे। इन तेरहवें मनु रौच्य सावर्णि के दस पुत्र–चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्मभृत, धृत, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, सुतपा, निर्भय तथा दृढ़ नाम से होंगे। चौहदवें मन्वन्तर के मनु भौत्य सावर्णी के –तरंग, भीरू, तरस्वान्, उग्र, अभिमानी, प्रवीण, जिष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा सबल-ये दस पुत्र होंगे। तब पाँच देवगण होंगे और भार्गव, अतिबाहु, सुचि, आत्रेय, युक्त, शुक्र व अजित

ये सप्तऋषि होंगे। प्रातः काल उठते ही इन सप्तऋषियों का नाम लेने से ही सुख, यश व आयु की वृद्धि होगी। हे राजन् ! चौदहवें मन्वन्तर के बाद यह कल्प समाप्त हो जाएगा। (चारों युगों की अवधि समाप्त हो जाएगी।) यह तुमसे हो चुके तथा होने वाले सभी मन्वन्तर कहे।'

काल गणना—जनमेजय द्वारा आग्रह किए जाने पर फिर वैशम्पायन जी ने मन्वन्तरों के युगों की संख्या आदि बताने के लिए आगे कहा, 'हे राजन् ! मनुष्यों में दिन रात्रि आदि काल विभाजन सूर्य करते हैं। पलक झपकने में जो समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं। पंद्रह निमेषों की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त, तथा तीस मुहूर्तों का एक दिन रात होता है। पन्द्रह दिन रातों का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन तथा दो अयनों का एक वर्ष होता है। मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक दिन रात होता है–(पितरों का दिन कृष्ण पक्ष तथा रात शुक्ल पक्ष होती है। अतः मनुष्यों का एक मास पितरों का एक दिन रात कहलाता है) क्योंकि दक्षिण अयन देवताओं की रात व उत्तर अयन देवताओं का दिन होता है। देवताओं के दस वर्ष मनु के एक दिन रात होते हैं। इस प्रकार मनु

के चार हजार वर्षों को सतयुग, तीन हजार वर्षों का त्रेता युग, दो हजार वर्षों को द्वापर युग तथा एक हजार वर्षों का कलियुग होता है। सतयुग में चार सौ वर्षों का संध्या काल व इतने ही वर्षों का संध्यांश होता है। त्रेता में तीन सौ-तीनसौ, द्वापर में दो-दो सौ व कलियुग में एक-एक सौ वर्षों के संध्या व संध्यांश होते हैं। इस प्रकार(४०००+८००+३०००+६००+२०००+४००+ १०००+२००= १२०००) कुल बारह हजार दिव्य वर्षों का एक महायुग कहा जाता है। ऐसे इकहत्तर 'महायुगों' (चतुर्युगों) का एक 'कल्प' कहा जाता है। इस में भी (२८४ युगों में, ७१×४=२८४) १४२ युगों का एक अयन होता है। इस प्रकार दक्षिण तथा उत्तर दो अयन (१४२+१४२=२८४) मिला कर एक 'कल्प' कहा जाता है।

'एक 'अयन' बीत जाने पर एक मनु का काल समाप्त हो जाता है। अतः उसे एक 'मन्वन्तर' कहते हैं। दस हजार 'मन्वन्तरों' (अर्थात् पाँच हजार 'कल्पों') का ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। ब्रह्मा का एक दिन एक 'कल्प' कहा गया है। ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होने पर सृष्टि का प्रलय हो जाता है। तब सम्पूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो जाती है। उस काल को ब्रह्मा की रात्रि

कहते हैं। इस प्रकार यह सृष्टि और प्रलय का क्रम हमेशा इसी प्रकार से चलता रहता है। यह तुमसे, कालगणना, मन्वन्तर काल तथा कल्प अवधि व प्रलय के विषय में कहा। अब तुम और जो जानना चाहते हो सो कहो।'

तब जनमेजय जी ने वर्तमान काल में चल रहे वैदस्वत मनु एवं उनके वंश के विषय में विस्तृत वर्णन सुनने की इच्छा व्यक्त की। जिसे सुन कर महाज्ञानी व तपोमूर्ति वैशम्पायन जी इस प्रकार बोले–

वैवस्वत मनु, यम, शनैश्चर आदि के जन्म का वर्णन

'हे राजन् ! दक्ष की पुत्री से उत्पन्न विवस्वान (सूर्य) का विवाह त्वष्टा की पुत्री संज्ञा से हुआ था। (कुछ पुराणों में संज्ञा के स्थान पर 'संध्या' नाम का उल्लेख भी आता है तथा त्वष्टा के स्थान पर विश्वकर्मा का उल्लेख मिलता है। त्वष्टा और विश्वकर्मा दोनों ही देवताओं के आर्किटेक्ट व इंजीनियर कहे गए हैं) संज्ञा को सुरेणु के नाम से भी जाना जाता है। संज्ञा रूप, तप व यौवन से सम्पन्न थी किन्तु अपने पति सूर्य के तीव्र ताप से सदा आतंकित व भयभीत रहती थी। क्योंकि

सूर्य के तेज से व्यथित व आतंकित संज्ञा

सूर्य का तांप उसके सौंदर्य को कुम्हला देता था। सूर्य का एक नाम मार्त्तण्ड भी है। क्योंकि बुध एक बार कश्यप ऋषि के आश्रम पर भिक्षा माँगने गए। तब कश्यप जी की गर्भवती पत्नी अदिति को भिक्षा लाने में विलम्ब होने पर बुध ने अदिति को गर्भ के मृत हो जाने का श्राप दिया। क्योंकि अदिति को गर्भ के भार से थके होने के कारण विलम्ब हुआ था। बाद में अदिति द्वारा प्रार्थना किए जाने पर कश्यप जी ने बुध के श्राप का निवारण कर दिया। मृत अण्ड से भी जीवित उत्पन्न हो

जाने के कारण बाद में सूर्य का नाम 'मार्त्तण्ड' भी हुआ।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'सूर्य के ताप से त्रस्त रहने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया को सूर्य के पास छोड़ दिया और स्वयं अपने पिता के घर चली गई। पिता ने संज्ञा को घर लौट आए देखकर कोसा और बार-बार पति के घर लौट जाने को कहा। इस प्रकार संज्ञा पिता द्वारा भी तिरस्कृत होकर उत्तर कुरुओं के पास चली गई और वहाँ घोड़ी बनकर छद्म रूप में रहने लगी। सूर्य को इस भेद का पता नहीं चला। वे संज्ञा की छाया को ही संज्ञा समझते रहे। पति का गृह त्यागने से पहले संज्ञा ने एक पुत्र को उत्पन्न किया जो श्राद्ध देव के नाम से जाना गया और विवस्वान (सूर्य) का पुत्र होने से वैवस्वत मनु कहलाया। बाद में एक पुत्र और पुत्री जुड़वाँ को उत्पन्न किया जो यम और यमी (यमुना) के नाम से प्रसिद्ध हुए। संज्ञा के गृह त्यागने के बाद उसकी छाया/ सवर्णा से भी सूर्य के दो पुत्र हुए। जिनमें पहला अपने बड़े भाई मनु के समान होने तथा छाया/ सवर्णा से उत्पन्न होने के कारण सावर्णी मनु कहलाया। और दूसरा एक पैर में विकार होने के कारण शनः शनः चलने वाला हुआ अतः वह शनैश्चर नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो ज्योतिष शास्त्र में क्रूर ग्रह के रूप में भी जाना

जाता है।'

'हे राजन् ! शनैश्चर के पैर में विकार होने की भी एक कथा है। छाया (संज्ञा की) ने अपने बच्चे हो जाने के कारण संज्ञा के बच्चों से सौतेला व्यवहार शुरू कर दिया। मनु ने धैर्यवान होने से यह व्यवहार झेल लिया, किन्तु यम उग्र स्वभाव के होने के कारण उसे सहन नहीं कर पाए। भ्रातृत्व प्रेमके वशीभूत होकर शनैश्चर ने भी माता को मारने के लिए पैर उठाया। तब छाया ने उसे पैर टूट जाने का श्राप दिया। बाद में सूर्य के बीच-बचाव करने पर शनैश्चर के पैर में केवल विकार ही हुआ। तभी से यह कहा जाने लगा कि पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाएं माता को कुमाता नहीं होना चाहिए। हे राजन् ! बाद में जब सूर्य को छाया की वास्तविकता का पता चला तो वे क्रुद्ध होकर अपने श्वसुर त्वष्टा के पास पहुँचे। तब त्वष्टा ने बताया कि तुम्हारे तेज की उग्रता के कारण ही संज्ञा ने ऐसा किया है और अब वह घोड़ी के रूप में तपस्वी जीवन जी रही है। यदि मेरा परग्मर्श मानो तो तुम्हें सान पर चढ़ा कर तुम्हारी ऊष्मा व तेज कम करके तुम्हें सुंदर बना दूँ। तब संज्ञा तुम्हारा तेज सहन कर पाएगी और ऐसी समस्या फिर उत्पन्न नहीं होगी। तब सूर्य ने वह परामर्श मान लिया। पहले उनका रूप

टेढ़ा होने से उन्हें विभावसु भी कहा जाता था। किन्तु सान पर चढ़ाकर घिसे या छील दिए जाने पर उनका रूप सुंदर व रक्तवर्णीय हो गया। इस प्रक्रिया में उनके मुख से निकले तेज से बारह आदित्य उत्पन्न हो गए। अदिति के पुत्रों के रूप में उनके नाम तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। हे राजन् ! तब संज्ञा को लिवाने के लिए घोड़े का रूप बनाकर सूर्य घोड़ी बनी संज्ञा के पास गए और रतिकर्म करने लगे। जिससे उत्पन्न बालक दस्र व नासत्व कहे गए। किन्तु माता पिता के अश्व तथा अश्विनी के रूप में रमण करने के कारण वे 'अश्विनी कुमार' के नाम से बाद में प्रसिद्ध हुए। यही अश्विनी कुमार देवताओं के प्रसिद्ध काय व शल्य चिकित्सक (फिजीशियन और सर्जन) हुए। सान पर घिसकर सूर्य का जो तेजांश त्वष्टा ने निकाला था, उससे विष्णु के सुदर्शन चक्र का निर्माण हुआ। सूर्य पुत्र यम पितरों के अधिपति व धर्मराज हुए। यमी ने बाद में यमुना नदी का रूप ले लिया और शनैश्चर ग्रह रूप से आकाश में वास करने लगे।'

'इस प्रकार वैवस्वत मनु तथा उनके भाई-बहिनों के जन्म का वृत्तांत तुमसे कहा। इन देवताओं की जन्मकथा पढ़ने या सुनने वाला समस्त आपत्तियों से छूट जाता है।

अब तुमसे वैदस्वत मनु की संतानों तथा वंशावली का भी वर्णन करता हूँ।'

वैवस्वत मनु का वंश

वैशम्पायन जी बोले, 'इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्तु, व्रांतु, नाभारिष्ट, करूष तथा वृषध्र–ये नौ पुत्र वैवस्वत मनु के हुए। पहले जब मनु के कोई संतान नहीं थी, तब मित्रावरुण देवों की प्रसन्नता के लिए उसने यज्ञ किया था। उस यज्ञ से दिव्य कवच व आभूषणों वाली इला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई थी। मनु ने उसे अपनी पुत्री मान उसे अपने आदेशों का पालन करने के लिए कहा। किन्तु वह मित्रावरुण के अंश से उत्पन्न होने के कारण उन्हीं के पास गई और उनसे आदेश करने को बोली। मित्र और वरुण इला के इस सदाचरण पर प्रसन्न हुए और बोले कि वह मित्रावरुण की कन्या रहते हुए भी मनु का वंश धारण करने वाली सुद्युम्न नामक पुत्र होगी और मनु के वंश का विस्तार करेगी। तब इला मित्रावरुण की आज्ञा से मनु के पास लौट आई, किन्तु मार्ग में ही चन्द्रमा का पुत्र बुध इला को देख उसके रूप यौवन पर आसक्त हो गया। इला भी बुध पर अनुरक्त हो गई, अतः उसने बुध के प्रणय

निवेदन को स्वीकार कर लिया। इला और बुध के सम्पर्क से पुरुखा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के उत्पन्न होने के बाद इला स्त्री से पुरुष बन गई और सुद्युम्न नाम से जानी जाने लगी। ऐसा हमने सुना है।'

'हे राजन् ! सुद्युम्न के रूप में इला ने बाद में गय, उत्कल तथा विनताश्व नामक तीन परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न किए। बाद में गय के राज्य का नाम 'गया' हुआ। क्योंकि पूर्व का राज्य गय को, पश्चिम का विनताश्व को और उत्तर का उत्कल को प्राप्त हुआ था। विनताश्व का राज्य पश्चिमापुरी तथा उत्कल का उत्कलापुरी के नाम से जाना गया। यज्ञ द्वारा इला के उत्पन्न होने के बाद इक्ष्वाकु आदि नौ पुत्र मनु के हुए थे। उनमें इला अर्थात् सुद्युम्न को जोड़ देने पर कुल दस पुत्र हुए। किन्तु इला स्त्री रूप में उत्पन्न हुई थी, अतः कुछ लोग मनु के नौ पुत्र और एक पुत्री का होना कहते हैं। मनु के सूर्य लोक चले जाने पर ज्येष्ठ एवं सर्वोत्तम होने के कारण इक्ष्वाकु ही मनु का उत्तराधिकारी हुआ। तब पृथ्वी को दस भागों में बाँट कर इक्ष्वाकु उसके आठ भाईयों तथा बहिन इला ने सुद्युम्न के (पुरुष रूप में) रूप में पृथ्वी पर शासन किया। सुद्युम्न को प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग का एक देश) का राज्य मिला था। जिसे उसने बाद में बुध

से उत्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र पुरुरवा को सौंप दिया था। इक्ष्वाकु को ज्येष्ट होने के कारण मध्यदेश का शासन मिला था।

वैशम्पायन जी आगे बोले, 'उत्कल के तीन पुत्र धृष्टक, अम्बरीष तथा दण्ड हुए। दण्ड ने तपस्वियों के परमधाम दण्डकारण्य का निर्माण किया। उस दण्डक वन में प्रवेश करने से ही मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है। त्रेता युग में विष्णु के अवतार रामचन्द्र ने वहाँ भी जानकी और लक्ष्मण सहित वास किया था। नरिष्यन्त के शक नामक और नाभाग के अम्बरेषि नामक राजाओं में श्रेष्ठ पुत्र हुए। धृष्णु के पुत्र महायोद्धा धार्ष्टक हुए, जो युद्ध प्रेम के कारण क्षत्रिय हुए। करूष में कारूष नामक मद्य पराक्रमी हजारों क्षत्रियों को उत्पन्न किया। नाभागारिष्ट के पुत्र अपनी वृत्तियों से वैश्य धर्म वाले हुए। प्रांशु के पुत्र शर्याति तथा शर्याति के पुत्र आनर्त हुए। आनर्त की एक सुकन्या नामक बहिन भी हुई, जिसका विवाह बाद में महर्षि च्यवन से हुआ। आनर्त के रेव नामक मद्य तेजस्वी पुत्र हुआ। जिसने आनर्त देश का निर्माण किया। इस देश की राजधानी द्वारिका कहलाई।'

बलराम का विवाह– 'रेव के पुत्र रैवत कहे गए। ये संख्या में १०० थे। इनमें ज्येष्ट पुत्र कुकुद्मी ने

कुशस्थली (द्वारिका) का राज्य प्राप्त किया। हे राजन् ! कुकुद्मी एक बार गंधर्वों का संगीत सुनने ब्रह्मलोक चला गया। संगीत रस में डूब कर वहाँ उसे युगों (पृथ्वी की काल गणना से) बीत गए, किन्तु वह युवा ही रहा (क्योंकि ब्रह्मा की काल गणना से कुछ मुहूर्त ही बीते थे) जब वे द्वारिका लौटा, तब वहाँ यदुवंशियों का राज्य हो चुका था। वसुदेव आदि अनेक वृष्णिवंशी, भोजवंशी तथा अंधकवंशी वीर वहाँ सुरक्षा पर तैनात थे। कुकुद्मी नामक वह रैवत तब समय का मान करते हुए रेवती नाम की अपनी सुशीला व सुंदरी पुत्री का विवाह महाबलशाली तथा महापराक्रमी बलराम से करके मेरू पर्वत पर तप करने चला गया। यह वही बलराम थे, जो शेषनाग के अवतार थे और विष्णु अवतार श्रीकृष्ण के बड़े भाई थे। कुकुद्मी रैवत के शेष छोटे भाई पहले ही यादवों के भय से द्वारिका छोड़कर अन्य दिशाओं में चले गए थे। उन सबके वंशज शर्याति कहे गए। हे राजन् ! प्रबध्र के सब पुत्र शूद्र हुए, क्योंकि गौहत्या के पाप के कारण गुरु के शाप से प्रबध्र शूद्र हो गया था। अब तुमसे वैवस्वत मनु के ज्येष्ठ और श्रेष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु का वंश कहता हूँ। जिससे इक्ष्वाकु वंश आरम्भ हुआ। छींक आने पर उत्पन्न होने के कारण उस

श्रेष्ठ पुत्र का नाम इक्ष्वाकु प्रसिद्ध हुआ था।'

इक्ष्वाकु वंश का वर्णन

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, ' हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ जनमेजय ! इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में विकुक्षी सबसे बड़ा था। विशाल कुक्षी होने से अति विकट योद्धा हुआ। उसकी प्रतिद्वन्द्विता का साहस किसी में नहीं था। वह अयोध्या के राजा हुए। विकुक्षि के शशाद आदि ४८ पुत्र दक्षिणी प्रदेश तथा शकुनि आदि ५० पुत्र उत्तरी प्रदेश की रक्षा में तत्पर रहते थे। विकुक्षि के बाद शशाद राजा बना। शशाद का पुत्र ककुत्स्थ महाबलशाली हुआ। एक बार देवासुर संग्राम में देवताओं ने ककुत्स्थ से सहायता माँगी थी। तब वृषभ रूपी इन्द्र के कन्धों पर बैठ कर ककुत्स्थ ने युद्ध कर असुरों को पराजित किया था। अतः वह ककुस्त्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ था।'

'ककुस्त्थ का पुत्र अनेना, पौत्र पृथु तथा प्रपौत्र विष्टाराश्व हुआ। विष्टाराश्व का पुत्र आर्द्र, पौत्र युवनाश्व और प्रपौत्र श्राव हुआ। श्राव को श्रावस्त भी कहा जाता है। क्योंकि उसने श्रावस्थी नगरी बसाई थी। श्रावस्त का पुत्र बृहदश्व, पौत्र कुवलाश्व हुआ। धुन्धु नामक राक्षस का वध करने के कारण कुवलाश्व का नाम धुन्धुभार

हुआ।'–ये सुनकर जनमेजय ने धुन्धु राक्षस के वध का वृत्तांत सुनाने का आग्रह किया।

धुन्धु का वध–तब वैशम्पायन जी ने कहा, 'हे राजन् ! कुवलाश्व के सौ पुत्र बड़े बलवान, दुर्जेय और धनुर्विद्या में दक्ष थे। बृहदश्व जब अपने पुत्र कुवलाश्व को राज्य सौंप संन्यास पर जा रहे थे। तब उत्तङ्क ऋषि ने उन्हें रोक कर कहा–'हमारे आश्रम के पास मरुस्थल भूमि में मधुराक्षस का पुत्र धुन्धु रेत में छिपा हुआ है। लोकों के विनाश के लिए वहाँ वह कठोर तप में लीन है। एक वर्ष बीतने पर वह जब निःश्वास छोड़ता है तो, पर्वत व भूमि काँपने लगते हैं। जोरों से अंधड़ चलता है। जिनका प्रभाव सप्ताहों तक रहता है। जिससे हमारे तप में विघ्न पड़ता है और अन्य प्रजा को भी कष्ट होता है। हे राजन् ! संन्यास पर जाने से पूर्व राजा व क्षत्रिय होने के कारण तुम्हारा पहला कर्त्तव्य हम लोगों की रक्षा करना है। अतः महाबली, विशालकाय और इन्द्र द्वारा भी अवध्य उस असुर से हम सब की रक्षा कीजिए। संन्यास बाद में लीजिएगा।'

'हे जनमेजय ! तब बृहदश्व ने उत्तङ्क ऋषि से कहा–'हे महर्षि ! आपका कहना उचित है, किन्तु मैं संन्यास धारण करने का निश्चय कर शस्त्र त्याग चुका

हूँ, अतः पुनः शस्त्र उठा नहीं सकता। परन्तु आप चिन्ता न करें। मेरा पुत्र कुवलाश्व इस कार्य को करेगा।' हे राजन् ! तब कुवलाश्व पिता की आज्ञा मान हर्ष व उत्साह पूर्वक धुन्धु असुर के वध को चला गया महातेजस्वी धुन्धु को विष्णु तेज से ही मारा जा सकता था, क्योंकि उसे वर प्राप्त था। अतः उत्तङ्क ऋषि की प्रार्थना पर विष्णु ने अपने तेज का अंश कुवलाश्व में प्रविष्ट कर दिया। कुवलाश्व के १०० पुत्रों ने मरुस्थल को खोदकर पश्चिम दिशा में धुन्धु को खोज निकाला। धुन्धु ने क्रुद्ध होकर उनमें से ९७ पुत्रों को भस्म कर दिया। तब कुवलाश्व ने धुन्धु को ललकारा और अद्भुत् पराक्रम दिखाकर उसका वध कर दिया। इस प्रकार वे धुन्धुमार नाम से प्रसिद्ध हो गए।'

गालव जन्म व त्रिशंकु की कथा

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'कुवलाश्व के शेष बचे तीन पुत्रों (दृढ़ाश्व, चन्द्राश्व, कपिलाश्व) में दृढ़ाश्व सबसे बड़ा था। दृढ़ाश्व के पुत्र तथा पौत्र क्रमशः हर्यश्व और निकुम्भ हुए। निकुम्भ के संहताश्व नामक पुत्र और हेमवती नामक पुत्री हुई। संहताश्व के पुत्र अकृसाश्व तथा कृशाश्व हुए। हेमवती तीनों लोकों

में प्रसिद्ध हुई। उसके दृषद्वती नामक पुत्री थी और प्रसेनजित् नामक पुत्र हुआ। प्रसेनजित् के गौरी नामक स्त्री से युवनाश्व नामक पुत्र हुआ। यह गौरी बाद में शापग्रस्त होने से बाहुदा नामक नदी हो गई थी। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुए जिन्होंने त्रिलोक विजय की। शशविन्दु की पुत्री चैत्ररथी से मान्धाता के पुरुकुत्स व मुचुकुन्द नामक दो पुत्र हुए। पुरुकुत्स के पुत्र पौत्रादि के क्रम में आगे–त्रदस्यु, संभूत, सुधन्वा त्रिधन्वा, त्र्ययारुण तथा सत्यव्रत हुए। सत्यव्रत दुर्बुद्धि होकर विवाह मंत्रों में व्यवधान डालने लगा और कामातुर होकर दूसरे को ब्याही जा रही कन्या का अपहरण कर लाया। उसके इस दुष्कर्म के कारण त्र्ययारुण ने उसे त्याग दिया और उसे चाण्डालों के साथ बसने का शाप दिया। अतः सत्यव्रत चाण्डालों के साथ रहने लगा। त्र्ययारुण ने संन्यास ले लिया। सत्यव्रत द्वारा हुए अधर्म के कारण इन्द्र ने १२ वर्षों तक उनके राज्य पर वर्षा नहीं की।'

गालव ऋषि का जन्म–'विश्वामित्र अपनी स्त्री को धरोहर के रूप में उसी राज्य में छोड़ सागरानूप नामक स्थान पर तप को गए हुए थे। कुटुम्ब के पोषण व जीविका के लिए बाद में उनकी स्त्री अपने औरस मंझले लड़के को पशु की भाँति गले में रस्सी बाँधकर

उसे बेचने ले जा रही थी, तब इस सत्यव्रत ने विश्वामित्र का कृपापात्र बनने के उद्देश्य से उस पुत्र को छुड़ा लिया और विश्वामित्र के कुटुम्ब का पालन पोषण करने लगा। हे राजन् ! विश्वामित्र का वह मंझला पुत्र गले में रस्सी बाँधे जाने के कारण 'गालव' कहा गया। बाद में गालव तप करके महर्षि बना।'

हे राजन् ! वशिष्ठ इक्ष्वाकुवंशियों के धर्म व राजगुरु थे। सत्यव्रत को त्यागे जाने पर वशिष्ठ ने त्र्ययारुण को रोका न था, बल्कि प्रोत्साहित ही किया था। इस कारण सत्यव्रत वशिष्ठ से रुष्ठ था। वह विश्वामित्र को अपना गुरु बना कर वशिष्ठ को नीचा दिखाना चाहता था इसीलिए उसने विश्वामित्र के कुटुम्ब का भरण पोषण का कार्य सँभाल लिया था। फिर वह बारह वर्ष तक तप के लिए वन को चला गया, तब राजा न होने से और राजगुरु के कर्त्तव्य पालन के लिए वशिष्ठ ने ही सत्यव्रत के पिता के राज्य का संचालन सँभाल लिया था। एक दिन वशिष्ठ की गाय सत्यव्रत के आश्रम की ओर घास चरती हुई आ पहुँची। सत्यव्रत ने वशिष्ठ की गाय पहचान ली।'

सत्यव्रत का त्रिशंकु होना—'वशिष्ठ की गाय को सत्यव्रत ने मार डाला। उस गाय का माँस न केवल

उसने खुद खाया बल्कि अपने साथ रह रहे विश्वामित्र के कुटुम्ब को भी खिलाया। क्योंकि वह वशिष्ठ से रुष्ट था। किन्तु इस घटना का जब वशिष्ठ को पता चला, तो वे अत्यंत क्रुद्ध हुए। दूसरे को ब्याही जाने वाली कन्या का अपहरण, गौहत्या, तथा गौमाँस का भक्षण-ये तीन वेद विरुद्ध कार्य करने के कारण वशिष्ठ ने सत्यव्रत को त्रिशंकु हो जाने का श्राप दिया। (त्रिशंकु का अर्थ है तीन दोषों या तीन कोनों-कांटों वाला।)'

'हे राजन्! विश्वामित्र जब तप करके लौटे और उन्हें त्रिशंकु (सत्यव्रत) द्वारा अपने कुटुम्ब के भरण पोषण का समाचार ज्ञात हुआ, तो उन्होंने त्रिशंकु से वर माँगने को कहा। तब त्रिशंकु ने वशिष्ठ के शाप से तीन कोणों वाले हो चुके अपने शापग्रस्त शरीर को पिता के श्राप से चाण्डालों के साथ रहने से अपवित्र भी हो चुका था-के साथ ही स्वर्ग जाने का वर विश्वामित्र से माँगा। तब विश्वामित्र ने ऐसा ही किया। (कुछ पुराणों के अनुसार इन्द्र आदि देवताओं ने त्रिशंकु को पापी शरीर के साथ स्वर्ग में प्रवेश न दिया और विश्वामित्र उसे तपोबल से ऊपर उठाते रहे। अतः वह बीच में ही लटक गया। तब विश्वामित्र ने त्रिशंकु के लिए ऊपर स्थान पर नए स्वर्ग की सृष्टि कर दी थी) हे राजन्!

त्रिशंकु की पत्नी 'सत्यरथा' केकय वंश की थी। उसके निष्पाप पुत्र हरिश्चन्द्र को तब राज्य सौंपा गया। हरिश्चन्द्र ने अपने एक पुत्र रोहित के नाम पर रोहित पुरी बसाई थी। यह हरिश्चन्द्र सम्राट हुए। पुराणों में इनकी सत्यवादिता, दान, तप तथा वचन पालन की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं।'

'कालांतर में रोहित का पुत्र हरित, पौत्र चञ्चु तथा प्रपौत्र विजय व सुदेव हुए। विजय ने सम्पूर्ण क्षत्रियों को जीता। विजय के पुत्र रूरूक, पौत्र वृक तथा प्रपौत्र बाहु हुए। बाहु धर्मपालन और वीरता में परिपूर्ण न थे अतः हैहयवंशी ताल जङ्घ क्षत्रियों ने शक, दवन, कम्बोज, पारद व पह्लवों को साथ लेकर बाहु को राज्य से उतार दिया। राज्य से निष्काषित बाहु पत्नी सहित और्व ऋषि के आश्रम पर चला गया। वहाँ पैदा हुआ उसका पुत्र, दिष के साथ उत्पन्न होने के कारण 'सगर' कहलाया। सगर महापराक्रमी और अप्रतिम धनुर्धर हुआ। उसने बाद में हैहयवंशियों तथा उनके सहयोगियों को पराजित कर पिता का राज्य पुनः अपने अधिकार में ले लिया।'

सगर की उत्पत्ति की कथा

राजा जनमेयजय द्वारा दिषसहित उत्पन्न होने वाले

बाहु के पुत्र सगर का वृत्तांत जानने की इच्छा पर ऋषि वैशम्पायन जी ने इस प्रकार कहा–

'हे राजन् ! पहले कह आया हूँ कि हैहयवंशियों ने बाहु का राज्य छीन लिया था, तब उसने और्वऋषि के आश्रम में आश्रय लिया था। उस समय यदुवंश की कन्या जो बाहु की पत्नी भी थी उसके पीछे चली गई थी, किन्तु उसकी सौत ने उसके गर्भवती होने के कारण उसे ईर्ष्या के कारण विषपान करा दिया था। वह चाहती थी कि विष के प्रभाव से रानी का गर्भ नष्ट हो जाए किन्तु ईश्वर की कृपा से ऐसा न हुआ। और्वऋषि के आश्रम में बाहु की मृत्यु हो जाने पर उसकी रानी ने सती होना चाहा, किन्तु उसके गर्भवती होने के कारण और्वऋषि ने उसे रोक लिया। समय आने पर और्व के आश्रम में ही बाहु की रानी को प्रसव हुआ। प्रसव में शिशु विष में लिपटा हुआ निकला था। अतः 'गर (विष) के साथ उत्पन्न होने के कारण वह बालक सगर कहलाया। अन्यथा बाहु का महापराक्रमी और महातेजस्वी पुत्र होने के कारण उसका नाम 'महाबाहु था। और्वऋषि के आश्रम में ही समगर को वेद तथा शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दीक्षा दी और देवताओं द्वारा भी दुस्सह आग्नेयास्त्र उसे दिया। अस्त्र बल से युक्त होकर

सगर ने हैहयवंशियों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें पराजित करके अपना राज्य वापस लिया हैहयवंशी आदि वे सभी पराजित राजा तब वशिष्ठ की शरण में चले गए। वशिष्ठ ने शरणगत की रक्षा को कर्त्तव्य जान उनका पीछा करने वाले सगर को उनके वध से रोक दिया। तब सगर ने वशिष्ठ का सम्मान कर उनका वध तो नहीं किया, किन्तु दण्ड स्वरूप उनके केशों का मुण्डन कर उन्हें क्षात्रधर्म से च्युत कर दिया।'

'हे राजन् ! आस पास की भूमि जीतकर सम्राट बनने के बाद चक्रवर्ती बनने के लिए सगर ने अश्वमेघ यज्ञ किया। दक्षिण दिशा में जाते हुए समुद्र के किनारे इन्द्र ने यज्ञ के अश्व का अपहरण कर लिया। किन्तु उस अश्व की रक्षा में स्वयं महापराक्रमी सगर को देखकर इन्द्र ने वह अश्व पृथ्वी में छिपा दिया। सगर ने अपने साठ हजार एक पराक्रमी पुत्रों को भूमि खोदकर अश्व ढूँढ निकालने को कहा। भूमि खोदे जाने पर भीतर महासमुद्र में कपिल मुनि की योग निद्रा भंग हो गई। कपिल मुनि के क्रोध में नेत्र खुले तो सगर के पुत्र जल कर भस्म हो गए। वंश वृद्धि के लिए–बर्हकेतु, सुकेतु, धर्मस्थ व पंचजन ये चार पुत्र ही शेष रह गए। तब भगवान् विष्णु ने सगर को वर देते हुए कहा कि उसके

आदेश पर भूमि खोदे जाने पर निकलने के कारण समुद्र को आगे सागर कहा जाएगा और सगर का पुत्र कहा जाएगा। तथा इक्ष्वाकु का वंश अक्षय व अमर कीर्ति वाला होगा। बाद में सगर को यज्ञ का अश्व भी पृथ्वी में से मिल गया और उसका अश्वमेघ यज्ञ पूर्ण हुआ।(बाद में सगर के प्रपौत्र भागीरथ ने गंगा को भूमि पर लाकर सगर के ५९९९७ पुत्रों का उद्धार किया था, जो भस्म हो गए थे)।

'हे राजन् ! राजा सगर की दो रानियाँ थीं। बड़ी विदर्भ की पुत्री 'केशिनी' थी। छोटी अरिष्टनेमी की पुत्री 'ईलनी' परम सुंदरी थी। और्वऋषि ने उन दोनों से कहा कि उनमें एक ६०,००० पुत्रों का और दूसरी एक ही पुत्र का वरदान माँग ले। इस पर छोटी ने ६०,००० का और बड़ी ने एक ही पुत्र का वर माँगा। तब केशिनी का असमंजस नामक पुत्र हुआ। जो बाद में पंचजन नाम से प्रसिद्ध हुआ। और ईलनी ने एक बीजों से भरे तुम्बे को उत्पन्न किया। जिनमें तिल के आकार के ६०,००० गर्भ थे। बाद में उनमें से केवल तीन ही शेष रहे, क्योंकि कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने शेष को भस्म कर दिया था। पंचजन उनमें श्रेष्ठ होने के कारण सगर के बाद राजा बना। पंचजन के पुत्र अंशुमान हुए जो महाज्ञानी

होने से खट्वांग नाम से प्रसिद्ध हुए। अंशुमान के पुत्र दिलीप हुए जो महापराक्रमी हुए। इन्हीं दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए, जिन्होंने तप करके गंगा को पृथ्वी पर उतारा और सगर के भस्म हुए पुत्रों का उद्धार किया। इसीलिए गंगा को भागीरथी भी कहते हैं। भगीरथ के पुत्र, श्रुत, पौत्र नाभाग और प्रपौत्र अम्बरीष हुए। अम्बरीष के पुत्र का नाम सिन्धुद्वीप, पौत्र का नाम अयुताजित तथा प्रपौत्र का नाम ऋतपर्ण था।'

'हे कौरण्य ! ये ऋतपर्ण द्यूतक्रीड़ा के विशेषज्ञ और महाबली नल के मित्र हुए। ऋतपर्ण के पुत्र, पौत्रादि के क्रम में क्रमशः आर्तपर्णि, सुदास (जो इन्द्र के मित्र हुए), सौदास (जो कल्माष पद व मित्रसह के नाम से भी जाने गए) सर्वकर्मा, अनरण्यदेव (जिनकी मुठभेड़ रावण से हुई थी), निध्न, अनमित्र, दुलिदुह, दिलीप और रघु हुए। ये रघु अत्यंत पराक्रमी और बलशाली थे। इनके बाद से इक्ष्वाकु कुल रघुवंश के नाम से जाना जाने लगा। वैसे तो इन सभी के पूर्वज वैवस्वत् मनु थे, जो सूर्य पुत्र थे, अतः ये सभी सूर्यवंशी (मूलतः) राजा हैं। रघु के पुत्र महाप्रतापी अज तथा अज के पुत्र महावीर दशरथ हुए। दसों दिशाओं में उनका रथ निबधि जा सकता था (दसों दिशाओं के शत्रु उनसे पराजित हो

चुके थे) अतः उन्हें दशरथ कहते थे। दशरथ के पुत्र–लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा विष्णुअवतार रा हुए। राम इनमें ज्येष्ठ व श्रेष्ठ थे। राम के दो पुत्र ल और कुश हुए। कुश के पुत्र अतिथि, पौत्र निबध औ प्रपौत्र नल हुए। नल के पुत्र नभ, पौत्र पुण्डरीक तथ प्रपौत्र क्षेमधन्वा हुए।'

हे राजन् ! क्षेमधन्वा के पुत्र पौत्रादि का क्रम इ प्रकार है–देवानीक, अहिनगु, सुधन्दा, अनल, उक्थ वज्रनाभ, शंख (जो महाविद्वान होने के कारण व्युषिताश नाम से विख्यात हुए), पुष्प, अर्थसिद्ध, सुदर्शन अग्निवर्ण, शीघ्र, मरु और बृहद्बल। इस प्रकार ये तुम विवस्वान (सूर्यवंश) का वर्णन कियां जो आगे चलक इक्ष्वाकु वंश तथा रघुवंश भी कहा गया। इस आख्या को पढ़ने वाला निरोग, दीर्घायु, पुत्रवान् तथा निष्पा होकर अंत में सूर्य के लोक को ही प्राप्त हो जाता है अब और जानना हो, सो कहो।'

श्राद्ध की विधि तथा फल

वैशम्पायन जी द्वारा आज्ञा मिलने पर राजा जनमेज ने कहा, हे मुनिश्रेष्ठ ! मन को श्राद्धदेव क्यों कहा जात है ? श्राद्ध की श्रेष्ठ विधि क्या है ? तथा कल्याण

चाहने वाला मनुष्य किस प्रकार कल्याण प्राप्त कर सकता है ? कृपा कर यह सब भी मुझसे कहिए।'

तब वैशम्पायन जी ने कहा, 'भीष्म द्वारा पूछे जाने पर मार्कण्डेय जी ने जो उनसे कहा, 'बाण शैय्या पर भीष्म ने यही ज्ञान युधिष्ठिर को दिया और मार्कण्डेय जी ने जो सनत्कुमारों से पूछा था–वही सब मैं तुमसे कहूँगा। तुम गंभीरता पूर्वक इस प्रसंग को सुनो। युधिष्ठिर को भीष्म जी ने इस प्रकार समझाया था।–'

'सम्पूर्ण कामनाओं के लिए श्राद्ध द्वारा जो पितरों को तृप्त करता है, उसे इस लोक और परलोक दोनों में सुख मिलता है। पितर प्रसन्न होकर श्राद्ध करने वाले की हरेक इच्छा पूर्ण करते हैं। अतः कल्याण चाहने वाले को उचित विधि से पितरों का श्राद्ध अवश्य करना चाहिए।'

'हे राजन् ! तब युधिष्ठिर ने पूछा कि किसी के पितर स्वर्ग में वास करते हैं, किसी के नरक में। फिर श्राद्ध करने वाले का श्राद्ध उन तक किस प्रकार पहुँचता है ? और स्वर्ग में वास करने वाले पितर तो मनुष्य की इच्छा पूर्ण कर भी देते हों, मगर नरक में रहने वाले मनुष्य की इच्छा पूर्ण करने में कैसे समर्थ होते हैं ? तब भीष्म ने कहा–'

'हे प्रिय युधिष्ठिर ! एक बार जब अपने पितरों का मैं श्राद्ध करने लगा तो मेरे पिता का हाथ भूमि से निकल कर मुझसे पिण्ड माँगने लगा। मैं जब पिण्डों को कुशों पर रखता तो मेरे पिता की आवाज मुझे सुनाई दी। उन्होंने मुझसे इस प्रकार कहा, 'हे प्रिय देवव्रत ! मैं तुम्हारे जैसा धर्मज्ञ पुत्र पाकर कृतार्थ हो गया। मैंने धर्मशास्त्र सम्बन्धी तुम्हारे ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए अपना हाथ निकाल कर तुमसे पिण्ड दान माँगा था। पर तुमने पिण्ड मेरे हाथ पर न रख कर कुशों पर रखा जो की श्राद्ध विधान के अनुकूल है। मोहवश तुमने मर्यादा को भंग नहीं किया। इस प्रकार तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बेटा ! धर्म रक्षक राजा को धर्म का चौथा अंश मिलता है। धर्म की रक्षा न करने वाले मूर्ख राजा को पाप का चौथा अंश मिलता है। अतः मैं तुम्हारे धर्म ज्ञान व धर्म पालन पर प्रसन्न होकर तुमको इच्छा मृत्यु का वरदान देता हूँ। जब तक तुम चाहोगे नहीं, तब तक मरोगे नहीं। और जो चाहते हो, मुझसे माँग लो।'

'हे धर्मराज ! तब मैंने उनसे कहा कि मुझे उनके आर्शीवाद के रूप में सभी कुछ मिल गया, किन्तु मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ—मेरे द्वारा ऐसा कहे जाने पर मेरे पिता शान्तनु की आत्मा वहाँ प्रकट हो गई

और उन्होंने मुझसे प्रश्न पूछने को कहा। तब मैंने उनसे पूछा– 'पिताजी ! मैंने सुना है कि–पितर देवताओं के भी देवता होते हैं ! (देवताओं द्वारा भी पूजे जाते हैं) अतः हमें किसको पूजना चाहिए ? (पितरों को या देवताओं को) ? और हमारे द्वारा दिए गए श्राद्ध से पितर किस प्रकार संतुष्ट होते हैं ? कृपया इस कौतुहल का निवारण कीजिए।' यह सुनकर पिताजी ने बताया– 'स्वर्ग के पितर ब्रह्मा के मानस पुत्र होते हैं। उन्हीं की पूजा देवता भी करते हैं। ब्रह्मा की आज्ञा से ही वे पितर श्राद्ध करने वालों के श्राद्ध से तृप्त होकर उनका कल्याण करते हैं। जब नाम गोत्र के उच्चारण के साथ तर्पण किया जाता है तब वह सर्वप्रथम स्वर्ग में रहने वाले पितरों को प्राप्त होता है, फिर वे पितर नाम गोत्र आदि की पहचान से अन्य पितरों (जो स्वर्ग में नहीं रह रहे) को पहुँचाते हैं। यह तुमसे संक्षेप में मैंने कहा। संयोगवश इस श्राद्ध में महाज्ञानी मार्कण्डेय जी पधारे हुए हैं। तुम इन प्रश्नों का विस्तृत उत्तर जानना चाहते हो तो उनसे पूछो।' ऐसा कहकर मेरे पिता अन्तर्धान हो गए। हे युधिष्ठिर फिर मैंने मार्कण्डेय जी से यही प्रश्न पूछा ! तब मार्कण्डेय जी ने इस प्रकार बताया–

'हे निष्पाप भीष्म ! मैं अवश्य तुमसे यह विस्तार से

कहूँगा। मैंने पितरों के ही प्रसाद से दीर्घायु और यश पाया है। मैंने पहले एक युग तक मेरु पर्वत पर तप किया था। तब उत्तर की ओर से आने वाले एक दिव्य विमान में मैंने अँगूठे के बराबर एक पुरुष को सोते देखा। मैंने प्रणाम कर उनसे उनका परिचय पूछा तो वे हँस कर कहने लगे–'तुमने हजारों वर्षों तक तप किया है, हमें पहचानो।' मेरे असमर्थता प्रकट करने पर उन्होंने अँगूठे के बराबर वाले रूप को त्याग सामान्य पुरुष का रूप धारण किया। फिर बताया कि वे सनत्कुमार हैं। ब्रह्मा के सभी अन्य मानस पुत्रों के बड़े भाई हैं। किन्तु निरंतर बालक रूप में ही रहने से वे सनत्कुमार कहे जाते हैं। वे मुझे दर्शन देने और मेरा प्रिय करने के उद्देश्य से पधारे हैं–हे महावीर ! तब मैंने उनसे यही प्रश्न किया था, जो तुमने मुझसे किया है। इस पर जो मुझे उन्होंने बताया वही तुमसे कहता हूँ। तुम एकाग्रता पूर्वक सुनो। यह कहकर मार्कण्डेय जी ने वह प्रसंग सुनाया।'

'सनत्कुमार जी बोले– 'हे भृगु वंशी ! पहले ब्रह्मा ने देवताओं की जब रचना की थी, तब वे पितामह ब्रह्मा को पूजने की बजाय अहंकार और भोग में ही लिप्त हो गए थे। ब्रह्मा ने तब उन्हें श्राप देकर उनका देवत्व नष्ट कर दिया। शाप मिलने पर वे पछताते हुए ब्रह्मा जी से

अनुनय विनय करने लगे। ब्रह्माजी ने उनका बचा हुआ अहंकार भी तोड़ने के उद्देश्य से कहा कि शाप मोचन का उपाय वे अपने ही पुत्रों से पूछें। तब देवों ने अपने पुत्रों से ही उपाय पूछा। पुत्रों ने बताया–वाणी, मन, कर्म तथा नेत्रों से प्रायश्चित होता है। हे पुत्रो अब तुम प्रायश्चित के उद्देश्य से ब्रह्मा की शरण में जाओ। इस प्रकार पुत्रों द्वारा स्वयं को पुत्र कहे जाने पर देवता बड़े अपमानित तथा हैरान हुए। जब वे ब्रह्मा के पास जाकर प्रायश्चित करने लगे, तब ब्रह्मा ने कहा–'तुम्हें 'पुत्र' सम्बोधन देकर तुम्हारे पुत्रों ने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है। उनको जन्म देने के कारण तुम भले ही उनके पितर हो, किन्तु तुम्हें ज्ञान देने के कारण वे भी तुम्हारे पितर हैं अतः तुम एक दूसरे के पुत्र भी हो और एक दूसरे के पितर भी हो।'–हे ऋषिश्रेष्ठ ! तभी से देवताओं ने पितरों का पूजन आरम्भ किया। ब्रह्मा के आर्शीवाद तथा आज्ञानुसार पितर सदैव पूजा करने वालों तथा विधिपूर्वक श्राद्ध करने वालों का कल्याण करते हैं। यह निश्चित है। श्राद्ध में नाम गोत्र आदि का उच्चारण करते हुए पिता, पितामह और प्रपितामह को तीन पिण्ड अर्पित किए जाते हैं। जिनसे तृप्त होकर वे श्राद्धकर्ता का मनोरथ पूर्ण करते हैं। इस प्रकार देवता और पितर

एक दूसरे के पूरक हैं। अतः दोनों ही पूज्य हैं।'

मार्कण्डेय जी ने आगे कहा–'इस प्रकार समझाए जाने पर मैंने श्राद्ध के सम्बंध में सनत्कुमार जी से अन्य जो भी प्रश्न पूछे। उनके उत्तर भी तुमसे कहता हूँ। उन्हें जान लेने के बाद हे भीष्म ! श्राद्ध के संबंध में तुम्हारे सभी संदेहों का निवारण हो जाएगा। सुनो–

सनत्कुमार जी ने कहा, 'पितरों के सात कण हैं। जिनमें –सुकाल, आंगिरस, सुस्वधा तथा सोमय–ये चार शरीर धारण करने वाले (मूर्तिमान) हैं, और वैराज, अग्निष्वात्ता तथा बर्हिषद ये बिना शरीर वाले सूक्ष्मगण हैं, जो अदृश्य ही रहते हैं। योगियों को श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। हे मार्कण्डेय ! बिना शरीर वाले तीनों गण ब्रह्मा के सनातन लोक में रहते हैं वे श्राद्ध करने वाले को सालोक्यता देकर मुक्त कर देते हैं, अतः मैंने कहा कि योगियों को श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। शरीर वाले गणों में सोमय सोम की वृद्धि करने वाले हैं। वैराज की पुत्री मेन हिमालय की पत्नी और मैनाक की माता हैं। मैनाक के पुत्र क्रौंच पर्वत हैं। मैनाक की तीन बहिनें–अर्पणा, एकपर्णा तथा एकपाटला हैं। निराहार तप करने से अपर्णा, एक ही पत्ता खाकर तप करने से एकपर्णा तथा एक गुलाब का फूल ही खा कर तप

करने से एक पाटला नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई। निराहार रह कर तप करने वाली अपर्णा को 'उमा' भी कहते हैं। क्योंकि उसकी माँ ने उसे 'उ' (ऐसा) 'मा' (मत करो) कहकर निराहार तप से रोका था। यही तीनों बहनों में बड़ी तथा श्रेष्ठ मानी जाती हैं। यही बाद में महादेव की पत्नी हुईं। एकपर्णा असित देवलऋषि की तथा एक पाटला जैगीषव्य ऋषि को ब्याही गईं।'

'अग्निस्वात्ता' नामक पितरों के जो गण हैं—उनकी मानसिक कन्या 'अच्छोदा' एक नदी के रूप में है। अपने पितरों के न पहचानने के कारण वह स्वर्ग से च्युत होकर नदी बन गई थी। भ्रम वश उसने अमावसु नामक वसु को ही अपना पितर समझ लिया था। अतः अगले जन्म में वह जब अमावसु की पुत्री हुई, तब अमावसु ने पृथ्वी पर जन्म लिया। तब वह सत्यवती के नाम से जानी गई। पाराशर ऋषि से संभोग कर उसने महर्षि वेदव्यास को जन्म दिया। बाद में शांतनु से विवाह कर चित्रांगद और विचित्रवीर्य की माता हुई। अब तीसरे पितरों के गण बर्हिषद के विषय में भी सुनो। ये सूर्यलोक में रहते हैं। इनकी मानसी कन्या का नाम पीवरी है। पीवरी ने ही द्वापर में पृथ्वी पर जन्म लेकर महर्षि व्यास की अरणी से उत्पन्न निर्धूम अग्नि की

भांति–महातेजस्वी, तपस्वी व योगी शुकदेव जी को उत्पन्न किया था। जो कृष्ण, गौर, प्रभु तथा शम्भु इन चार योग में प्रवीण पुत्रों और कृत्वी नाम एक पुत्री के पिता हुए। कृत्वी राजा अणुमह की पटरानी और ब्रह्मदत्त की माता हुई। इस प्रकार से सूक्ष्म शरीर वाले पितरों का वर्णन किया। जो मूर्तिमान पितर हैं उनका संबंध वृष्णि वंश तथा अंधक वंश से है। अब उनका वर्णन करूँगा।'

'सुकाल नाम के जो गण हैं वे प्रजापति वशिष्ठ के पितर हैं और स्वर्ग के वासी हैं। ब्राह्मण इन्हीं पितर की पूजा करते हैं। इनकी मानसी कन्या 'गौ' राजा शुक से विवाहित हुई जो कि हे भीष्म तुम्हारे ही वंश के थे। उनको ' शृंगा' भी कहते हैं। आंगिरण नामक दूसरे जो पितरों के गण हैं, वे अंगिरा ऋषि के पितर हैं। मरीचि गर्भ लोक में वास करते हैं। इनकी पूजा क्षत्रीय करते हैं। इनकी मानसी कन्या 'यशोदा' हुई जो विश्वमहत की पत्नी वृद्धशर्मा की पुत्रवधु और दिलीप की माता हुई। सुस्वधा नामक तीसरे गण प्रजापति कर्वम के पितर हैं, ये भी स्वर्ग के वासी हैं। वैश्य लोग इनकी पूजा करते हैं। इनकी मानसी कन्या 'दिरजा' नहुष को ब्याही गई और ययाति की माता हुई। सोमप नामक गण हिरण्यगर्भ के पितर हैं। शूद्र इन की पूजा करते हैं ये मानस लोक के

वासी हैं इनकी मानसी पुत्री नर्मदा है, जो नदियों में श्रेष्ठ हैं। ये पुरुकुत्स को ब्याही गईं तथा त्रसदस्यु की माता हुईं। प्रत्येक युग में धर्म के नष्ट होने पर पितरों की पूजा के लिए मनु ने श्राद्ध पद्धति को चलाया है। इसीलिए मनु को श्राद्धदेव कहते हैं। श्राद्धदेव और धर्मराज (यम) ही पितरों के अधिपति हैं। ऐसा वेद कहते हैं। अब मैं संक्षेप में तुमसे श्राद्ध विधि कहता हूँ सुनो–'

'पितरों के लिए चाँदी का या चाँदी मिश्रित बर्तन प्रयुक्त होता है। 'स्वधा' का उच्चारण कर पुरोधा को दिया गया श्राद्ध पितरों को प्रसन्न करता है। अग्नि में सोम, अग्नि, वैवस्वत् तथा यम का आव्यायन करके अर्थात्–

'सोमाय पितृमते स्वधा नमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमो यमायाङ्गिरसे स्वधाः नमः' ऐसा कहकर पुरोधा के लिए तीन आहूतियों का हवन कर पुनः अग्नि में उद्गायन कर, अथवा जल में उद्गायन कर जो पितरों को प्रसन्न करता है पितर उसका कल्याण करते हैं। देवताओं के भी जो पितर हैं वे अतिशीघ्र प्रसन्न होते हैं। हे अनध ! तुमको मैं विज्ञान सहित दिव्य चक्षु दे रहा हूँ। उनसे तुम मेरी बातों को यथार्थ होते हुए देख सकोगे।' ऐसा कह कर हे भीष्म ! सनत्कुमार जी मुझे

दिव्य चक्षु देकर चले गए। उन चक्षुओं की सहायता से मैंने वो-वो दुर्लभ व अविश्वसनीय घटना घटित होते देखी हैं कि तुमसे क्या कहूँ ? अतः योग धर्म से बढ़कर कुछ भी कल्याण कारी नहीं। और योगियों को श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। जो योग धर्म में तत्पर नहीं हैं वे भी श्राद्ध को अवश्य करे। उससे वे योग धर्म को प्राप्त कर लेते हैं। हे भीष्म! सनत्कुमार जी ने १८ वर्षों में मुझे विस्तार से यह सब कहा था, किन्तु मुझे वे १८ वर्ष एक दिन के समान लगे थे। वह जब मैंने तुमसे संक्षेप में कह दिया है।'

'युधिष्ठिर द्वारा अधिक जिज्ञासा करने पर तब भीष्म जी ने उनसे ब्रह्मदत्त आदि का प्रसंग भी कहा—जो उन्होंने मार्कण्डेय जी से सुना था और मार्कण्डेय जी ने सनत्कुमार से सुना था। हे राजन् ! तुम्हारे जैसा सुपात्र और योग्य वक्ता पाकर अब मैं तुमसे वह सब प्रसंग भी कहता हूँ। तुम ध्यान पूर्वक सुनो।'

राजा ब्रह्मदत्त का चरित्र तथा वंश

वैशम्पायन जी ने कहा, 'हे राजन् ! राजा ब्रह्मदत्त सब तत्वों का ज्ञाता और योगाचार्य गालवऋषि का शिष्य था। उसके विषय में भीष्म जी को महा मुनि

मार्कण्डेय जी ने इस प्रकार कहा था–

'बृहक्ष्क्षत्र का पुत्र सुहोत्र तथा पौत्र हस्ती था। उसी ने हस्तिनापुर का निर्माण किया था। हस्ती के तीन पुत्र हुए–अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ। अजमीढ ने धूमिनी स्त्री से विवाह कर बृहदीषु को उत्पन्न किया। बृहदीषु का पुत्र बृहद्धनु हुआ जो वृहद्धर्मा भी कहा गया। उसका पुत्र सत्यजित्, पौत्र विश्वाजित् तथा प्रपौत्र सेनजित् हुआ। सेनजित् के चार पुत्र रुचिर, श्वेतकेतु, महिम्नार तथा वत्स हुए। ये अवन्तिका पुरी के राजा हुए। रुचिर के पुत्र पौत्रादि के क्रम में–पार, नीप समर (काम्विल्य नगर को इसी ने बनाया था), पर (इसके दो भाई पार व सदश्व हुए), पृथु, सुकृत, विभ्राज, अणुह (जो शुकदेव का दामाद और कृत्वि का पति हुआ) और ब्रह्मदत्त हुए। ब्रह्मदत्त का पुत्र सर्वसेन के नाम से भी जाना गया, वैसे उसका नाम विश्वकसेन था। वह महाबली था। विश्वकसेन का पुत्र दण्डसेन व पौत्र भल्लाट था। जिसे कर्ण ने मार डाला था। भल्लाट का पुत्र उग्रायुध बड़ा दुष्ट हुआ और नीपवंश के पतन का कारण बना।' इसे तुमने ही (भीष्म ने) युद्ध में मार डाला था।'

'हे जनमेजय ! यह सुनकर युधिष्ठिर ने भीष्म जी से

वह प्रसंग सुनाने का अनुरोध भी किया था। अतः उनसे भीष्म जी ने जो कुछ कहा, वह सब मैं तुमसे कहता हूँ।' इतना कह कर वैशम्पायन जी ने वह प्रसंग सुनाया–

'भीष्म जी ने कहा, 'अजमीढ का एक अन्य स्त्री से यवीनर नाम का विद्वान् पुत्र भी हुआ था। उसके पुत्र पौत्र आदि के क्रम में– धृतिमान्, सत्यधृति, दृढ़नेमि तथा सुधर्मा हुए। सुधर्मा की वंश परम्परा में पौरव भी हुआ जो 'महान' का पिता था। महान का पुत्र रुक्मरथ था। रुक्मरथ के पुत्र पौत्रादि क्रमशः सुपार्श्व, सुमति, सन्नति, कृत तथा उग्रायुध थे। इसी उग्रायुध ने द्रुपद के दादा पृषत् को पांचाल देश पर चढ़ाई कर मार डाला था। उग्रायुध की वंश परम्परा में पुत्र पौत्रादि के क्रम में–क्षेम्य, सुवीर, नृपंजय, बहुरथ आदि हुए जो पौरव कहे गए। हे पुत्र युधिष्ठिर पौरवों के वंशज इस उग्रायुध में घमंड और मूर्खतावश मेरे पिता के निधन हो जाने पर मुझसे मेरी माता को माँगा। अपनी दुष्टता के कारण वह वैसे ही बदनाम था। सज्जनों द्वारा निन्दित व्यक्ति मृतक के समान ही होता है। अतः मरे हुए को क्या मारना, ऐसा सोचकर मैं उसकी ओर से उदासीन था। परन्तु मेरी माता पर कुदृष्टि डालने से मुझे क्रोध हो आया, तब मैंने उससे युद्ध कर उसे मार डाला। इस प्रकार तुमसे राजा

ब्रह्मदत्त की वंशावली कही। अब उसका जीवन चरित्र भी कहता हूँ। सुनो–

भीष्म ने आगे कहा, 'एक विचित्र गौरेया ब्रह्मदत्त की मित्र थी। उसका नाम पूजनीया था। वह ब्रह्मदत्त के साथ ही रहती थी। जब ब्रह्मदत्त ने सर्वसेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया, तभी पूजनीया ने भी एक अंडा दिया। समय आने पर जब वह अंडा फूटा तो उसमें से हाथ, पैर और मुख से युक्त एक माँस पिंड निकला। उसका मुख भूरा था। बाद में उसकी आंखें व पैर भी निकल आए। पूजनीया राजा के पुत्र को अपने पुत्र जितना ही प्रेम करती थी। एक दिन खेल खेल में ब्रह्मदत्त के पुत्र ने पूजनीया के बच्चे को मार डाला। तब क्रोधवश पूजनीया ने चोंच मारकर ब्रह्मदत्त के पुत्र सर्वसेन के नेत्र फोड़ दिए और वहाँ से चली गई। बाद में इसी ब्रह्मदत्त ने सात जातियों में जन्म लेकर श्राद्ध का फल प्राप्त किया और समस्त भाषाओं का ज्ञाता हुआ।'

'एक बार अपनी पत्नी के साथ रमण करते हुए ब्रह्मदत्त ने एक चींटे को चींटी से प्रणय निवेदन करते सुना (वह समस्त भाषाएँ समझता था) तो उसे हँसी आ गई। रानी सन्नति ने ब्रह्मदत्त की हँसी का कारण स्वयं को समझा अतः उसने दुखी होकर अन्न जल त्याग

दिया और रूठ गई। राजा ब्रह्मदत्त ने उसे सच बताकर मनाने की कोशिश की पर उसे विश्वास न हुआ। बाद में ब्रह्मदत्त द्वारा छः दिन विष्णु के प्रति तप करने से विष्णु की कृपा द्वारा रानी मान गई।

सोमवंश-चन्द्रवंश का वर्णन

वैशम्पायन जी के मौन हो जाने पर राजा जनमेजय बोले, 'प्रभो ! आपने कृपा कर सूर्यवंश, ईक्ष्वाकुवंश, रघुवंश, नीपवंश, वृष्णिवंश आदि का विस्तार कहा। अब कृपया सोमवंश के विषय में भी वर्णन कीजिए। हमें सोमवंश (चन्द्रवंश) के विषय में जानने की बहुत इच्छा है।'

तब वैशम्पायन जी ने हँसते हुए कहा–हे राजन् ! तुम प्रश्न करने में दक्ष हो और ज्ञान को अर्जित करने का कोई अवसर नहीं चूकते। मैं तुम्हारी जिज्ञासा तथा पात्रता पर प्रसन्न हूँ। अतः तुम जो चाहोगे सो तुम्हें बताऊँगा। इससे मुझे भी प्रसन्नता हो रही है।

चन्द्रमा का जन्म–'ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रि सोम के पिता थे। अत्रि ने पहले तीन हजार वर्षों तक दोनों हाथ उठाकर मौन तप किया था। तब आकाश की ही ओर देखते रहने से अत्रि का शरीर तेजोमय हो गया।

उनकी आँखों से तेज जल बन कर बहने लगा, किन्तु दसों दिशाएं उसको सँभाल न सकीं। दिशाओं की देवियों ने उस तेज युक्त जल को गर्भ के रूप में धारण करना चाहा, पर सफल न हो सकीं, अतः वह गर्भ भूमिपर गिरकर शिवांशु (चन्द्र) बन गया। तब ब्रह्मा ने लोककल्याण की भावना से चन्द्र को रथ पर चढ़ा लिया। तब भृगुपुत्रों द्वारा स्तुति किए जाने पर चन्द्रमा और तेजस्वी हो गए। ब्रह्मा ने चन्द्रमा को रथ पर बिठाकर पृथ्वी की २१ परिक्रमाएँ कीं। तब चन्द्र का जो तेज पृथ्वी पर टपका वह औषधियों के रूप में उत्पन्न होकर लोकों के लिए हितकारी हुआ। बाद में चन्द्रमा ने भी १००० वर्षों तक तप करके स्वर्णमयी लक्ष्मी का कोष होने का सम्मान प्राप्त किया और वे बीजों, औषधियों, वनस्पतियों तथा नक्षत्रों के राजा हुए।'

'दक्ष ने अपनी २७ पुत्रियाँ चन्द्रमा से ही ब्याह दीं। बाद में चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ भी किया। तब से सिनि, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी ये नौ देवियाँ भी चन्द्रमा की सेवा करने लगीं। हे राजन् ! इस प्रकार शक्ति, सम्मान, सफलता व प्रतिष्ठा पाकर वह ऐश्वर्य के मद से भ्रष्ट हो गया। तब चन्द्रमा ने अंगिय के पुत्रों को अपमानित कर बृहस्पति की पत्नी

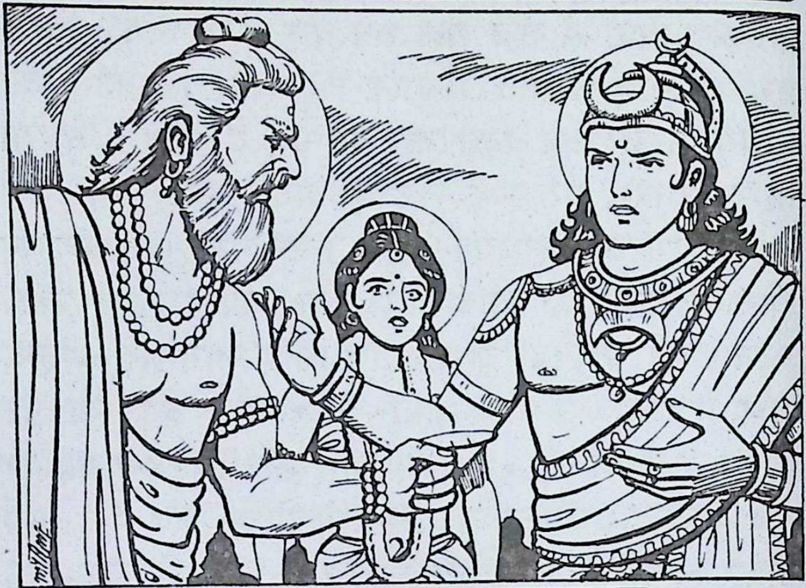

तारा के कारण बृहस्पति व चन्द्रमा में विवाद

तारा का हरण कर लिया। देवताओं द्वारा समझाए जाने पर भी जब तारा को उसने वापस न किया तब बृहस्पति व चन्द्रमा में युद्ध होने लगा। उस समय चन्द्रमा के शस्त्र को दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने और बृहस्पति के शस्त्र को अंगिरा के शिष्य रुद्र ने पकड़ लिया। क्योंकि अंगिरा बृहस्पति के पिता हैं। अन्ततः वहाँ देवों और असुरों में युद्ध होने लगा, क्योंकि बीच बचाव के कारण रुद्र और शुक्र में ठन गई। तब ब्रह्मा जी ने बीच बचाव कर युद्ध रोका। और तारा को वापस दिलाया। तारा को

गर्भवती देख बृहस्पति ने उसे स्वीकार नहीं किया। तारा ने तब घर के बाहर ही सींकें बिछाकर अत्यंत सुंदर व तेजस्वी पुत्र का प्रसव किया। ब्रह्मा के पूछे जाने पर तारा ने कहा कि वह पुत्र वास्तव में चन्द्रमा का है। अत्यंत बुद्धिमान होने से उसका नाम बुध रखा गया। इसी बुध ने वैराज मनु की पुत्री इला से संभोग करके पुरुरवा को उत्पन्न किया था। बाद में उर्वशी ने पुरुरवा ने सात पुत्र उत्पन्न किए थे। बृहस्पति, दक्ष आदि को अप्रसन्न करने के कारण और अपनी उद्ण्डता के कारण चन्द्रमा के राजयक्ष्मा/क्षयरोग (टी॰ बी॰) हो गया। जिसे अत्रि ऋषि ने चिकित्सा द्वारा ठीक कर दिया। (कुछ पुराणों में शिव की आराधना कर चन्द्रमा ने अपना रोग ठीक किया–ऐसा वर्णन भी मिलता है) अब सोमवंश को सुनो।

पुरुरवा तथा उर्वशी–"बुध के पुत्र और सोम के पौत्र पुरुरवा ने उर्वशी अप्सरा का वरण किया। उर्वशी ने भी ब्रह्मा के शाप के कारण मनुष्य होते हुए भी पुरुरवा का वरण किया। उर्वशी ने शर्तें रखी थीं कि उर्वशी की इच्छा बिना पुरुरवा उससे रमण नहीं करेगा और उसके सामने कभी निर्वस्त्र नहीं होगा। दो मेढ़े उर्वशी के पलंग के पायों से सदा बँधे रहेंगे, और वह

केवल घृत का आहार करेगी। शर्त भंग होने पर उर्वशी वापस लौट जाएगी। बाद में उर्वशी को पुरुरवा में ही मग्न देख और स्वर्ग वापस न लौटते देख गंधर्व चिन्तित हो गए, तब विश्वावसु नामक गंधर्व ने शर्त भंग करने के लिए उर्वशी के पलंग के पायों से बँधे रहने वाले मेढ़ों में से एक चुरा लिया। उर्वशी ने पुरुरवा से उस मेढ़े की रक्षा करने को कहा किन्तु उस समय नग्न होने के कारण पुरुरवा नहीं उठा। तब विश्वावसु ने दूसरे मेढ़े को भी चुरा लिया। इस पर उर्वशी द्वारा पुरुरवा के क्षात्र धर्म और पौरुष को ललकारे जाने पर पुरुरवा तैश में आकर नंगा ही तलवार लेकर लपका। योजनानुसार गंधर्वों ने उसी समय बिजली चमका दी। इस प्रकार उर्वशी द्वारा नग्न देख लिए जाने पर, शर्त भंग हो गई और उर्वशी अर्न्तध्यान हो गई।'

'हे राजन् ! उर्वशी के लोप हो जाने पर पागलों की तरह पुरुरवा उसे यहाँ-वहाँ ढूँढने लगा। एक बार उर्वशी अपनी सखियों के साथ तालाब में नहाती उसे दिखाई पड़ गई। पुरुरवा के दुखी होकर विलाप करने से उर्वशी द्रवित हो गई। उसने बताया कि वह पुरुरवा के बच्चे की माँ बनने वाली है। अतः नियत समय पर पुरुरवा उसी स्थान पर आकर अपनी संतान ले जाए। तब उर्वशी

एक रात उसके साथ ही रहेगी। बाद में ऐसा ही हुआ। उर्वशी ने तब उसे बताया कि गंधर्व उससे प्रसन्न हैं, अतः वर माँगने को कहेंगे। तब वह गंधर्व हो जाने का वर माँगे, ताकि गंधर्वों में रह सके और उर्वशी से मिल सके। इस प्रकार पुरुरवा ने योजनानुसार गंधर्वों से यही वर माँगा। तब गंधर्वों ने उसे अग्नि से भरी थाली देकर कहा कि वह उस अग्नि से यज्ञ करे। इसके बाद वह भी गंधर्वों जैसा हो जाएगा।

'हे राजन् ! तब बालक और अग्नि को एक साथ ले जाने में असमर्थ होने के कारण पुरुरवा अग्नि को वन में ही रखकर बालक के साथ अपने पुर को गया। जब वह बालक को वहाँ छोड़कर अग्नि ले जाने के लिए वन में लौटा तो उसे अग्नि अपने स्थान पर नहीं मिली। उस स्थान पर शमी वृक्ष में एक पीपल उगा हुआ मिला। पुरुरवा ने आश्चर्य चकित होकर गंधर्वों को यह बात बता दी। तब गंधर्वों ने पीपल के काष्ठ को अरणी बनाकर अग्नि प्रकट करने को कहा। पुरुरवा ने वैसा ही किया और उस उत्पन्न होने वाली अग्नि से यज्ञ किया। इस प्रकार वह गंधर्व लोक में चला गया। हे राजन् इस पुरुरवा ने १५ वर्ष चैत्ररथ वन में, पाँच वर्ष गंगा के किनारे, छः वर्ष अलका पुरी (गंधर्व लोक) में फिर

आठ वर्ष गंधमादन पर्वत पर उर्वशी से रमण किया था। और –आयु, अमावसु, विश्वासु, श्रतायु, दृढ़ायु, शतायु तथा वनायु नामक सात पुत्र उत्पन्न किए थे जो देव पुत्रों की भाँति थे।'

गंगा का जाह्नवी होना–'अमावसु के पुत्र भीम व नग्नजित् थे। भीम के पुत्र कांचनप्रभ, पौत्र, सुहोत्र तथा प्रपौत्र जन्हु हुआ जो केशिनी के गर्भ से हुआ और सर्वमेध यज्ञ करने वाला महादानी हुआ। हे राजन् ! गंगा स्वयं जन्हु के प्रताप पर मुग्ध हो उसे पति के रूप में वरण करने उसके पास गई थी किन्तु जन्हु द्वारा अस्वीकार किए जाने पर गंगा ने उसकी सारी सभा को डुबो दिया। तब 'मैं' तुझे पीकर तेरा प्रयत्न बेकार कर दूँगा।' ऐसा कहकर जन्हु गंगा को पीने लगा। तब महर्षियों ने बीच बचाव किया। गंगा की निन्दा करते हुए उसे जन्हु की पुत्री बनाकर उसका नाम 'जाह्नवी' रख दिया। जन्हु ने युवनाश्व की पुत्री कावेरी को पत्नी बनाया। युवनाश्व ने गंगा को पहले कभी मानुषी होने का श्राप दिया था। तब अपने आर्धभाग को मानुषी में बदल कर गंगा 'कावेरी' नाम से उस युवनाश्व की पुत्री ही बन गई थी। शेष आधा भाग नदी के रूप में रहा। इस प्रकार कावेरी का जन्हु से विवाह होना भी एक प्रकार से गंगा द्वारा जन्हु की

पति रूप में पाना ही था। कावेरी से जन्हु ने सनह नामक पुत्र उत्पन्न किया जो बाद में 'अजक' का पिता हुआ।

विश्वामित्र व परशुराम का जन्म—'अजक के पुत्र पौत्रादि का क्रम इस प्रकार है—बलकाश्व, कुश, कुशिक (कुशनाथ, कुशाम्ब तथा मूर्तिमान ये तीनों कुशिक के भाई हुए) कुशिक ने इन्द्र के समान पुत्र प्राप्त करने के उद्देश्य से तप किया। तब इस भय से कि दूसरा इन्द्र उत्पन्न न हो जाए। इन्द्र स्वयं अपने अंश से कुशिक के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। पुरुकुत्स की कन्या के गर्भ से 'गाधि' नामक पुत्र जो कुशिक का हुआ, वह इन्द्र का अंश ही था। गाधि महापराक्रमी राजा हुआ। अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह उसने भृगु पुत्र ऋचीक से किया। तब ऋचीक ने उत्तम पुत्र प्राप्ति के लिए अपनी पत्नी तथा गाधि की पत्नी के लिए दो चरु तैयार किए। और अपनी पत्नी को दोनों चरु देकर तप को चले गए। जब गाधि की पत्नी को यह ज्ञात हुआ, तो उसने सोचा कि ऋचीक ने अपनी पत्नी के लिए उत्तम चरु बनाया होगा। अतः उसने अपनी बेटी को फुसला कर उससे चरु बदल लिया। इस प्रकार ऋचीक की पत्नी ने ऋचीक की सास वाला और ऋचीक की सास

ने ऋचीक की पत्नी वाला चरु खा लिया। इससे भारी गड़बड़ हो गई।'

'हे राजन् ! ऋचीक की पत्नी ने उस चरु को खाकर जब गर्भ धारण किया तो उसका शरीर डरावना सा हो गया। यह देख ऋचीक को संदेह हुआ। तब उन्होंने योग बल से सारी बात जान कर अपनी पत्नी से कहा– 'तुमने यह भारी अनर्थ कर दिया। तुम्हारी माता के लिए मैंने उत्तम क्षत्रीय संस्कारों वाला चरु बनाया था और तुम्हारे लिए उत्तम ब्राह्मणीय संस्कारों वाला। मगर अब तुम्हारी माता के ब्राह्मण गुणों वाला पुत्र होगा और तुम्हारे क्रूर कर्म करने वाला क्षत्रीय गुणों से युक्त पुत्र होगा जो क्रोधी और कठोर हृदय होगा।' तब सत्यवती ने किसी प्रकार ऋचीक को प्रसन्न करके उससे यह वर लिया कि उसका पौत्र भले ही ऐसा हो जाए पर उसका पुत्र ऐसा न हो।'

'हे राजन् ! रुद्र और विष्णु के अंशों से बने चरुओं के उलट फेर हो जाने के कारण गाधि का पुत्र महातेजस्वी विश्वामित्र क्षत्रीय होते हुए भी ब्राह्मण संस्कारों वाला हुआ। ऋचीक द्वारा अपनी पत्नी के वचन देने के कारण उनका पुत्र जमदग्नि तो ब्राह्मण संस्कारों वाला हुआ। किन्तु उनका पौत्र परशुराम क्षत्रियों के गुणों से युक्त

हुआ। ऋचीक की पत्नी सत्यवती 'कोशिकी' नामक नदी के रूप में बाद में विख्यात हुई। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न रेणु नामक राजा की कन्या रेणुका जमदग्नि को ब्याही गई। उनसे रुद्रांश तेज सम्पन्न परशुराम हुए जो धनुर्विद्या के विशेषज्ञ, समस्त क्षत्रियों का विनाश करने वाले, अति कठोर, क्रूर कर्मा और अग्नि की भांति तेजस्वी हुए। शब्द (मंत्र) और शस्त्र, अथवा शस्त्र और शास्त्र दोनों पर परशुराम का समान अधिकार हुआ। ऐसे ही विश्वामित्र भी शस्त्र व शास्त्र पर समान अधिकार वाले हुए।

कौशिक वंश— 'हे जनमेजय ! जमदग्नि के मँझले भाई शुनः शेप और छोटे भाई शुनः पुच्छ भी हुए। उधर कुशिक पुत्र गाधि से उत्पन्न हुए विश्वामित्र 'कौशिक' के नाम से भी जाने गए। (कुशिक के पौत्र होने तथा कौशिकी के भाई होने के कारण उन्हें 'कौशिक' कहा गया)। इन विश्वामित्र का नाम पहले विश्वरथ था। तब वे अत्यंत पराक्रमी राजा थे। फिर तप करके ब्रह्मऋषि हुए और सप्तऋषियों में स्थान प्राप्त किया। उनके वंशज 'कौशिक' कहे गए। इस प्रकार वे कौशिक वंश को चलाने वाले हुए। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ द्वारा झड़प हो जाने पर विश्वामित्र ने चुनौती स्वीकार करते हुए तप

आरम्भ किया और अन्ततः ब्रह्म ऋषि बन कर ही रहे। इस कथा को सभी जानते हैं। विश्वामित्र के देवरात आदि पुत्र तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। इनमें 'गालव' देवश्रवा/ देवरात, कति और हिरण्याक्ष नामक पुत्र शालावती से उत्पन्न हुए। अष्टक कच्छप तथा हारित ये तीन द्वषद्वती से उत्पन्न हुए। पाणिनी, बभ्रव, ध्यानजप्य, शालंकायन, वाष्कल, लोहित, यामदूत, कारिष, सौश्रुत और सैंधद आदि आगे उत्पन्न होने वाले कौशिक वंश के प्रमुख हैं। कति के पुत्र कात्यायन अत्यंत विद्वान हुए। 'गालव' के सम्बन्ध में पहले कह आए हैं। हे राजन् ! उधर जमदग्नि की पत्नी रेणुका से रेणुमान, सांकृति, मद्गल, मधुछन्दा, जय तथा देवल उत्पन्न हुए। ये सभी परशुराम के भाई हुए।'

'याज्ञवल्क्य आदि छः भाई हिरण्याक्ष के पुत्र हुए। वादरायिणिन् सांकृत्ति के पुत्र हुए। बाद में कौशिक वंश में अन्य ऋषियों से भी विवाह के बहुत प्रसंग आए। अतः ब्राह्मणों और क्षत्रियों के कुलों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का श्रेय कौशिकों को जाता है। इस प्रकार तुमसे महात्मा जन्हु के वंश तथा कौशिक वंश के सम्बन्ध में कहा। ये सभी मुख्यतः चन्द्रवंश की उपशाखाएँ हैं। अब चन्द्रवंश की अन्य उपशाखाओं को तुमसे कहूँगा। सुनो।

तर्क शास्त्र की सृष्टि—वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'स्वर्भानु की कन्या प्रभा से उत्पन्न आयु के पाँच महारथी पुत्र-नहुष, वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि व अनेना हुए। रजि ने इन्द्र को भी भयभीत कर देने वाले ५०० पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किए। देवासुर संग्राम के समय रजि ने देवताओं का सहयोग कर उन्हें विजय दिलाई। तब देवताओं ने रजि को अपना इन्द्र मान लिया। रजि तब अपने पुत्रों सहित अमरावती में रहने लगे। तब इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति को अनुनय विनय द्वारा अपनी ओर मिलाया और अपना अधिकार वापस दिलाने को कहा। तब बृहस्पति ने रजि के पुत्रों को नास्तिक बनाने के लिए 'तर्कशास्त्र' का निर्माण किया। क्योंकि नास्तिकवाद को तर्कशास्त्र ही उत्पन्न करके बली बनाता है। इस प्रकार रजि के पुत्र धर्म द्वेषी बन गए। तब पाप बढ़ जाने से रजिपुत्रों का तेज क्षीण हो गया। इन्द्र ने तब रजिपुत्रों का वधकर अपना राज्य वापस ले लिया।'

'हे राजन् ! रम्भ निःसंतान था अतः अब अनेना का वंश सुनो। प्रतिक्षत्र, सृजंय, जय, विजयकृति, हर्यस्वत, सहदेव, नदीन, जयत्सेन, संकृति तथा क्षत्रधर्मा आदि अनेना के पुत्र पौत्रादि के क्रम में आते हैं। वृद्ध शर्मा के सुनहोत्र, गृत्समद (काश व शल्य इनके भाई थे)

शुनक (शौनक), शल, आर्ष्टिबेणा तथा काश-पुत्र पौत्रादि के क्रम में हुए। काश के कई पुत्र हुए जो 'काशय' कहे गए। इनमें दीर्घतपा ज्येष्ठ पुत्र थे। दीर्घतपा के पुत्र धन्व ही बाद में धन्वन्तरी नाम से जाने गए। पहली बार समुद्र मंथन के समय धन्वन्तरी का जन्म हुआ। यह धन्वन्तरी देवताओं के वैद्य तथा कायचिकित्सक और पृथ्वी पर आयुर्वेद का प्रचार प्रसार करने वाले हुए थे। बाद में वे पुनः मनुष्य योनि में दीर्घतप के पुत्रधन्व के रूप में उत्पन्न हुए। तब जनमेजय द्वारा धन्वन्तरी के मनुष्य जन्म में आने का कारण पूछे जाने पर वैशम्पायन ने धन्वन्तरी का चरित्र सुनाया। जो इस प्रकार है-

धन्वन्तरी का चरित्र-वैशम्पायन जी ने कहा, 'हे राजन् ! अमृत प्राप्ति के लिए जब देवों और असुरों ने मिलकर समुद्र मंथन किया। तब विष्णु का जप करते हुए एक सुंदर स्वस्थ्य पुरुष जल में से निकला। पानी से जन्म लेने के कारण उसका नाम विष्णु ने 'आप्ज' रखा। यह पूछे जाने पर कि 'तुम कौन हो ?' उसने स्वयं को विष्णु का पुत्र कहा। तब ब्रह्मा ने उन्हें आर्शीवाद दिया। और विष्णु ने भी कहा कि तुम द्वापर युग में मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर आयुर्वेद का विस्तार करोगे और होम, मंत्र, चरु, व्रत तथा जप आदि के द्वारा पूजे जाओगे।

आयुर्वेद के आठ भाग करने वाले तुम ही होओगे। जिससे मनुष्य जाति का कल्याण होगा। यही सुंदर पुरुष 'आप्ज' द्वापर में दीर्घतपा के पुत्र के रूप में धन्वन्तरी हुए। काशीराज बनकर उन्होंने भारद्वाज से आयुर्वेद तथा औषध विज्ञान सीखा फिर उसके आठ भागकर अपने शिष्यों को पढ़ाया। इन धन्वन्तरी के पुत्र केतुमाना, पौत्र भीमरथ तथा प्रपौत्र दिवोदास हुए। दिवोदास के समय पर वाराणसी (काशी) नगरी उजड़ गई। तब क्षेमक नामक राक्षस (जो शिव का अनुचर था) ने उसे पुनः बसाया। निकुम्भ के शाप के कारण हजार वर्षों तक वाराणसी उजाड़ हुई थी।' वैशम्पायन जी द्वारा ऐसा कहने पर जनमेजय ने वाराणसी के शापग्रस्त होने की कथा सुनने का आग्रह किया। तब वैशम्पायन जी ने बताया–

वाराणसी का श्राप ग्रस्त होना–'दिवोदास ने इस नगरी को बहुत विस्तार से बसाया था। तब शिव पार्वती की प्रसन्नता के लिए घर जमाई बने हुए थे। पार्वती की माता मैना शिव से खिन्न थीं। घर जमाई हो जाने पर वे शिव का और भी अपमान करने लगीं। तब पार्वती ने शिव से वापस चलने को कहा। सब लोकों में घूमने के बाद पार्वती ने वाराणसी (काशी) को रहने

के लिए पसन्द किया। अतः शिव ने अपने गण निकुम्भ को कहा कि वह काशी को खाली कराए। निकुम्भ ने कण्डुक नामक नापित को स्वप्न में अपना मंदिर बनाने को कहा। नापित ने ऐसा ही किया। तब निकुम्भ उस मंदिर में अपनी पूजा करने वालों की इच्छा पूर्ण करने लगा। मंदिर का ऐसा प्रभाव सुनकर दिवोदास की पटरानी सुयशा भी वहाँ पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से पूजन करने को आई मगर निकुम्भ ने उसकी अभिलाषा जानबूझ कर पूर्ण न की। दिवोदास ने तब क्रुद्ध हो निकुम्भ का मंदिर तुड़वा दिया। मंदिर तोड़े जाने से निकुम्भ को बहाना मिल गया और उसने वाराणसी नगरी को उजड़ जाने का शाप दे दिया। इस प्रकार युक्ति पूर्वक नगरी खाली हो जाने के बाद शिव पार्वती वहाँ रहे। इस प्रकार काशी नगरी मोदन धाम के नाम से प्रसिद्ध हुई। दिवोदास ने काशी नगरी को यदुवंशी महिस्मत के पुत्र भद्रश्रेण्य को मारकर प्राप्त किया था। भद्रश्रेण्य के सौ पुत्रों में से ९९ भी दिवोदास ने मार डाले थे। केवल एक को बालक होने से छोड़ दिया था। यही एक हैहयवंश को आगे बढ़ाने वाला दुर्दम के नाम से विख्यात हुआ। बड़े होकर इसने दिवोदास को मारकर अपने पिता की नगरी वाराणसी पर पुनः अधिकार कर

लिया था। यह तुमने वाराणसी का श्राप ग्रस्त होकर उजड़ने और पुनः बसाए जाने का प्रसंग कहा। अब आगे सुनो–

'दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन, पौत्र वत्स व नाभ हुए। वत्स का पुत्र अलर्क, पौत्र सन्नति तथा प्रपौत्र सुनिथ हुआ। राजा अलर्क लोपामुद्रा के वरदान से साठ हजार साठ वर्ष तक जीवित रहा। उसने क्षेमक नामक राक्षस का वध करके वाराणसी को पुनः अपने अधिकार में ले लिया था। अलर्क के पर पोते सुनिथ के पुत्र पौत्रदि क्रमशः क्षेम्य, केतुमान, सुकेतु, धर्मकेतु, सत्यकेतु, विभु, आनर्त्त, सुकुमार, धृष्टकेतु, वेणुहोत्र तथा भर्ग हुए। अलर्क के दूसरे भाई वत्सकूमि के पुत्र भार्ग हुए। भार्ग के पुत्र भृगुकूमि हुए। ये जब अंगिरा के पुत्र भृगु के वंश में हुए। यह काशीराज के काशवंश का वर्णन हुआ। अब आयु के पाँचवें पुत्र नहुष का वंश सुनो।'

नहुष का वंश–ययाति का चरित्र–वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'आयु के तीन पुत्रों–रजि, अनेना तथा वृद्धशर्मा का वंश बता ही चुका हूँ। रम्भ निसंतान था। पाँचवे पुत्र नहुष का विवाह सुस्वधा नामक वैश्यों के पितरों की कन्या विरजा से हुआ। नहुष के इन्द्र जैसे तेजस्वी, छः पुत्र– यति, ययाति, संयाति, अयाति,

सुयाति तथा पाँचिक हुए। इनमें ज्येष्ठ पुत्र यति ब्रह्मवादी संन्यासी हुए, अतः ययाति का राज्यभिषेक हुआ। काकुत्स की कन्या 'गौ' तथा शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से ययाति का विवाह हुआ। बाद में असुरराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा भी ययाति की पत्नी बनीं। इन्द्र द्वारा दिया गया दिव्य रथ ययाति के वंशजों में कौरव काल तक रहा। कुरुवंशी राजा परीक्षित के काल में गार्ग्य ऋषि के श्राप से वह रथ नष्ट हुआ क्योंकि उस रथ से गार्ग्य का पुत्र कुचला गया था। इसी दिव्य रथ में बैठकर ययाति ने सम्पूर्ण पृथ्वी सहित इन्द्र पर भी विजय प्राप्त की थी। ययाति के देवयानी से यदु व तुर्वसु तथा शर्मिष्ठा से द्रुह्य, अनु तथा पुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुए।'

'ययाति ने सातों द्वीपों सहित पृथ्वी को जीता। पाँच भागों में बाँटा और अपने पाँचों पुत्रों को सौंप दिया और शस्त्र त्याग कर दिया। किन्तु सतत् युवा रहने की कामना से उसने बारी-बारी से अपने पाँचों पुत्रों से उनका यौवन दान में माँगा। किन्तु शेष चारों भाइयों ने मनाकर दिया, पुरु ने स्वीकार कर लिया। अतः चारों को श्राप देकर ययाति ने पुरु को आशीर्वाद दिया। तब ययाति पुरु को अपना बुढ़ापा देकर और पुरु से उसकी जवानी लेकर विश्वाची अप्जय के साथ चैत्र वन में

रमण करने लगा। विश्वाची इन्द्र के शाप के कारण कुकुत्स की कन्या गौ के रूप में उत्पन्न होकर ययाति की पत्नी बनी। अन्त में तृष्णा रहित होकर ययाति ने पुरु को उसकी युवावस्था लौटा दी और अपना बुढ़ापा वापस लेकर इस प्रकार बोला– 'हे पुत्र ! विषय वासनाएँ कभी तृप्त नहीं होतीं। आग में डाले जाने वाले घृत की भाँति भोगों से और बढ़ती हैं। अतः संयम पूर्वक कछुए के अंग समेट लेने की भाँति मनुष्य को अपनी इंद्रियों को विषय भोगों से हटा लेना चाहिए। क्योंकि काम सदा कल्याण में बाधक है। अब तुमसे ययाति के पुत्रों के वंशों को कहता हूँ। इनमें उसके ज्येष्ठ पुत्र यदु का वंश यदुवंश, वृष्णिवंश भी कहा जाता है। विष्णु ने इस वंश में कृष्णावतार लेकर इस वंश को और भी महिमा मंडित कर दिया है।'

'हे राजन् ! ययाति के इस चरित्र को तथा आगे कहे गए उसके वंशों को पढ़ने वाला पुत्रवान, आयुष्मान तथा कीर्तिमान होता है। उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। ये समस्त वंश चन्द्रवंश की ही उपशाखाएँ हैं।

यदुवंश–वृष्णिवंश का वर्णन

पुरुवंश –जनमेजय के निवेदन पर वैशम्पायन जी

ने पहले पुरुवंश का वर्णन किया। वैशम्पायन जी ने कहा–'पुरु के पुत्र-पौत्रादि का क्रम इस प्रकार है। जनमेजय, प्रचिन्वान्, प्रवीर, मनस्यु, अभयद, सुधन्दा, बहुगव, शम्यातित, रहस्याति, रौद्राश्व तथा ऋचेयु। यह ऋचेयु अपने व भाईयों–कृकणेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, दशार्णेयु, जलेयु, स्थलेयु, धनेयु तथा वनेयु के साथ घृताची नाम अप्सरा से उत्पन्न हुआ था। घृताची से रौद्राश्व के दस पुत्रियाँ भी हुई थीं। जिनके नाम–रुद्रा, शूद्रा, भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरभि, गौ तथा चपला थे। इन दसों का विवाह अत्रि से हुआ। अत्रि ने यशस्वी सोम को रुद्रा से उत्पन्न किया था। तथा दस पुत्र और भी किए थे। वे सभी स्वस्तात्रेय कहे गए। कुक्षेयु के सभानर, चाक्षुष, परमन्थु तीन पुत्र हुए। सभानर के पुत्र काला नल, पौत्र सृञ्जय तथा प्रपौत्र पुरञ्जय हुए। पुरुञ्जय के पुत्र जनमेजय (द्वितीय) हुए। जनमेजय के महाशाल, महामना, उशीनर, तितिक्षु पुत्र पौत्रादि के क्रम में हुए। उशीनर के नृग, कृम, नव, सुव्रत तथा शिबि नामक पुत्र भी हुए। शिबि के चार पुत्र–वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक और केकेय हुए। उनके नाम से उनके देश भी जाने जाते हैं। अब तितिक्षु के पुत्रों को सुनो।

अंगवंश –'उपद्रथ महाबाहु तितिक्षु के पुत्र और फेन के पिता थे। फेन पुत्र सुतपा बलि के पिता हुए। (ये बलि पूर्वजना में दानवेन्द्र थे)। बलि के पाँच पुत्र–अंग, वंग, सुह्य, पुण्ड्र तथा कलिंग हुए। अंग सबसे बड़ा था और बालेय भी कहा जाता था। अतः इसके वंशज 'बालेय' कहे गए। इन अंग आदि राजाओं के नाम पर उनके देश भी क्रमशः अंग, वंग, सुह्यक, पौण्ड्रक तथा कलिंग नामों से जाने गए। अंग के पुत्र पौत्रादि के क्रम में–दधिवाहन, दिविरथ, धर्मरथ, चित्ररथ, दशरथ (लोमवाद के नाम से भी जाने जाते हैं) आदि हुए। दशरथ की पुत्रि शान्ता ऋषि ऋष्यशृंग की पत्नी हुई। ऋष्यशृंग के आर्शीवाद से दशरथ के चतुरंग नामक पुत्र हुआ जो पृथुलाक्ष का पिता, चम्प का पितामह तथा हर्यङ्ग का प्रपितामह हुआ। (चम्प का नगर चम्पानगर के नाम से जाना गया)।'

'हर्यङ्ग के पुत्र-पौत्रादि का क्रम इस प्रकार है–भद्ररथ, बृहदकर्मा, बृहद्दर्भ, बृहन्मना, जयद्रथ, दृढबृहद्र्भ, पुत्र बृहन्मना की दो पत्नियों के कारण वंश भेद हो गया। चेद्यराज की पुत्री यशोदा तथा सत्या ये दो पत्नियाँ उनकी थीं। यशोदा से जयद्रथ उत्पन्न हुआ था उसका वंश आगे कहा ही है। सत्या से विजय हुआ। विजय के

धृति, धृतव्रत, सत्यकर्मा तथा अधिरथ पुत्र-पौत्रादि के क्रम में हुए। ये अधिरथ रथ हाँकने वाले हुए क्योंकि क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मण की कन्या से उत्पन्न हुए थे। अतः इनको सूत भी कहा जाता है। कर्ण को अपनाने के कारण कर्ण को सूतपुत्र भी कहा जाता था। महाबली कर्ण जो कुन्ती से उत्पन्न होकर त्याग दिए गए थे, उनके विषय में तुम जानते ही हो। कर्ण के पुत्र वृषसेन तथा पौत्र वृष हुए। यह सब मैंने अंग के वंशजों को कहा। अब रौद्राश्व के पुत्र ऋचेयु का वंश कहता हूँ, फिर उस वंश को कहूँगा जिसमें महाराज जनमेजय ! आपने जन्म लिया है। यह भी बहुत यशस्वी तथा प्रसिद्ध वंश है।'

भरतवंश —वैशम्पायन जी ने आगे कहा– 'ऋचेयु ने अपनी रानी ज्वलना से तक्षक नामक पुत्र उत्पन्न किया और पटरानी से मतिनार नामक पुत्र उत्पन्न किया। मतिनार के तीन पुत्र हुए–तंसु, प्रतिरथ व सुबाहु। गौरी नाम की एक पुत्री भी हुई जो राजा मान्धाता की माँ हुई। प्रतिरथ के पुत्र महर्षि कण्व हुए। कण्व के पुत्र ऋषि मेधातिथि हुए। मेधातिथि के पुत्र व वंशज 'काण्यवान' कहे गए। ईलिन राजा की पुत्री ईलिनी से तंसु का विवाह हुआ था। तंसु के पुत्र सुरोध, तथा ऐल

हुए। ऐल के चार पुत्र–दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर व अनध हुए। दुष्यन्त के पुत्र दस इजार हाथियों के बल वाले भरत हुए जो कण्व ऋषि की दत्तक पुत्री शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इन्हीं चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर आर्यावृत का नाम 'भारत' पड़ा। माताओं द्वारा पुत्र जन्म में विफल होने पर मरुतों ने भरद्वाज को भरत का दत्तक पुत्र बनाया। भरद्वाज का पुत्र दितथ पाँच पुत्रों –(सुहोत्र, सुह्येतार, गय, गर्ग तथा कपिल) वाला हुआ। सुहोत्र के दो पुत्र हुए काशिक और मृत्समद्। इनके विषय में पहले कह आया हूँ।'

'हे राजन् ! अजमीढ का पुत्र सुशान्ति, पौत्र पुरुजाति व प्रपौत्र वाह्याश्व हुए। वाह्याश्व के पाँच पुत्र मुद्गल, सृञ्जय, वृहदिषु, यवीनर तथा कृमिलाश्व हुए। इन पाँचों के मिले हुए राज्य को पाँचाल कहते हैं। (आज कल यह पंजाब कहा जाता है) मुद्गल के वंशज मौद्गल्य कहे गए। मौद्गल के ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रसेन हुए जो वर्ध्यश्व के पिता हुए। वर्ध्यश्व के पुत्र दिवोदास तथा पुत्री अहिल्या (मेनका अप्सरा के गर्भ से) हुए। अहिल्या महर्षि गौतम को ब्याही गईं। गौतम का पुत्र शतानन्द तथा पौत्र सत्यधृति हुआ जो धनुर्वेद में पारंगत था।'

'हे राजन् ! एक अप्सरा को देखकर सत्यधृति का वीर्य शरस्तम्भ में स्खलित हो गया। जिससे दो संतानें हुईं। इन्हें आखेट पर निकले महाराज शांतनु ने अपना लिया था। शांतनु की कृपा से उनका जीवन बचा। अतः उनमें से लड़के को कृप तथा लड़की को कृपी कहा गया। यही कृप बाद में गुरु कृपाचार्य हुए। ये सब गौतमगोत्रीय शारद्वत कहे जाते हैं। अब मेनका पुत्र दिवोदास की संतानों के विषय में भी सुनो जो अहिल्या का भाई था।'

'दिवोदास के मित्रेयु, मैत्रायण सोम पुत्र तथा प्रपौत्र हुए। मैत्रायण के वंशज मैत्रेय कहे गए। सृञ्जय के पुत्र पञ्चजन तथा पौत्र सोमदत्त हुए। सोमदत्त के पुत्र सहदेव तथा पौत्र सोमक हुए। सोमक का पुत्र जन्तु १०० पुत्रों का पिता हुआ। उनमें सबसे छोटा वृषत् था जो द्रुपद का पिता हुआ। द्रुपद के दो पुत्र–धृष्टद्युम्न, तथा धृष्टकेतु हुए तथा अग्नि से उत्पन्न हुई कन्या भी उसकी पुत्री बनी जो द्रुपद पुत्र होने से द्रौपदी कही गई। इस विषय में तुम जानते ही हो। हे राजन् ! धूमिनी नामक तीसरी स्त्री से अजमीढ के ऋक्ष नामक पुत्र हुआ। ऋक्ष का पुत्र संवरण तथा पौत्र कुरु हुआ। कुरु ने ही कुरुक्षेत्र की स्थापना की तथा कुरुवंश–कौरववंश चलाया।'

'हे राजन्! कुरु के चार पुत्र–सुधन्वा, सुधनु, महाबाहु, परीक्षित् तथा अरिमेजय हुए। सुधन्वा के पुत्र सुहोत्र तथा पौत्र च्यवन ऋषि हुए। प्रपौत्र कृतयज्ञ हुए। इन्हीं च्यवन ऋषि ने कायाकल्प कर देने वाली तथा सतत् युवा रखने वाली औषधि बनाई थी जो उन्हीं के नाम पर बाद में 'च्यवनप्राश' कही गई। चेदि देश के वसु ने सात मानवी संतानें भी उत्पन्न की थीं। उनमें छः पुत्र और एक कन्या थी। उनमें जयेष्ठ महारथी बृहद्रथ के–यदु, मारुत, मत्स्य नाम के पुत्र तथा काली (सत्यवती) नामक कन्या हुई। बृहद्रथ का एक पुत्र कुशाग्र भी हुआ। कुशाग्र का वृषभ, वृषभ का पुष्पवान तथा पुष्पवान का सत्यहित हुआ। सत्यहित का पुत्र ऊर्ज, तथा ऊर्ज का संभव हुआ। संभव दो खण्डों में उत्पन्न हुआ था, तब जरा नामक राक्षसी द्वारा जोड़ दिए जाने पर उसका नाम जरासंध हुआ। जरासंध का पुत्र सहदेव, पौत्र उदायु तथा प्रपौत्र श्रुतधर्मा हुआ। ये मगध के राजा हुए। कुरु के दूसरे पुत्र परीक्षित के जनमेजय हुआ।'

'जनमेजय के तीन पुत्र श्रुतसेन, उग्रसेन व भीमसेन हुए। दूसरी रानी से सुरथ तथा मतिमान् नामक दो पुत्र भी जनमेजय के हुए। सुरथ के पुत्र विदूरथ व पौत्र ऋक्ष हुए। ऋक्ष के पुत्र भीमसेन, पौत्र, प्रतीप तथा प्रपौत्र

शन्तनु, देवापि व वाह्लीक ये तीन हुए। शन्तुन के कुल में हे राजन् तुम हुए हो। वाह्लीक के पुत्र सोमदत्त, तथा पौत्र भूरिश्रवा और शल्य हैं। देवापि मुनि होकर देवताओं के अध्यापक हुए। उन्होंने ही यज्ञद्वारा च्यवन ऋषि को उत्पन्न किया था। इस प्रकार तुम्हारे वंश में अब तक दो ऋक्ष दो भीमसेन और दो जनमेजय हो चुके हैं। अब तुमसे मैं शान्तनु के वंश को कहता हूँ, जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो।'

शान्तनु का वंश–'महाराज ! शान्तनु ने गंगा से विवाह कर देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न किया जो अपनी भीषण प्रतिज्ञा के कारण भीष्म कहलाया और पाण्डवों का पितामह हुआ। शन्तुन की दूसरी पत्नी काली (सत्यवती) से विचित्रवीर्य तथा चित्रांगद उत्पन्न हुए। विचित्रवीर्य की पत्नियों से दृष्टि भोग द्वारा व्यास जी ने धृतराष्ट्र तथा पाण्डु की और विचित्रवीर्य की पत्नी की दासी से विदुर को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्र के गांधारी से सौ पुत्र हुए। जिनमें दुर्योधन ज्येष्ठ था। उनकी दुःशला नामक एक बहन भी हुई जो जयद्रथ को ब्याही गई। पाण्डु के कुन्ती व माद्री से देवताओं द्वारा पाँच पुत्र हुए जिनमें अर्जुन महान धनुर्धारी हुए। सुभद्रा से अर्जुन ने अभिमन्यु को उत्पन्न किया। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित

हुए और पौत्र तुम हो। इस प्रकार तुम अपने वंश में जनमेजय (तृतीय) हो। यह तुम्हारा शान्तनु का वंश ही पौरववंश कहा जाता है। इसी को कौरव वंश भी कहते हैं।

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'अब तुर्वसु का वंश सुनो। वह्नि, गोभान, त्रैसानु, करन्धम, मरुत (द्वितीय) पुत्र-पौत्रादि के क्रम में तुर्वसु वंश में हुए। मरुत के कोई पुत्र नहीं हुआ। केवल सम्मता नाम की कन्या हुई। राजा ययाति के शाप के कारण तुर्वसु वंश पौरववंश–पुरुवंश में विलीन हो गया। द्रुह्य के पुत्र-पौत्रादि के क्रम में–बभ्रुसेतु, अंगार से गांधार हुए। जिनका राज्य गंधार नाम से प्रसिद्ध है। अनु के पुत्र धर्म , पौत्र सुचेता हुए। यह अनुवंश कहा जाता है। अब ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश का वर्णन सुनो– जो यदुवंश के नाम से प्रसिद्ध हैं।

यदुवंश–'यदु के पाँच पुत्र सहस्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील तथा अञ्जिक हुए। सहस्रह के तीन–हैहय, हय, तथा वेणुहय नामक पुत्र हुए। हैहय के धर्मनेत्र तथा धर्म नेत्र के दो पुत्र कात और साहञ्ज हुए। साहञ्ज के महिष्मान पुत्र तथा भद्रश्रेण्य पौत्र हुए जो वाराणसी के राजा थे। पहले इनके विषय में कह चुका हूँ। इनके पुत्र

दुर्दम पौत्र कनक तथा प्रपौत्र कृतवीर्य हुए। कृतवीर्य के तीन भाई कृतौज, कृतवर्मा व कृताग्नि हुए। कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन हुआ जो कृतवीर्यार्जुन, सहस्त्रार्जुन व सहस्त्रबाहु नाम से भी जाना गया। क्योंकि समस्त पृथ्वी को जीतकर अत्रि पुत्र दत्तात्रेय के प्रति दस हजार वर्षों तक तप करके उसने एक हजार हाथ होने का वर प्राप्त किया था। वह ८५ हजार वर्षों तक पृथ्वी का सम्राट रहा। उसने कर्कोटक नामक महातेजस्वी नाग को जीतकर अपनी नगरी महिष्मतीपुरी में नागों को मनुष्यों के साथ बसाया। वर्षाकाल में समुद्र के क्रीड़ा करते हुए अपनी हजार भुजाओं से समुद्र का जल उलटा कर दिया। उस महावीर ने अपने समय के महाप्रतापी राक्षस रावण को मूर्च्छित कर अपनी प्रत्यंचा से बाँध कर अपने अस्तबल में डाल दिया था। तब पुलस्त्यऋषि (रावण के दादा) की प्रार्थना पर उसे मुक्त किया था। परशुराम ने युद्ध में इस सहस्त्रबाहु की सभी भुजाएँ काट गिराई थीं। सहस्त्रबाहु के १०० पुत्रों में पाँच शेष रहे थे। उनमें जयध्वज महाबलवान था। जयध्वज के १०० पुत्र तालजङ्घ क्षत्रियों के नाम से प्रसिद्ध हुए।'

'अब तुमसे क्रोष्टा के पुत्रों व वंशजों के विषय में कहता हूँ जो वृष्णिवंश का उत्थान करने वाले थे।

यदुवंश की उपशाखा वृष्णि वंश में ही कृष्णावतार हुआ। इस उत्तम वंश का प्रसंग सुनने से समस्त पाप नष्ट होते हैं।

वृष्णिवंश –क्रोष्टा ने अपनी दो रानियों गांधारी (से अनमित्र को) तथा माद्री से (युधाजित् और देवमिढुष्ट को) तीन पुत्र उत्पन्न किए। तीनों से वृष्णिवंश को बढ़ाने वाले पृथक-पृथक तीन कुलों का विस्तार हुआ। युधाजित् के दो पुत्र वृष्णि तथा अंधक हुए। वृष्णि के श्वफल्क तथा चित्रक नामक दो पुत्र हुए। श्वफल्क जहाँ रहते थे उनके प्रताप से वहां सूखे आदि का प्रकोप नहीं होता था। अतः काशिराज के देश में जब तीन वर्ष वर्षा नहीं हुई तो उन्होंने गान्दिनी नामक अपनी पुत्री का विवाह श्वफल्क से कर दिया। श्वफल्क व गान्दिनी से विद्वान अक्रूर जी हुए। उपासंग, मद्गु, अरिमेजय, अदिक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक, यतिधर्मा, गृध्रमोजान्तक, आवाह, प्रतिदाह– ये सब अक्रूर के भाई हुए। वरांगना नामक बहिन भी अक्रूर की हुई। अक्रूर के उग्रसेना से दो पुत्र प्रसेन तथा उपदेव हुए।'

'चित्रक की वंश परम्परा में–पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमिअश्व, सुधर्मा, सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र हुए। श्रदिष्ठा तथा

श्रवणा नाम की दो पुत्रियाँ भी हुईं। क्रोष्टा के तीसरे पुत्र देवमिढुष्ट ने शूर नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसके भोजवंशी से दस पुत्र हुए। वसुदेव उनमें ज्येष्ट थे। उनके जन्म के समय आनक तथा दुन्दुभि नामक वाद्य स्वयं बजने लगे थे। अतः उन्हें आनकदुंदुभि भी कहा गया। वह परम रूपवान थे। वसुदेव के भाई देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सवान, गञ्जिम, श्याम, शमीक तथा गण्डूष थे। पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रृतश्रवा तथा राजाधिदेवी नामक पाँच पुत्रियाँ भी देवमिढुष्ट की थीं। राजा कुन्तिभोज ने पृथा को गोद लिया था। उसकी दत्तक पुत्री होने से वह कुन्ती कही गई। बाद में ये कर्ण तथा पाँचों पाण्डवों की माँ हुईं। वह प्रसंग तुम जानते ही हो।'

'कुन्ती की शेष चार बहिनों में–श्रुतदेवा को जगृह नामक तथा श्रुतश्रवा को शिशुपाल नामक पुत्र हुए। यह शिशुपाल पहले जन्म में दैत्यराज हिरण्यकशिपु था। जो बाद में इस जन्म में श्रीकृष्ण के हाथों मर कर मोक्ष को प्राप्त हुआ। पृथुकीर्ति का पुत्र दन्तवक्त्र हुआ।'

'क्रोष्टा के प्रथम पुत्र वृष्णिनन्दन अनमित्र से शिनि नामक पुत्र हुआ जो सत्यक का पिता, सात्यकि का दादा तथा युयुधान का परदादा हुआ। युयुधान का पुत्र

भूमि तथा पौत्र युगन्धर हुआ। इस प्रकार इनका वंश यही समाप्त हो गया। देवभाग के पुत्र उद्धव हुए जो पण्डितों में श्रेष्ठ कहे गए। देवश्रवा ने अश्मकी नामक स्त्री से शत्रुघ्न को उत्पन्न किया। यह देवश्रवा किसी कारण बाल्यावस्था में ही त्याग दिया गया था तब निषादों ने इसे पाला था। यही एकलव्य के नाम से जाना गया था। वत्सवान के कोई पुत्र न होने से वसुदेव ने अपना औरस वीर पुत्र उन्हें दे दिया था। इसी प्रकार गण्डूष के पुत्र न होने पर कृष्ण ने अपने चार पुत्र–चारूदेष्ण, सुचारु, पंचाल तथा कृतलक्षण उनको दिए थे। चारूदेष्ण रुक्मणी से उत्पन्न थे और संग्राम जीते बिना कभी नहीं लौटते थे। वसुदेव के भाई कनवक के तन्द्रिज व तन्द्रिपाल, गञ्जिम के वीर तथा अश्वहन नामक पुत्र हुए। श्याम के पुत्र शमीक हुए जिन्होंने आगे भोजवंश का विस्तार किया। हे राजन् ! अब तुमसे मैं वसुदेव की संतानों के विषय में कहता हूँ।'

वसुदेव के वंशज–'वसुदेव की १४ पत्नियाँ थीं। जिनमें रोहिणी सबसे बड़ी थी। शेष के नाम इस प्रकार हैं–इन्द्रिय, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवी, शांति, श्री, देवररुिता, वृकदेवी, उपदेवी, देवकी, सुतनु तथा वडवा। रोहिणी से वसुदेव के–बलराम, सारण, शठ,दुर्दम,

दमन, स्वभ्र, पिण्डराक तथा उशनिर नामक आठ पुत्र हुए। व चित्रा नामक कन्या हुई। जो सुभद्रा नाम से विख्यात हुई।(चित्रा नामक अप्जय ही श्रापवश रोहिणी के गर्भ से सुभद्रा के रूप में उत्पन्न हुई। ऐसा वर्णन भी कुछ अन्य पुराणों में आता है)। देवकी से उत्पन्न हुए पुत्रों में आठवें श्रीकृष्ण ही बचे, शेष कंस द्वारा मार दिए गए थे। बलराम ने रेवती से विवाह कर निशठ नामक पुत्र उत्पन्न किया। सुभद्रा ने अर्जुन से विवाह कर अभिमन्यु को उत्पन्न किया था। वसुदेव की अन्य पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों को भी संक्षेप में सुनो।'

'भोज और विजय शांति से, वृकदेव तथा गय सुनामा से, उपासंगवर, देवरद्यिता से, वृकदेवी से अवगाह नामक पुत्र हुए। वृकदेवी त्रिगर्तराज की कन्या थी। त्रिगर्तराज के साले गर्गवंशी शैशिरायण पर नपुंसकता का मिथ्या आरोप लगा। तब बारह वर्षों के बाद लोह दण्ड के समान शिश्न वाला होकर उसने गोप कन्या (जो गोपाली नाम की अप्सरा थी) से काम शक्ति के प्रदर्शन हेतु मैथुन किया। जिससे महाबलवान 'कालयवन' उत्पन्न हुआ। उस अप्सरा ने उसका पोषण राजा यवन के घर किया। अतः उसे कालयवन कहा गया। युद्ध की कामना से कालयवन ने जब नारद से पूछा कि किससे

लड़ें ? तो नारद ने कहा कि वृष्णि या अन्धक कुल के वीर ही तुम्हारे योग्य हैं। तब एक अक्षोहिणी सेना के साथ कालयवन ने मथुरा पर धावा बोल दिया। तब तक कालयवन का अन्तसमय नहीं आया था। अतः श्रीकृष्ण ने वृष्णि तथा अंधक वंशीय वीरों को समझा-बुझा युद्ध न करने के लिए मनाया और मथुरा से पलायन करके द्वारिका चले गए। कृष्ण के १६ हजार एक सौ आठ रानियों से अनगिनत पुत्र हुए। प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुचारु आदि उनमें प्रमुख हैं। किन्तु पहले क्रोष्टा के अन्य पुत्र वृजिनीवान् के सम्बन्ध में सुनो।'

चेदिवंश तथा मधुवंश—वृजिनीवान् के पुत्र-पौत्रादि के क्रम में—स्वाहि, रुषद्गु, चित्ररथ, शशविन्दु, पृथुश्रवा, उत्तर, सुयज्ञ, उशत, शिनेयु, मरुत्त, कम्बलबर्हिष, सुतप्रसूति, रुक्मकवच तथा रुक्मेषु हुए। रुक्मेषु के पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित व हरि नामक चार भाई भी थे। विदेह राज को रुक्मकवच ने पालित व हरि को रक्षार्थ दान दे दिया था। ज्यामघ ने शैण्या से विदर्भ को उत्पन्न किया जो क्रश तथा कौशिक नामक दो पुत्रों का पिता हुआ। लोमपाद के तीसरे पुत्र बभ्रु के आहृति हुए जो चेदिपुत्र के दादा हुए। चेदिपुत्र से चेदिवंश का आरंभ हुआ। विदर्भ के—भीम, कुन्ति, धृष्ट, रणधृष्ट,

आवन्त (दाशार्ह और विषहर आवन्त के भाई थे), व्योमा, जीमूत, बृहति, भीमरथ, नवरथ, दशरथ, शकुनि, करंभ, देवरात, देवक्षत्र,देवअत्रि (मधु)—पुत्र-पौत्रादि के क्रम में हुए। मधु से मधुवंश आरंभ हुआ। सत्यवान, मरुवसा, पुरुद्वान मधु के ही पुत्र थे।'

कुक्कर वंश व अंधक वंश – 'सत्त्वान के कौशल्या से भजिन, भजिमान रूपवान, देवावृध, महाबाहु अंधक तथा वृष्णि उत्पन्न हुए। इनसे आगे चलकर चार वंश चले। उनका वर्णन भी सुनो। भजिमान के बाह्यका नामक पत्नी से कृमि, क्रमण, धृष्ट, शूर तथा पुरंजय और उपबाह्यका नामक पत्नी से अयुताजित्, सहस्त्राजित्, शताजित् तथा दाशक नामक पुत्र हुए। देवावृध के पर्णाशा नामक स्त्री से (जो पहले नदी थी) बभ्रु नामक एक ही महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। सत्त्वान के पुत्र अंधक ने काशिराज दृढ़ाश्व की कन्या से कुकुर, भजमान, शमि तथा कम्बलबर्हि नामक चार पुत्र उत्पन्न किए। कुकुर के पुत्र धृष्णु पौत्र कपोतरोमा तथा प्रपौत्र तैत्तिरि हुए। तैत्तिरि का पुत्र पुर्नवसु, पौत्र अभिज़ित् तथा प्रपौत्र आहुक हुआ। आहुक की बहिन का नाम आहुकि था। यह सब अंधक वंशी कहलाते हैं। आहुकि का विवाह राजा अवन्ति से तथा आहुक का विवाह काशिराज

की कन्या से हुआ।'

'हे राजन् ! आहुक के दो पुत्र देवक तथा उग्रसेन हुए। देवक के चार पुत्र (देवदान, उपदेव, सुदेव, तथा देव रक्षित) तथा सात पुत्रियाँ (देवकी, शान्तिदेवी, सुदेवी, श्रीदेवी, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी तथा सुनाम्नी) हुईं जो वसुदेव को ब्याही गईं। उग्रसेन के नौ पुत्रों में कंस सबसे बड़ा था। शेष आठ—न्यग्राध, सुनामा, कंक, सुभूमिय, शंकु, राष्ट्रपाल तथा अंधृष्टि या पुष्टिमान हुए। उग्रसेन की पाँच पुत्रियाँ थीं—कंसा, कंसावती, सतनु, राष्ट्रपाली और केका हुईं। ये सब तथा इनके वंशज कुकटवंश में उत्पन्न हुए।'

'भजमान के पुत्रों में विदूरथ प्रमुख हुआ। इस के पुत्र राजाधिदेव हुए जो दत्त अतिदत्त, शोणाश्व, श्वेतवाहन, शर्मी, दण्डशर्मा, दण्डशत्रु तथा शत्रुजित् नामक पुत्रों के पिता हुए। श्रावणा तथा श्रविष्ठा, नामक दो पुत्रियाँ भी उनके हुईं। शमी के पुत्र प्रतिक्षत्र, पौत्र स्वयंभोज तथा प्रपौत्र हृदीक हुए। हृदीक के पराक्रमी पुत्रों में कृतवर्मा ज्येष्ठ था। कम्बलबर्हि के पुत्र देववान, असमौजा तथा नासमौजा हुए। असमौजा के पुत्र हीन होने से अंधक ने अपने तीन पुत्र उसे दे दिए थे। क्रोष्टा के पुत्र अनमित्र ने निघ्न नामक पुत्र उत्पन्न किया। निघ्न के प्रसेनजित् व

सत्राजित् नामक दो पुत्र हुए। सत्राजित् सूर्य का मित्र था। जब द्वारिका को बसाया जा रहा था, तब सूर्य ने सत्राजित् को श्यामंतक मणि दी।'

श्यामंतक मणि की कथा—'सूर्य द्वारा दी गई श्यामंतक मणि अत्यंत तेजस्वी, धनदायिनी तथा शुभ थी। कृष्ण द्वारा माँगे जाने पर भी सत्राजित् ने वह मणि कृष्ण को न दी। स्वयं अपने गले में धारण कर उसका प्रदर्शन करता रहा। एक बार प्रसेनजित् अपने भाई की वह मणि वहन कर आखेट पर गया। वहाँ पर सिंह ने प्रसेन को मार कर श्यामंतक मणि हथिया ली। सिंह से बाद में वह मणि ऋक्षराज जाम्बवान् ने छीन ली। तब सत्राजित् ने सत्य न जानते हुए भी कृष्ण पर आरोप लगाया कि उसने प्रसेनजित् को मार कर मणि छीन ली है। कृष्ण ने क्योंकि बहुत से लोगों के सामने एक बार सत्राजित् से मणि माँगी थी। अतः लोगों ने भी सत्राजित् के आरोप को सच माना। तब कलंक धोने के लिए कृष्ण स्वयं मणि की खोज में वन को चले गए। सिंह तथा जाम्बवान के पैरों के निशानों के सहारे अंततः वह ऋक्षवान पर्वत पर जाम्बवान की गुफा के पास जा पहुँचे।'

'गुफा के द्वार पर बलराम आदि यदुवंशियों को

खड़ा कर कृष्ण गुफा में प्रविष्ट हो गए। वहीं जाम्बवानके पुत्र को उन्होंने श्यमंतक मणि से खेलते देखा। तब मणि प्राप्त करने के लिए जाम्बवान से कृष्ण ने २१ दिन युद्ध किया। (इस प्रकार त्रेता युग में रामावतार के समय जाम्बवान को दिया उनसे युद्ध करने का वचन पूरा किया)। पराजित जाम्बवान ने कृष्ण को राम के रूप में पहचाना और अपनी पुत्री जाम्बवती से उनका विवाह किया। इस प्रकार श्यामंतक मणि सत्राजित् को लौटा कर कृष्ण ने अपना कलंक धोया।'

'हे राजन् ! इस सत्राजित् के दस पत्नियों से सौ पुत्र हुए। उनमें तीन-भङ्गकारी, वातपति तथा उस्वावान् अधिक प्रसिद्ध हैं। सत्राजित् के तीन पुत्रियाँ भी थीं- सत्यभामा, द्रढ़व्रता और प्रस्वापिनी श्यामंतक मणि मिल जाने पर प्रसन्न होकर सत्राजित् ने सत्यभामा का विवाह भी कृष्ण के साथ कर दिया। सत्यभामा अपने सौंदर्य के लिए विख्यात थी।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'भङ्गकारी के नारेय व नरोत्तम नामक दो पुत्र हुए। माद्रिपुत्र युधाजित् के पृश्नि नामक पुत्र हुआ जो फल्क का पिता हुआ। फल्क का भाई चित्रकि था। फल्क को श्वफल्क के भी नाम से जानते हैं। इसी ने काशिराज की पुत्री गान्दिनी से विवाह

किया था। गान्दिनी के अक्रूर नामक पुत्र हुए जो उपासंग, मंगु, मुदुर, अरिमेजय, गिरिक्षिय, उपेक्ष, अरिमर्दन, धर्मभृत, यतिधर्मा, गृधभोज, अंधक, सुबाहु, प्रतिबाहू नामक पुत्रों व सुन्दरी नामक पुत्री के पिता हुए। उग्रसेना नामक स्त्री से अक्रूर के सुदेव व उपदेव ये दो पुत्र हुए। चित्रक के पुत्र पृथु, विपृथु, अश्वग्रवि, अश्वबाहु, सुपाश्वेक व गवेषण हुए। अरिष्टनेमि के पुत्र-अश्व, सुधर्मा, धर्मकृत, सुबाहु तथा बहुबाहु हुए साथ ही श्रविष्ठा व श्रवणा नामक दो पुत्रियाँ भी हुई–पहले बता ही चुका हूँ। हे राजन् ! कृष्ण की मिथ्या कलंक लगने व उसके समाप्त होने की कथा (श्यामंतक मणि का प्रसंग) सुनने वाले को मिथ्या कलंक कभी नहीं लगता।'

श्यामंतक मणि का हरण—हे महाराज ! श्यामंतक मणि पर अक्रूर की भी दृष्टि थी उसने शतधन्वा द्वारा सत्राजित् की हत्या करा कर श्यामंतक मणि हथियाली और शतधन्वा से वचन ले लिया कि वह अक्रूर के पास मणि होने का भेद नहीं खोलेगा। श्वसुर की हत्या तथा श्यामंतक मणि के चोरी हो जाने की बात से कृष्ण बलराम आदि यादवों के साथ शतधन्वा पर चढ़ दौड़े। शतधन्वा युद्ध में पराजित् होकर भाग निकला किन्तु

कृष्ण ने उसका पीछा कर उसे मार डाला। श्यामंतक मणि तो अक्रूर के पास थी। अतः शतधन्वा की हत्या करने पर भी मणि नहीं मिली। कृष्ण ने वापस लौट कर मणि न मिलने की बात बलराम से कही तो बलराम ने सोचा कि मणि को कृष्ण ने शतधन्वा से हथिया लिया है, किन्तु अब लोभवश झूठ बोल रहे हैं। अतः बलराम रुष्ट होकर मिथिला चले गए। वहीं दुर्योधन ने उनसे गदायुद्ध की शिक्षा ली। अक्रूर मणि के प्रताप से धन लेकर साठ वर्षों तक यज्ञ करके दान दक्षिणा द्वारा ब्राह्मणों को प्रसन्न करते रहे।(तब तक बलराम मिथिला में ही रहे) यज्ञों के हेतु धन कहाँ से आ रहा है ? कृष्ण द्वारा अक्रूर पर ऐसा संदेह होने पर अक्रूर द्वारिका से भाग गए। तब श्यामंतक मणि के चले जाने के कारण नौ वर्षों तक द्वारिका में वर्षा नहीं हुई। आखिर अक्रूर को मनाकर वापस लाया गया। तब वर्षा हुई। कृष्ण ने तब योगबल से जान लिया कि मणि वास्तव में अक्रूर के ही पास है। कृष्ण ने पूर्ण सभा के सामने अक्रूर को भयभीत करके उससे मणि ले ली। बाद में पुनः उसी को रखने के लिए दे दी। इस प्रकार कृष्ण ने प्रमाणित किया कि मणि उनके पास नहीं थी, ना ही मणि का उन्हें लोभ है। तब समस्त यादव बलराम को मनाकर वापस द्वारिका

ले आए। बलराम भी अपनी गलतफहमी दूर हो जाने से वापस लौट आए। श्यामंतक मणि का यह प्रसंग़ सुनने वालों को कीर्ति प्रदान करने वाला है।'

तब जनमेजय जी ने कहा, 'प्रभो ! श्रीकृष्ण के वर्णन को सुनकर मेरे हृदय में विष्णु भगवान् के अवतारों के विषय में जानने की तीव्र इच्छा हो रही है। कृपापूर्वक भगवान् विष्णु के सभी अवतारों का भी मुझसे वर्णन कीजिए। तथा उनके महान कर्मों को मुझसे कहिए।'

श्री भगवान् विष्णु के अवतारों का वर्णन

वैशम्पायन जी ने इस प्रकार कहा–'हे राजन् ! आपने यह बड़ा भारी प्रश्न पूछा है। मैं सामर्थ्यानुसार श्री विष्णु की यश कथा तथा उनके अवतारों के विषय में आप से संक्षेप में कहूँगा। वैसे तो श्री विष्णु का सहस्त्रों प्रकार से अवतार हो चुका है और आगे भी होगा। किन्तु मैं उनके प्रमुख अवतारों का वर्णन करूँगा। अवतार लेने के कारण, उद्देश्य तथा अवतार लेने के बाद किए गए कर्मों को भी संक्षेप में कहूँगा। आप सावधान होकर सुनिए। जब जब भी धर्म की हानि होती है, तब तब धर्म

की पुर्नस्थापना के उद्देश्य से साधुओं की रक्षा एवं दुष्टों के विनाश के लिए सम्पूर्ण जगत् के वे पालन कर्ता विष्णु पृथ्वी पर अवतरित होते हैं।'

१. पुष्कर का अवतार—'विष्णु भगवान् की एक मूर्ति साकेत लोक में सदा तप लीन रहती है। दूसरी अवसर आने पर अवतार लेती है। यही दूसरी मूर्ति सृष्टि पालन व संहार के पश्चात् योगनिन्द्रा से क्षीर सागर में शयन करती है। फिर प्रलय की अवधि समाप्त होने पर पुनः सृष्टि करती है। तब ब्रह्मा, लोकपाल, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, सप्तऋषि आदि उन्हीं के तेजस्वी शरीर से प्रकट होते हैं। प्रलय काल में नष्ट हो चुके दैत्य, सर्प, राक्षस आदि भी फिर से प्रकट होते हैं। मधु और कैटभ राक्षस पुनः युद्ध कामना करते हैं। तब विष्णु उनका वध कर उन्हें मोक्ष देते हैं। सागर में सोते समय उनकी नाभि से प्रकट हुए कमल (पुष्कर) से देवता सर्प आदि उत्पन्न होते हैं। उस समय वह भगवान् विष्णु का पुष्कर नाम का पहला अवतार कहा जाता है। ऐसा श्रुतियों में कहा गया है।

२. वाराहावतार—'पृथ्वी के रसातल में चले जाने पर पृथ्वी सम्पूर्ण जलमग्न हो गई थी। तब पृथ्वी का उद्धार कर उसे रसातल से बाहर लाने के लिए भगवान्

पृथ्वी का उद्धार करते भगवान् वाराह

विष्णु ने वराह का अवतार लिया। अपने दाँतों, थूथन तथा कँपकँपी द्वारा उन्होंने पृथ्वी को बाहर निकाला था। उस समय भगवान् वाराह ऐसे सुशोभित हुए कि उनके चारों पैर चारों वेद, उनके दाँत यज्ञ, उनकी जिव्हा अग्नि, उनके रोम कुश, नेत्र दिवस और पलकों का झपकना रात्री, कान वेदामंत्रा श्रुति, नासिका धृत तथा मुख स्त्रुवा के समान ज्ञात हुआ। उनका कण्ठ स्वर ही मानो सामगान था। वे पूर्ण यज्ञमय थे। वह वाराहावतार अति वन्दनीय हैं।

३. नरसिंहावतार –'दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने केवल जलपान पर आश्रित रहकर ग्यारह हजार वर्षों तक तप किया। तब ब्रह्मा से इस प्रकार का वरदान ले लिया था कि ना वह शस्त्र से मरे, ना ही अस्त्र से, ना देवता से मरे, ना दानव से, ना मनुष्य से मरे ना ही यक्ष, गंधर्व आदि से ना घर में मरे, ना बाहर, ना आकाश में मरे, ना पृथ्वी पर, ना ही जल में मरे। ना दिन में मरे ना ही रात में मरे। इस प्रकार उसने अपने विचित्र वरदान द्वारा रक्षित होकर स्वयं को अमर समझना आरम्भ कर

हिरण्यकशिपु का वध करते प्रभु नरसिंह

दिया। तब अहंकारी होकर उसने यज्ञ पूजा आदि बंद करा दिए। 'मैं ही भगवान् हूँ, अतः मेरी ही पूजा करो।' ऐसा आदेश देकर प्रजा को पीड़ित करने लगा। उस महाबली का विरोध सर्वप्रथम उसके पुत्र प्रह्लाद ने ही किया। उसने विष्णु पूजन करना न छोड़ा। हिरण्यकशिपु ने विभिन्न प्रकार से उसे डराने, मारने का प्रयास किया। परन्तु प्रह्लाद के दृढ़ विश्वास और विष्णु की कृपा से प्रह्लाद का कुछ नहीं बिगड़ा। तब क्रोध में वह स्वयं ही प्रह्लाद को मारने लगा। तब भगवान् विष्णु ने एक स्तम्भ से नरसिंह रूप में उत्पन्न होकर संध्या के समय, महल की दहलीज पर, अपनी गोद में लिटाकर, उसका पेट फाड़ डाला। और प्रह्लाद के साथ समस्त प्रजा की रक्षा की तथा ब्रह्मा का वरदान भी झूठा न होने दिया। क्योंकि तब न दिन था न रात, ना वे पशु थे ना ही मनुष्य, ना शस्त्र से मारा न अस्त्र से, न घर के अंदर न बाहर, और ना आकाश में मारा न ही पृथ्वी पर। भगवान् विष्णु के उस अतिभयंकर, रौद्र अवतार को नरसिंहावतार कहा जाता है। जिसमें उन्होंने हिरण्यकशिपु का संहार कर पुनः धर्म की रक्षा की।'

४. वामनावतार—'राजा बलि के कारण विष्णु जी ने यह अवतार लिया था। बलि दैत्यों के राजा थे

तीनों लोकों को नापते वामन अवतार

और महादानी थे। देवता उनके बढ़ते प्रताप से आतंकित थे। अतः भगवान् विष्णु ने वामन (बौने ब्राह्मण) का रूप बनाकर बलि से तीन पग भूमि दान माँगी और दो पगों में ही समस्त लोकों को नाप लिया। तीसरे पग को रखने का स्थान न मिलने के कारण बलि के सिर पर पैर रख कर उसे समस्त दैत्यों सहित सदा के लिए पाताल में ही भेज दिया। तब दैत्यों द्वारा विरोध करने पर वामन से विशाल रूप बनाकर उन्होंने समस्त विरोधियों को लात, घूंसों से मार डाला। विष्णु का वह अवतार

वामनावतार के नाम से प्रसिद्ध हुआ था।'

५. दत्तात्रेयावतार – 'हे राजन् ! जब वेद, वेदांत, वेद प्रक्रिया व यज्ञ आदि कर्म नष्ट होने लगे, वर्णव्यवस्था संकुचित होने लगी तब धर्म के शिथिल हो जाने से अधर्म की बहुत अधिक वृद्धि हो गई। सत्य नष्ट होकर असत्य बढ़ गया तब प्रजा दुखी होने लगी। धर्मात्मा व्याकुल हो उठे। तब विष्णु भगवान् ने अत्रि के दत्तक पुत्र दत्तात्रेय का अवतार लिया। वेदों की पुनर्स्थापना की। वर्णव्यवस्था को दृढ़ किया तथा यज्ञों को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार सत्य व धर्म की पुनर्स्थापना की। हैहयवंशीय कार्तवीर्याजुन को योग्य जान कर उसे युद्ध के समय हजार हाथों वाला होने का वर दिया, जिससे वह दुष्ट राजाओं तथा राक्षसों का समय-समय पर संहार कर सके।

६. परशुरामावतार – 'जमदग्नि ऋषि के पुत्र के रूप में विष्णु भगवान् ने परशुराम का अवतार लिया। कार्तवीर्याजुने के अहंकारी होकर अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने पर परशुराम ने उसकी समस्त भुजाओं को काट डाला। क्षत्रिय जो निरंकुश, अभिमानी तथा शक्ति के मद में चूर होकर ब्राह्मणों तथा संतों का अनादर करने लगे थे। ऋषियों का अपमान करने लगे थे।

तथा प्रजा पर अत्याचार करने लगे थे–उनको मार कर परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन किया। अश्वमेघ यज्ञ कर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीता और कश्यप जी को दान कर दिया। और स्वयं महेन्द्र पर्वत पर तप करने के लिए चले गए। क्योंकि अवतार लेने का मुख्य उद्देश्य पूरा हो चुका था। रामचन्द्र के अवतार के बाद उनका सम्पूर्ण प्रयोजन पूर्ण हो गया था।

७. रामचन्द्रावतार–महातेजस्वी, महापराक्रमी, त्रैलोक्यविजयी, महाविद्वान रावण जब अहंकारी हो

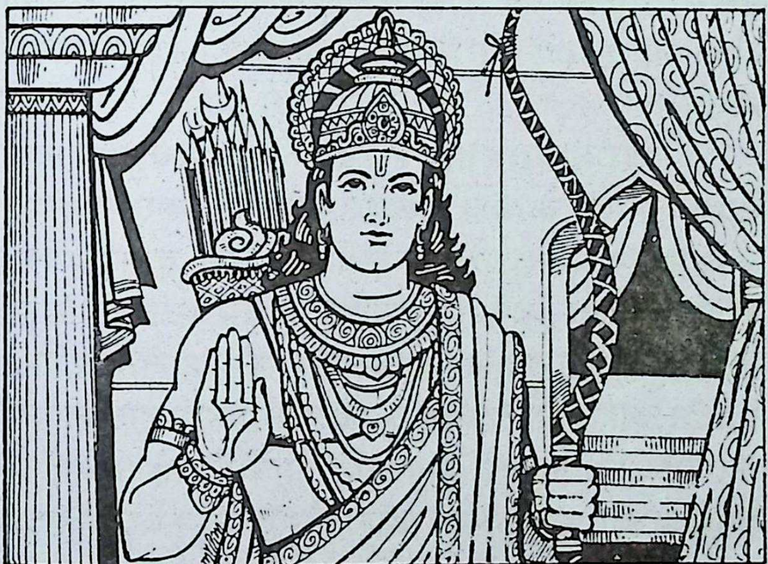

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र

गया और देवताओं, ऋषियों तथा सम्पूर्ण प्रजा को आतंकित करने लगा, तब रावण को उसके कुल सहित नष्ट करने, अन्य ताड़का, मारीचि, कबन्ध आदि असुरों से ऋषियों की रक्षा करने के लिए तथा प्रजा में मर्यादाओं और आदर्शों की स्थापना करने के उद्देश्य से शेषनाग, शंख व चक्र लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न सहित विष्णु ने श्री रामचन्द्र का अवतार लिया। तब अयोध्या नगरी पर ११००० वर्षों तक उन्होंने आदर्श राज्य किया। हे राजन् ! इस अवतार के विषय में प्रायः सभी भली प्रकार जानते हैं। अतः अधिक क्या कहें। उनकी सम्पूर्ण लीलाओं के वर्णन के लिए तो एक अन्य ग्रन्थ आवश्यक होगा।

८. श्रीकृष्णावतार—'द्वापर युग में वसुदेव तथा देवकी के पुत्र के रूप में कृष्ण अवतार लेकर विष्णु जी ने कर्मयोग का प्रचार प्रसार किया तथा कंस, पूतना, केशी, चाणूर, बकासुर, मुस्टिक, अरिष्ट, बाणासुर, नरकासुर, शिशुपाल, कुवलयापीड़, कालीय, मैन्द, द्विविद, शाल्व कालयवन आदि राक्षसों तथा दुष्ट क्षत्रियों का वध किया तथा शेष दुष्ट क्षत्रियों को अर्जुन के हाथों मरवा डाला। योग और भोग दोनों ही के आदर्श प्रजा के सामने रखे तथा धर्म की स्थापना की। इस

अवतार में शेषावतार रूप में बलराम भी उनके सहयोगी हुए।'

९. मत्स्यावतार तथा कूर्मावतार–'संपूर्ण पृथ्वी के जलमग्न हो जाने पर (प्रलय के बाद) नई सृष्टि के प्रारम्भ के लिए मनु को उसकी नौका सहित सुरक्षित रखने के लिए विष्णु का एक मत्स्यवतार तथा समुद्रमंथन के समय सुमेरू पर्वत की मथानी को सँभाले रखने के लिए विष्णु के कूर्मावतार का भी वर्णन बहुत से पुराणों में मिलता है। इसके अतिरिक्त महर्षि वेदव्यास के रूप में, मोहिनी के रूप में आदि विष्णु के और भी बहुत से अवतारों का वर्णन मिलता है।

१०. व्यास अवतार–'वेदव्यास महर्षि के रूप में पराशर ऋषि व सत्यवती से उत्पन्न होकर वेदों को चार भागों में बाँटने, पुराणों को लिखने तथा भरतवंश को (धृतराष्ट्र, पाण्डु, तथा विदुर को उत्पन्न करके) आगे बढ़ाने का कार्य भी भगवान् विष्णु ने ही अवतरित होकर किया। इस प्रकार के अन्य भी बहुत से अंशावतार समय-समय पर श्री विष्णु भगवान् ने लिए हैं। भविष्य में और भी होंगे।'

११. बुद्ध व कल्की अवतार–'पाखण्डमयी यज्ञों के खण्डन के लिए तथा अहिंसा के विशेष प्रचार

भविष्य का अवतार कल्कि अवतार

के लिए बुद्ध के रूप में विष्णु का बौद्धावतार होगा तथा बाद में, बौद्धों के बढ़े हुए पाखंड का खंडन कर धर्म की पुनर्स्थापना के लिए भगवान् श्री विष्णु का कल्की अवतार होगा। ये दोनों अवतार कलियुग में होंगे। इस प्रकार विष्णु के प्रमुख अवतारों का तुमसे वर्णन कर दिया।'

'हे राजन् ! वे सर्व समर्थ विष्णु अव्यक्त होते हुए भी शरीर धारी हैं। नारायण होते हुए भी अनन्तात्मा हैं। अर्थात् स्वयं ही सृष्टि कर, जीव भाव को स्वयं ही प्राप्त

होते हैं, और स्वयं ही उनका हरण भी करते हैं, अतः वे हरि हैं। उन्हीं के विभिन्न रूपों से यह जगत् बहुरूप हो गया है। मैं तुमसे उनकी कीर्ति का वर्णन करता हूँ। सुनो।

देवासुर संग्राम –'वृत्रासुर के वध के बाद कृत युग में 'तारकामय' नामक भयानक संग्राम हुआ। उस देव दानव संग्राम में जब सूर्य चन्द्र आदि ग्रह लुप्त हो गए, आकाश विद्युत गर्जना व बादलों की गड़बड़ाहट से भर गया और पृथ्वी भयानक भूकम्पों से पीड़ित होने लगी, तब गरुड़ध्वज विष्णु ने देवों को दर्शन दिए। जिससे प्रेरित होकर देवगण दुगुने उत्साह से युद्ध करने लगे। इससे पूर्व दैत्यों के तामस अस्त्रों तथा माया के कारण देवता पराजय व आतंक को प्राप्त हो रहे थे। किन्तु विष्णु दर्शन से उत्साहित देवगणों के शौर्य में वृद्धि हो जाने पर राक्षसों में भारी भय व्याप्त होने लगा। इन्द्र ने वज्र द्वारा तामस अस्त्रों से उत्पन्न अंधकार को दूर किया वरुण व चन्द्र में भारी जलवर्षा तथा हिमपात के द्वारा मायावी अग्नि को शांत कर दिया।'

'राक्षसों की दुर्दशा देख मयदानव ने अपने पुत्र क्रौंच द्वारा बनाए गए पर्वतास्त्र का उपयोग किया। जिससे देवताओं पर भारी शिलाओं, पाषाणों तथा बड़े-बड़े वृक्षों की वर्षा होने लगी। तब देवगण आतंकित हो उठे।

यह देख विष्णु ने वायु व अग्नि द्वारा उस राक्षसी माया को समाप्त किया। अन्ततः दानव पराजित हुए। धर्म की रक्षा हुई देवता जीत गए। तब चारों ओर विष्णु की जय-जयकार व स्वस्ति वाचन होने लगा। अज्ञान रूपी अंधकार दूर हो गया।'

कालनेमि युद्ध व वध – 'हे राजन् ! तब दैत्यों की पराजय के समाचार से महापराक्रमी कालनेमि नामक दैत्य अतिक्रुद्ध हुआ। वह सौ सिरों तथा उतनी ही भुजाओं वाला मन्दराचल पर्वत की भांति अति विशालकाय राक्षस था। धूम्रवर्ण की दाढ़ी, मूँछें, लाल रंग की आँखें और हरे रंग के दाँत उसे और भी भयानक बना देते थे। उसकी छोड़ी गई श्वास से मेघ छिन्न भिन्न हो जाते थे तथा उसकी पदचाप से भूकम्पों की उत्पत्ति होती थी। वह महाअसुर मयदानव सहित अन्य दानवों को संगठित कर पुनः देवताओं पर टूट पड़ा। तब तो उत्साहित होकर तार, वराह, हयग्रीव, विप्रवित्ति का पुत्र श्वेत, खर, लम्ब, बलि पुत्र अरिष्टासुर आदि बहुत से पराक्रमी दैत्य भी भयानक अस्त्रों शस्त्रों के साथ दैत्यों के साथ हो लिए। इन्द्र ने यम, कुबेर, अग्नि, वरुण, वाय आदि देवों के साथ उनका सामना किया। किन्तु कालनेमि के अद्‌भुत शौर्य के कारण उनको

पराजित होना पड़ा। कालनेमि ने लोकपालों व देवताओं को बन्दी बनाकर अपना दास बना लिया। किन्तु वेद, धर्म, सत्य, क्षमा तथा लक्ष्मी नारायण ये पाँच कालनेमि के अधिकार में नहीं आए अतः भारी विजय और दानवों द्वारा किए जाने वाले उच्च जयघोषों से भी कालनेमि तृप्त नहीं हुआ।'

'हे राजन् ! तब गर्व में चूर और रणोन्माद से मतवाला होकर वह महा असुर भगवान् विष्णु के पास गया, विभिन्न अपशब्दों तथा धमकियों द्वारा उनको ललकारने लगा। विष्णु भगवान् धैर्य न खोकर मुस्कुराते हुए बोले–'अभिमान सदैव नष्ट करने वाला होता है। वीर व्यक्ति सदा शक्ति पर और क्रोध पर संयम रखते हैं। वाणी से तो स्त्रियाँ युद्ध करती हैं, पुरुष कर्म द्वारा युद्ध करते हैं। अतः अभिमान मत करो अन्यथा तुम्हारा नाश निश्चित है। कालनेमि ये सुनकर और भी क्रुद्ध होकर विष्णु पर टूट पड़ा। उसने अपनी भयंकर गदा गरुड़ के सिर पर मारी, जिससे चकराकर वह महाशक्तिशाली पक्षी राज गरुड़ भूमि पर गिर पड़े। तब भगवान् विष्णु ने क्रुद्ध होकर अपने अजेय सुदर्शन चक्र द्वारा कालनेमि का सिर उसके कंधों से उतार लिया। तब समस्त देवताओं, ऋषियों आदि ने विष्णु का जय-जयकार

किया। इस प्रकार अवतार लिए बिना भी वे भगवान् बहुत बार अवसर आने पर दुष्टों का विनाश और सज्जनों की रक्षा कर धर्म स्थापना कार्य करते रहते हैं।'

महाभारत युद्ध की भूमिका—'इसी प्रकार हे राजन् ! एक बार पृथ्वी पर राजाओं तथा सैनिकों का भार (जनसंख्या) बहुत बढ़ गया। तब देवताओं ने इस समस्या के समाधान हेतु सुमेरु पर्वत पर एक मंत्रणा बुलाई। इसमें विष्णु भगवान् को सादर आमंत्रित किया। ब्रह्मा जी की अध्यक्षता में वह सभा प्रारम्भ हुई। पृथ्वी ने प्रार्थना की—कि वह स्वयं पर अंधाधुंध बढ़ गए भार से पीड़ित है। अतः उसे भय मुक्त करने का उपाय किया जाए। तब ब्रह्मा जी ने इस प्रकार कहा 'हे देवगण ! मुझे ऐसे संकट का पूर्वानुमान था अतः मैंने इसके लिए पहले से ही प्रबन्ध सोच रखा है। वह मैं तुम सबसे कहता हूँ। सुनिए—

'ब्रह्माजी ने आगे कहा—एक बार मैं अपने पुत्र कश्यप के साथ सागर के पश्चिमी तट पर वेद चर्या कर रहा था तब सागर गंगा, जलंधर व मरुत के साथ मुझे परास्त करने की भावना से आया और उश्रृंखल राजा की भांति अपने खारे जल को उछाल कर मुझे पीड़ित करने लगा। तब लोक कल्याण के लिए मैंने

सागर को मनुष्य योनि में राजा बनने का श्राप दिया और यह भी कहा कि तुम्हारे साथ आई यह गंगा भी मानवी रूप धारण कर तुम्हारी पत्नी बनेगी। सागर तब दुखी होकर कहने लगा–'प्रभो ! मैं आपका सेवक हूँ। आपके ही द्वारा मेरे लिए निर्धारित किए गए कर्त्तव्यों का पालन करता हूँ। पूर्णिमा को वृद्धि पाना (ज्वारभाटा) आप ही के द्वारा मुझे दिया गया मेरा स्वभाव है। इसी कारण पूर्णिमा होने से वायु के वेग से उछलकर मैंने आपको स्पर्श किया है। यदि यह मेरा अपराध है तो मुझे क्षमा करें। गंगा तो बेचारी निर्दोष है ही। इसे आपने केवल मेरी संगति के कारण ही श्राप दे डाला है।'

'तब मैंने सागर को सांत्वना देते हुए कहा कि यह श्राप लोक कल्याण की भावना से दिया गया है। क्योंकि समय आने पर पृथ्वी के बढ़े हुए भार को हल्का करना है, दूसरे स्वर्ग से शापवश पाताल चले गए आठ वसुओं को भी इस प्रकार वापस लाना है। तुम शान्तनु राजा के रूप में उत्पन्न होओगे। तुम्हारी पत्नी बनकर यह गंगा तब आठों वसुओं को जन्म देगी और पानी में बहा देगी। इस प्रकार उनका मानव योनि में उत्पन्न होने का श्राप पूर्ण होगा और वे स्वर्ग को लौट आएँगे। केवल आठवें वसु 'भीष्म' को यह बहा नहीं पाएगी,

क्योंकि उसे भविष्य में पृथ्वी का भार हल्का करने के कार्य में सक्रिय भूमिका निभानी होगी। इस प्रकार यह श्राप अकारण नहीं है।'

'हे देवगणो ! अब जबकि ऐसा हो चुका है। भीष्म इस समय पृथ्वी पर हैं। आप लोग भी शांतनु के देश में कुछ धृतराष्ट्र के यहाँ, कुछ पाण्डु के यहाँ जन्म लीजिए। क्योंकि मैंने 'महाभारत' नाम से बड़े भारी विश्वयुद्ध की योजना तैयार की है। उस युद्ध में प्रायः सभी राजा अपनी सेनाओं के साथ कट मरेंगे। जो शेष रह भी जायेंगे, उन्हें भगवान् शंकर के अंशरूप अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र से जलाकर भस्म कर देंगे। इस प्रकार पृथ्वी के दुखों तथा भय का निवारण हो जाएगा। भगवान् विष्णु कृष्णावतार के रूप में इस युद्ध में प्रभुत्व भूमिका का निर्वाह करेंगे और आप लोग शांतनु देश में जन्म लेकर इस योजना में सहयोग देंगे। हे देवगणो ! श्रीकृष्ण के रूप में भगवान् विष्णु पृथ्वी पर बढ़ गए असुरों का भी नाश करेंगे और मनुष्यों में पुनः कर्मयोग की प्रेरणा देंगे। इनके निर्वाण लेते ही कलियुग प्रारम्भ हो जाएगा। और द्वापर समाप्त हो जाएगा।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा–'हे राजन् ! ब्रह्मा जी द्वारा पृथ्वी का भार कम करने की पहले ही रच दी गई

यह योजना सभी को पसन्द आई। देवगणों ने इस योजना का अनुमोदन व स्वागत किया। पृथ्वी भी शीघ्र ही कष्ट का निवारण हो जाने की आशा से भली प्रकार संतुष्ट हो गई। और भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी की योजनानुसार श्रीकृष्ण का अवतार लेना सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उन्होंने ययाति के वंश में विद्वान वसुदेव के यहाँ कृष्ण के रूप में जन्म लिया और फिर दैत्यों, असुरों व दुष्टों का वध करते हुए कर्मयोग का प्रचार प्रसार किया और महाभारत के युद्ध में प्रमुख भूमिका निभाई।'

'देवगणों ने भी युधिष्ठिर (धर्म), अर्जुन (इन्द्र), भीम (वायु), नकुल व सहदेव (अश्विनी कुमार), कर्ण (सूर्य), द्रोणाचार्य (बृहस्पति), भीष्म (आठवें वसु), विदुर (यम), अभिमन्यु (सोम), भूरिश्रवा (शुक्र), दुर्योधन (अधर्म); श्रुतायुध (वरुण), अश्वत्थामा (शंकर), कणिक (मित्र), धृतराष्ट्र (कुबेर), देवक (यक्ष), उग्रसेन (गंधर्व) तथा दुःशासन (सर्प) आदि रूपों में महाभारत के लिए अंशावतार लिया।'

हे राजन् ! वसुदेव भी वास्तव में कश्यपऋषि थे जो अपनी पत्नियों अदिति व सुरभि के साथ पृथ्वी पर

उत्पन्न हुए थे। अदिति देवकी के रूप में और सुरभि रोहिणी के रूप में। पहले कश्यप जी ने यज्ञ के लिए वरुण से गौएँ ली थीं और बाद में वे गौएँ वरुण को वापस नहीं लौटाई थीं। अतः ब्रह्मा जी ने दण्ड स्वरूप उन्हें पृथ्वी पर मनुष्य रूप में उत्पन्न होकर गायों का पालन करने का आदेश दिया था। (तब कश्यप जी एक अंश से वसुदेव व दूसरे अंश से नन्द बनकर उत्पन्न हुए थे।) अदिति ने भगवान् विष्णु से उन्हें पुत्र रूप में पाने का वर लिया था। अतः विष्णु भगवान ने कृष्ण बनकर देवकी के रूप में अदिति के गर्भ से जन्म लिया था।'

॥ॐ नमोः नारायणाय॥

प्रथम पर्व समाप्त

पूज्य श्री रामचन्द्र केशवजी
डोंगरे महाराज की अनुपम पुस्तकें

- श्रीमद्भागवद् रहस्य (प्रवचन सहित)
- संत वाणी
- हरि का मार्ग
- पाप, प्रायश्चित और प्रभु
- आनन्द धारा
- श्री तत्वार्थ रामायण
- रामायण रहस्य
- ज्ञान निर्झर
- रामायण प्रसादी
- गोपी गीत

पूजा प्रकाशन
पुल कुतुब रोड (सदर रेलवे स्टेशन के बराबर दरगाह के बाहर)
सदर बाजार, दिल्ली-110006
दूरभाष : 3626450, 3625241

विष्णु पर्व (पूर्वार्द्ध)

नारद-कंस संवाद

'हे जनमेजय ! नारद जी को जब भगवान् विष्णु के कृष्णावतार होने की बात पता चली तो वे तुरन्त कंस के पास मथुरा जा पहुँचे। कंस को जब नारद जी के आगमन का समाचार ज्ञात हुआ तो उसने नारद जी का यथायोग्य सत्कार किया। तब आसन ग्रहण करके नारद जी ने कहा–'

'हे महावीर ! तुमने जिस प्रकार मेरा आदर किया, उससे मैं प्रसन्न हूँ। अतः तुमको तुम्हारे हित की बात कहता हूँ। मैं ब्रह्मलोक से विचरण करता हुआ जब सुमेरु पर्वत पर पहुँचा तो मैंने वहाँ देवताओं को मंत्रणा करते पाया। वे लोग अपने अनुयायियों सहित पृथ्वी पर उत्पन्न हो कर तुम्हारे ही विनाश की योजना बना रहे थे। हे कंस ! देवकी का आठवाँ पुत्र तुम्हारा काल होगा। वह तुम्हारे पूर्वजन्म में भी तुम्हारा वध कर चुका है। अतः इस विष्य में सावधान रहना। अब मुझे आज्ञा दो। तुम्हारा कल्याण हो।'

'हे राजन् ! नारद जी इस प्रकार कंस को भड़का

कर चलने को हुए तो कंस ने हँसते हुए कहा–'अरे देवर्षि ! मेरे विनाश की तुमने भली कही। मैं महाबलशाली और महापराक्रमी हूँ। जब चाहूँ सम्पूर्ण पृथ्वी को नष्ट कर सकता हूँ। केशी, धेनुक, प्रलम्ब, हयग्रीव, अरिष्ट, वृषभ, पूतना और कालीय जैसे अद्‌भुत बल सम्पन्न असुर मेरे सहयोगी हैं, फिर भला मेरा विनाश कौन कर सकता है ? आप इस विषय में चिन्ता न करें ।'

नारद बोले–'इसी विश्वास में तो रावण, हिरण्यकशिपु, भस्मासुर जैसे परमवीर भी नष्ट हो गए थे कंस। तुम देवताओं के नेता विष्णु की चतुराई को नहीं जानते, वही देवकी के आठवें गर्भ में तुम्हारा काल बनकर आ रहे हैं। बुद्धिमान व्यक्ति चिंगारी के शोला बनने की प्रतीक्षा नहीं करते, बल्कि प्रारम्भ में ही उसे दबा देते हैं। आगे तुम स्वयं बुद्धिमान हो। मेरा कार्य तुम्हें आने वाले भय से सूचित करना था, सो कर दिया। अब तुम कोई उपाय करो अथवा नहीं यह तुम्हारा कार्य है।

'नारद द्वारा इस प्रकार समझाए जाने पर कंस सोच में पड़ गया। वह नारद जी के स्वभाव को जानता था। एक-दूसरे को भड़काकर झगड़ा करा देने में उनको बहुत आनन्द आता है। वे इस कार्य में विशेषज्ञ हैं। फिर भी शत्रु को छोटा न समझना चाहिए। अतः उसने

देवकी के गर्भों को नष्ट करवा देने का निर्णय लिया और नारद जी को धन्यवाद देकर विदा किया।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे राजा जनमेजय ! नारद जी के जाने के बाद कंस ने देवकी और वसुदेव को सभी सुविधाओं से युक्त कारागार में डाल दिया, जिससे वह देवकी के गर्भों को नष्ट कर सके। प्रहरियों को देवकी के गर्भ की जानकारी रखने का आदेश देकर अपने असुर साथियों को शत्रुओं के नाश के लिए बाहर खुला घूमने के लिए छोड़ दिया। विष्णु भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। कंस की इन योजनाओं को जानकर उन्होंने आठवें गर्भ से उत्पन्न होने का निर्णय लिया। कालनेमि के छः पुत्र जो पाताल वासी थे और तप व अमृत के प्रभाव से दीर्घायु हो गए थे। उन्होंने ब्रह्मा से वर प्राप्त किया था कि देवता, गंधर्व, सर्प, यक्ष आदि के द्वारा वे मारे न जा सकें। ब्रह्मा की आराधना करते देख उनके दादा हिरण्यकशिपु ने उन को घर से निकाल कर श्राप दिया था कि वे मनुष्ययोनि में जन्म लेंगे और तुरंत ही मार डाले जायेंगे। अतः विष्णु भगवान् ने कालनेमि के उन छः पुत्रों को देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने के लिए प्रेरित किया।'

'कंस ने एक एक कर उन सभी को मार डाला। तब

विष्णु भगवान् ने सातवें गर्भ के रूप में शेषनाग के अंश को देवकी के गर्भ में स्थापित किया और सातवें माह में ही उसे देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थानांतरित कर दिया। इस प्रकार वह बालक 'संकर्षण' के नाम से भी जाना गया। महाबली होने से बाद में बलराम के नाम से प्रसिद्ध होने वाला कृष्ण का बड़ा भाई हुआ। तब कंस ने सोचा कि उसके भय के कारण देवकी का सातवाँ गर्भ गिर गया है। हे राजन् ! देवकी के आठवें गर्भ में विष्णु को स्वयं अवतरित होना था। अतः उस योजना को पूर्ण करने के लिए उन्होंने योगमाया-योगनिद्रा को गोपराज नन्द की पत्नी के गर्भ में जाने के लिए प्रेरित किया। और स्वयं देवकी के गर्भ में विराजमान हुए।'

'अभिजित् नक्षत्र, विजय मुहूर्त और जयन्ती नामक रात्री में जब प्रभु अवतरित हुए तब भूमि पर धूलि शांत होकर कल्याणकारी वायु चलने लगी, पर्वत डगमगा गए, सागर काँप उठे और देवगण दुन्दुभियाँ बजाने लगे। आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी। तब वसुदेव उन्हें देखकर कंस के भय से घबराने लगे और उनकी अनिष्ट की चिन्ता करने लगे। तब भगवान् ने उन्हें अपना चतुर्भुज रूप दिखाकर सांत्वना दी। फिर अपनी माया से

पहरेदारों को सुलाकर वसुदेव जी से कहा कि वे उनको नन्द बाबा के यहाँ छोड़ आएँ और उसी समय उत्पन्न होने वाली उनकी पुत्री को यहाँ ले आएँ। हे राजन् ! वसुदेव ने तब भयंकर वर्षा और बाढ़ ग्रस्त यमुना को पार कर ऐसा ही किया। वसुदेव द्वारा कृष्ण को छोड़कर आने औरं कन्या रूप में नन्द के यहाँ उत्पन्न हुई योगमाया को वापस लाने तक समस्त प्रहरी निद्रा के प्रभाव में ही रहे। बाद में कन्या के रुदन के स्वर से प्रहरियों की नींद खुल गई। तब उन्होंने कंस को देवकी का आठवाँ गर्भ उत्पन्न हो गया, ऐसी सूचना दी।'

'हे राजन् ! तब कंस ने–मेरे भय से पुत्र के स्थान पर कन्या उत्पन्न हुई–ऐसा कहकर, देवकी के लाख गुहार के बाद भी उस कन्या को पैरों से पकड़कर पत्थर पर पटक कर मार डाला। तब वह योगमाया अपने स्वरूप में प्रकट हो आकाश में उड़ गई और अट्टहास करते हुए बोली– 'अरे पापी ! तेरा काल तो पैदा हो चुका है। तेरी मृत्यु के समय मैं तेरी छाती फाड़ कर तेरा लहू पियूँगी। ऐसा कहकर वह अदृश्य हो गई। तब कंस ने पछताते हुए देवकी से कहा, 'बहिन ! नारद के बहकावे में आकर मैंने व्यर्थ ही तुम्हारे अनेक पुत्रों को मार डाला। ऐसा मालूम होता है कि मेरी मृत्यु का कारण

कोई और बनेगा। मेरी दुष्टता को क्षमा करो, और इसे विधि का विधान समझकर संतोष धारण करो। तब देवकी ने अपने चरणों में पड़े कंस को उठाकर क्षमा करते हुए कहा, 'भैया ! उठो ! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। मनुष्य अपने कर्म के अनुसार ही फलों को भोगता है। माध्यम अथवा निमित्त बनकर उन परिणामों का यश या अपयश किसी और को मिलता है। हे भाई ! जो भी कोई जन्मा है उसे अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है। अतः इस विषय में शोक न करो। जो होना था, हो गया। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए कोई दुर्भावना नहीं है। जन्म-मरण का स्थान, समय और कारण पूर्व निश्चित होते हैं। इसके लिए किसी व्यक्ति विशेष को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसीलिए शास्त्रों में भी कहा गया है।'

मृत्युनाऽनहु ते पूर्व शेषोंः हेतु प्रवर्त्तते।
विधिना पूर्वदृष्ट न प्रजासर्गेण तत्वतः॥

'इस प्रकार समझाए जाने पर कंस का दुख कम हुआ और वह आँखों में आँसू भरकर देवकी को गले से लगा कर अपने जीजा वसुदेव से क्षमा माँगता हुआ, उन्हें सादर अपने महल में ले गया।'

बालकृष्ण के चरित्र

'हे राजन् ! रोहिणी से बलराम के उत्पन्न होने का समाचार तो वसुदेव पहले सुन ही चुके थे। अतः वे शीघ्र ही ब्रज में जाकर नन्द से मिले और उन्हें कृष्ण तथा बलराम दोनों का पालन अति सावधानी पूर्वक करने का निर्देश दिया। क्योंकि वे जानते थे कि कंस ने केशी आदि असुरों को स्वतंत्र घूमने का आदेश दे रखा है। इसके बाद वे वापस मथुरा लौट आए।'

कृष्ण द्वारा शकट टूटना—वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'नन्द दोनों बालकों के नामकरण आदि संस्कार करके सावधानी पूर्वक उनका पालन करने लगे। बड़े का नाम संकर्षण और छोटे का कृष्ण रखा गया। हे राजन् ! एक बार यशोदा जी कृष्ण को शकट (छकड़े) के पास सुलाकर यमुना नदी पर चली गईं। उन्हें वापस बुलाने के लिए श्री कृष्ण ने रोते हुए ऐसे हाथ-पैर चलाए कि शकट ही पलट दिया। बाद में यशोदा लौटीं तो शकट को पलटा व टूटा हुआ पाकर बहुत हैरान हुईं। अपने पुत्र के इस संकट से सकुशल बच जाने के उपलक्ष्य में उन्होंने कृष्ण की बलैया लीं।

पूतना वध—इसी प्रकार कृष्ण के रूप, तेज आदि

माखन चोर श्रीकृष्ण

की प्रशंसा सुनकर बकासुर की बहिन पूतना जो कंस की धाई थी–ब्रज में आई। उसने अपने विष सने स्तनों का पान करा कर कृष्ण को मार डालने की चेष्टा की। किन्तु श्री कृष्ण भगवान् का तो कुछ न बिगड़ा। उलटे श्रीकृष्ण पूतना के स्तनपान के साथ उसके प्राणों को भी पी गए। बाद में समस्त जनों को कृष्ण के निकट स्तनकटी विशालकाय राक्षसी का शव पड़ा देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ, किन्तु वे पूतना के वध का कारण नहीं जान पाए।'

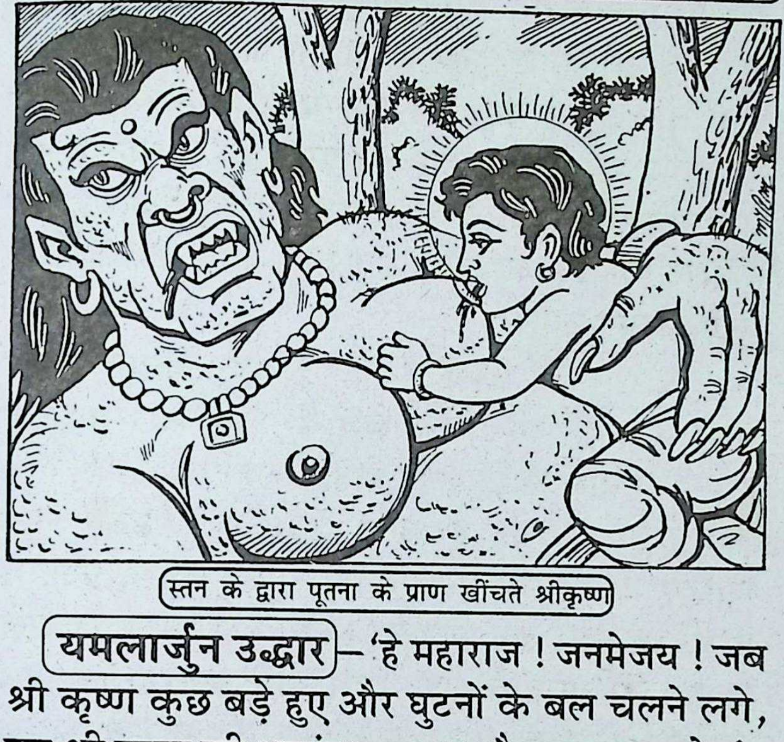

स्तन के द्वारा पूतना के प्राण खींचते श्रीकृष्ण

यमलार्जुन उद्धार— 'हे महाराज ! जनमेजय ! जब श्री कृष्ण कुछ बड़े हुए और घुटनों के बल चलने लगे, तब श्री कृष्ण की अत्यंत चपलता और नटखटता से तंग आकर यशोदा जी ने एक बार उन्हें एक ओखली से बाँध दिया। उदर पर दाम (रस्सी) बाँधे जाने से कृष्ण का एक नाम 'दामोदर' भी हुआ। श्री कृष्ण यशोदा के काम लगते ही ओखली को खींचते हुए बाहर निकल आए, वहाँ यमल व अर्जुन नाम के दो जुड़वाँ वृक्ष साथ-साथ ही उगे थे। श्री कृष्ण उन वृक्षों के बीच में से

उस पार निकल गए किन्तु ओखली दूसरी ओर फंसी रह गई। तब श्री कृष्ण द्वारा थोड़ा-सा जोर लगाने पर वे दोनों वृक्ष उखड़ गए। (वे वास्तव में शापग्रस्त यक्ष थे जो कृष्ण जी द्वारा उद्धार को प्राप्त हुए)। बाद में इन सब अपशकुनों वाली दुर्घटनाओं से आतंकित होकर नन्दराय जी ब्रज को त्याग कर कहीं और चले जाने के लिए सोचने लगे।'

वृंदावन को प्रस्थान—'हे राजन् ! श्रीकृष्ण और बलराम ने भी सोचा कि ब्रज में गायों के लिए अब हरी-भरी घास आदि प्रचुर मात्रा में नहीं रह गई है। गाय ही ग्वालों का धन है। अतः कुछ ऐसा किया जाना चाहिए कि जिससे नन्दराय जी अपनी समस्त प्रजा व गौओं के साथ ब्रज छोड़कर किसी ऐसे स्थान पर चले जाएँ, जहाँ गायों के लिए घास आदि प्रचुरता के साथ उपलब्ध हो सके। ऐसा सोच कर कृष्णजी ने अपनी माया द्वारा अपने शरीर से हजारों बड़े आकार वाले भेड़िए उत्पन्न किए। उन्होंने ब्रज में उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया। इससे आतंकित होकर, आपस में विचार-विमर्श करने के बाद नन्द राय जी ने सभी गोपों के साथ ब्रज छोड़कर वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया।'

कालीय नाग मंथन—'हे कौरण्य ! वृन्दावन में

कालीय नाग का मंथन करते भगवान् श्रीकृष्ण।

कुछ दिन गाय चराते हुए आनन्द से बीते। फिर एक दिन कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर कृष्ण यमुना में उस स्थान पर कूद पड़े जहाँ बड़े भयंकर पाँच मुखवाले कालीय नाग का निवास था। कालीय आँखें लाल कर मुख से आग और विष उगलता हुआ उनकी ओर लपका। कृष्ण तो वहाँ कूदे ही प्रजा को कालीय के आतंक से मुक्त करने के लिए थे। कालीय का विष यमुना के पवित्र जल को प्रदूषित भी करता था, इसीलिए कृष्ण जी ने कालिय मर्दन की योजना बनाई थी। उन्होंने मुक्के मार-मार के

कालीय को लहुलुहान कर दिया और कुश की रस्सी से उसे नाथकर उसके मस्तक पर नाचने लगे। यह देख बाहर कृष्ण के अनिष्ट की आशंका से रोते चिल्लाते गोपों व नन्दबाबा को अत्यन्त आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई। तब कालीय व उसकी पत्नियों द्वारा क्षमा माँगने पर कृष्ण ने कालीय से सपरिवार यमुना नदी को छोड़ देने का वचन लिया और उसे छोड़ दिया। साथ ही यह भी कहा कि उनके कालीय के मस्तक पर नृत्य करने से कालीय के मस्तक पर अंकित हो गए कृष्ण के चरण चिन्हों के कारण उसे गरुड़ से भय नहीं होगा। गरुड़ उन चिन्हों को पहचान कर उसे सदा अभय दिया करेगा। अन्यथा गरुड़ सर्पों का परम शत्रु है।

बलराम द्वारा धेनुकासुर वध—'इसी प्रकार एक बार कृष्ण बलराम के साथ गायों को चराते हुए गोवर्धन पर्वत पर चले गए। वहाँ यमुना के उत्तरी तट पर तालवन में रहने वाले भयानक असुर धेनुकासुर ने बलराम पर आक्रमण कर दिया। धेनुक गधे के रूप में आया था। किन्तु महा बलशाली बलराम ने उसको पैरों से पकड़कर हवा में घुमाया और इतनी ज़ोर से तमाल वृक्ष पर पटका कि धेनुकासुर की सब हड्डियाँ चूर्ण हो गईं। इस प्रक्रिया में वृक्ष से गिरे फलों को खाकर

बलराम व कृष्ण ने अपनी भूख मिटाई। बाद में बलराम ने उस धेनुक स्वर के अनुयायी अन्य असुर गर्दभों को भी इस प्रकार पटक-पटक कर मार डाला।'

प्रलम्बासुर वध—'हे राजन् ! एक बार वटवृक्ष के नीचे जब कृष्ण, बलराम व अन्य ग्वालों के साथ खेल रहे थे, तब प्रलम्ब नामक एक दैत्य छद्म वेश में ग्वाले का रूप बनाकर उनके खेल में शामिल हो गया। वह इस अवसर की ताक में था कि बलराम या कृष्ण को मार डाले। बलराम द्वारा खेल में पराजित हुए प्रलम्ब को खेल के नियमानुसार बलराम को अपनी कमर पर लाद कर वटवृक्ष तक लाना था, किन्तु वह उन्हें विपरीत दिशा में लेकर तेजी से भागा। और अपने अतिविशाल वास्तविक रूप में आ गया। तब कृष्ण के कहने पर पराक्रमी बलराम ने अपनी वज्र मुष्ठि से उसका सिर तोड़ दिया।'

कृष्ण का गोवर्धन धारण कर इन्द्र का गर्व चूर करना—'हे राजन् ! श्रीकृष्ण ने केवल असुरों को ही नष्ट कर प्रजा को सुरक्षा व अभय नहीं दिलाया बल्कि गर्व में अंधे हो गए देवराज इन्द्र का भी मान भंग किया। वर्षा ऋतु बीत जाने पर जब समस्त ग्वाले इन्द्रोत्सव मनाने की तैयारी कर रहे थे, तब कृष्ण ने

कहा कि ग्वालों का धन तो गौ है। अतः गौओं को प्रसन्न करो, गौओं की पूजा करो। इन्द्र की नहीं। क्योंकि ब्राह्मण मंत्र यज्ञ आहूतियों द्वारा करते हैं, यह उनका कर्म है, किन्तु कृषक हल की नोक द्वारा कृषि यज्ञ करते हैं। यह उनका कर्म है। हम ग्वालों के देवता तो गौ और उनके चरने का स्थान ये पर्वत है अतः हमें गिरी यज्ञ करना चाहिए, ना कि इन्द्र यज्ञ।

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कृषकाः।
गिरीयज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्मागिरिर्वने ॥

'तब अपने नेता कृष्ण की बात मानकर गोपों ने ऐसा ही किया। इससे देवराज इन्द्र कुपित हो गए। उन्होंने मेघों को वृन्दावन में भयानक, अविरल और मूसलाधार वर्षा की आज्ञा दे दी। तब अति भयानक वर्षा और आँधी तूफान में समस्त गोपों तथा गायों को कष्ट में देख श्री कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को ही उखाड़ कर अपने बाएँ हाथ की कनिष्का उँगली पर धारण किया और सब को उस पर्वत के नीचे शरण व सुरक्षा प्रदान की। कृष्ण के इस पराक्रम को देखकर इन्द्र न केवल लज्जित हुए और उन्हें अपनी भूल का अहसास हुआ, बल्कि उन्हें इस बात की वास्तविकता का भी विश्वास हो गया कि कृष्ण कोई साधारण मनुष्य या मात्र ग्वाले

नहीं हैं, अपितु सर्वेश्वर और सर्वशक्तिमान भगवान् विष्णु के अवतार हैं। तब उन्होंने श्री कृष्ण से क्षमा मांगी और उनका बल का तथा सत्ता का मद दूर हो गया। तब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को पुनः उसके स्थान पर स्थापित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने असुरों का ही विनाश नहीं, बल्कि देवताओं का भी गर्व का नाश किया।'

'हे राजन् ! तब कृष्ण के गिरधारी, गोवर्धनधारी, गोविन्द, गोपाल आदि नाम प्रचलित हुए। इन्द्र ने तब कृष्ण से यह भी वचन लिया कि उसके अंश से उसके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए अर्जुन का वे सदैव मार्गदर्शन करेंगे और उसे संरक्षण देंगे।

अरिष्टासुर वध—वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'एक संध्या को जब कृष्ण खेल रहे थे, तब काले रंग, लाल आँखों, एक सींग और भयंकर रूप वाला विशालकाय अरिष्ट नामक असुर गौओं को भयभीत करने लगा। तब गौएँ शरण के लिए कृष्ण के पास आईं। वह महान असुर भीषण गर्जना करता हुआ कृष्ण का वध करने के लिए झपटा। किन्तु कृष्ण ने उसे मुँह चीरकर मार डाला और उसका सींग उखाड़ कर उसको क्षतविक्षत कर दिया। हे राजन् ! जहाँ एक ओर श्रीकृष्ण भयंकर असुरों का वध कर अपना पराक्रम सिद्ध करते

बकासुर का वध करते भगवान् श्रीकृष्ण

थे, वहीं वे ग्वाल बालों के साथ माखन चुराने, गोपियों के वस्त्र चुराने, उनकी मटकियों को फोड़ डालने, उन्हें सताने आदि की चपलता भी किया करते थे और शृंगार रस पर भी अपना उतना ही अधिकार सिद्ध करने के लिए गोपियों के साथ रास भी रचाया करते थे। आगे उन्होंने बकासुर आदि असुरों को भी मार डाला था।'

'हे राजन् ! ये सभी दैत्य कंस द्वारा भेजे गए थे। एक-एक करके अपने असुरों का वध होता देख कंस कृष्ण के पराक्रम और उत्कर्ष से भयभीत हो उठा। नारद

जी द्वारा वह जान चुका था कि नन्द के घर में रहने वाला कृष्ण ही वास्तव में देवकी का आठवाँ पुत्र है। जिस लड़की को उसने देवकी का आठवां गर्भ समझ कर पटका था, वह वास्तव में यशोदा की पुत्री थी। अब भी वह कन्या विन्ध्याचल पर्वत पर निवास करती है। वसुदेव ने धोखे से अपने पुत्र को नन्द की कन्या से बदल लिया था। तभी से कंस बराबर कृष्ण के वध के प्रयास कर रहा था, किन्तु हर बार वह असफल रहा और कृष्ण की विजय हुई। इस बात से वह अत्यंत त्रस्त और चिंतित हो गया था।'

कंस द्वारा अक्रूर को भेजना—'एक रात कंस ने एक गुप्त मंत्रणा की। दारूक, सत्यक, वैतरण, भोज, विक्रुद, भयेसख, विपृथु, कृतवर्मा, भूरिश्रवा तथा अक्रूर आदि वीर उस मंत्रणा में बुलाए गए थे। कंस ने उनसे कहा, 'हे महावीरो ! आप जैसे मंत्रज्ञों और निपुण धुर्नधारियों के रहते हुए भी शत्रु निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। जिस सरलता से उसने प्रलम्ब आदि असुरों का वध किया है, उससे जान पड़ता है कि वह साधारण ग्वाला नहीं है। अवश्य ही छद्म वेष में विष्णु अथवा इन्द्र है। अतः हे महावीरो, इस विपत्ति के निराकरण का कोई उपाय सोचो।' तब विचार-विमर्श के बाद यह तय

पाया गया कि मथुरा में धनुषयज्ञ का आयोजन किया जाए। उस यज्ञ में नन्द को भी गोपों के साथ आमंत्रित किया जाए। इस प्रकार बहाने से कृष्ण और बलराम को मथुरा बुला लिया जाए। मथुरा में उन दोनों का वध सरलता से किया जा सकेगा। क्योंकि भूमि पर हाथी शक्तिशाली सिद्ध होता है और मकर उसका सामना नहीं कर पाता, किन्तु पानी में मकर हाथी को पछाड़ देता है। अतः अपने क्षेत्र में हर किसी का प्रताप, उत्साह, आत्मविश्वास तथा शक्ति बढ़ी हुई होती है।– यह तय करने के बाद कंस ने अक्रूर को इस आमंत्रण कार्य के लिए चुना। क्योंकि अक्रूर के वसुदेव तथा नन्द से भी मधुर संबंध थे अतः नन्द को या कृष्ण आदि को इस आमंत्रण के विषय में किसी प्रकार का संदेह अक्रूर के कारण नहीं होता। तब अक्रूर राजा की आज्ञा मानकर वहाँ से चल दिये। यद्यपि बहुत से सभासदों ने मन ही मन कंस की इस योजना की निन्दा भी की। किन्तु कंस के भय के कारण कोई भी इस योजना का विरोध नहीं कर पाया। फिर अक्रूर जी स्वयं भी कृष्ण के दर्शनों के लिए उत्सुक थे अतः सहर्ष ही इस यात्रा के लिए तैयार हो गए। इस प्रकार कृष्ण के रूप में कंस ने अपने काल को बुला भेजा।'

केशी दैत्य का वध – 'हे श्रेष्ठ नृप ! अक्रूर मन के वेग से चलने वाले रथ पर मथुरा से रवाना हो गए। पीछे से कंस ने केशी नाम के महाशक्तिशाली असुर को भेज दिया, जिससे वह मार्ग में ही श्रीकृष्ण को मार डाले। केशी ने जाते ही वृंदावन में उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया। तब वृन्दावन वासी आतंकित होकर कृष्ण की शरण में पहुंचे। कृष्ण ने तब केशी को ललकारा। अपने लात तथा मुक्कों से केशी की पिटाई की। केशी

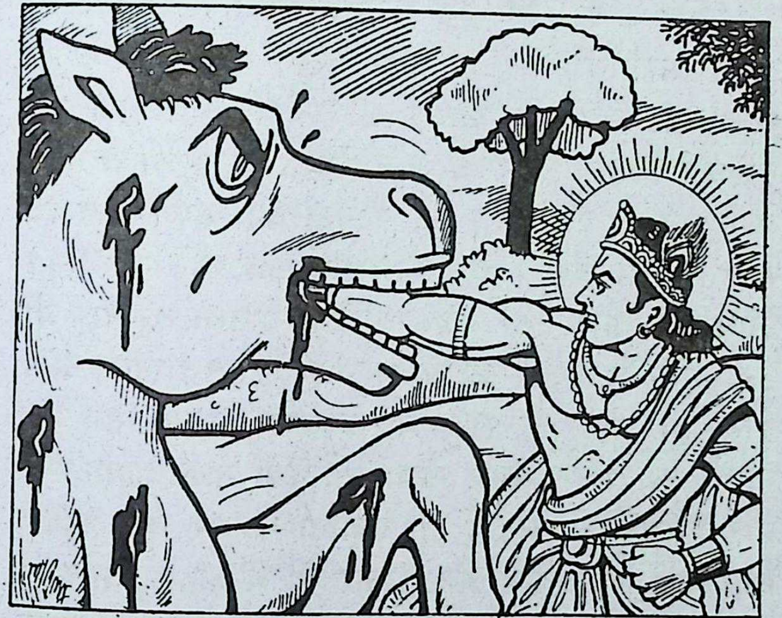

केशी दैत्य का वध करते भगवान श्रीकृष्ण

भयानक अश्व के रूप में युद्ध कर रहा था। अवसर मिलते ही उसने कृष्ण का हाथ काट लेना चाहा, किन्तु कृष्ण ने अपना वही हाथ केशी के मुख में पूरा अंदर घुसेड़ दिया। उसके समस्त दाँत टूट गए और कण्ठ में घुसे हाथ से श्वास अवरुद्ध होकर उसके नेत्र बाहर को उबल पड़े। तब भय और पीड़ा से मूत्र व मल का त्याग करता हुआ वह बलशाली असुर मृत्यु को प्राप्त हो गया।'

'इधर अक्रूर जी नन्द के घर पहुँचे तो कृष्ण के दर्शन करते ही धन्य हो गए। उनका हृदय गद्‌गद्‌ हो गया। श्री कृष्ण के शारीरिक लक्षणों और तेज को देखकर विद्वान अक्रूर ने जान लिया कि कृष्ण वास्तव में विष्णु ही हैं। अक्रूर जी ने नन्द को कृष्ण बलराम सहित कंस के धनुर्यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया और कहा कि देवकी तथा वसुदेव भी उन लोगों से मिलने को व्याकुल हैं। अतः वे लोग कल प्रातः ही अक्रूर के साथ मथुरा चलें। अगले दिन उन लोगों के चलते समय गोपों, गोपियों तथा यशोदा ने उन्हें भावभीनी विदाई दी। यशोदा ने बार-बार कृष्ण को हृदय से लगाया और अक्रूर जी से कहा, कि वहाँ वे कृष्ण का विशेष ध्यान रखें। इस प्रकार वे सब लोग

कंस के लिए भेंट आदि लेकर मथुरा चल दिए।'

कृष्ण द्वारा अक्रूर को दर्शन देना – 'मार्ग में यमुना नदी के तट पर आ चुकने के बाद अक्रूर ने यमुना में स्नान करने तथा पूजा करने की इच्छा प्रकट की। कृष्ण बलराम आदि को वहीं रुक कर प्रतीक्षा करने के लिए कहकर अक्रूर जी यमुना पर नहाने चले गए। यमुना के हृद में गोता लगाने पर रसातल में अक्रूर ने नाग लोग को देखा। वहाँ नीले वस्त्र ओढ़े और पीले आसन पर शयन करते हजार मुख वाले महातेजस्वी शेषनाग को उन्होंने देखा। लाल चंदन से रचे हुए उनके अंग थे और शरीर श्वेत अभ्रक की भांति चमक रहा था। अश्वतर तथा कम्बल नामक नाग उनके बाएँ भाग में स्थित होकर चंवर झुला रहे थे। दाएँ भाग में नाग राज वासुकि अपने कर्कोटक आदि मंत्रियों सहित उनकी सेवा में खड़े थे। हे राजन् ! फिर उन शेषनाग की गोदी में बैठे हुए पीला वस्त्र ओढ़े, श्याम अंगों वाले सच्चिदानन्द भगवान् विष्णु को भी देखा। अक्रूर जी को ऐसा प्रतीत हुआ कि वे शेषनाग व विष्णु को नहीं बलराम व कृष्ण को ही देख रहे हैं। तब उन्होंने जल में से सिर ऊपर निकाल कर देखा कि कृष्ण बलराम तो यमुनातट पर बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पुनः डुबकी

मारी तो कृष्ण बलराम को नागलोग में बैठे देखा।'

'हे राजन् ! प्रभु की ऐसी लीला देखकर चकरा से गए अक्रूर जी तब यमुना से वापस लौटे। तब कृष्ण जी ने उनसे हँसते हुए पूछा– 'हे अक्रूर जी, आपने यमुना ह्रद में ऐसा क्या देखा, जो आप इतने व्याकुल दिखाई पड़ते हैं। मालूम होता है, यमुना के ह्रद में कुछ विशेष बात है। कोई आश्चर्य की वस्तु है। यमुना के भीतर का दृश्य देखने से स्तम्भित और अवाक् हो गए अक्रूर जी को तब मानो होश आया। वे कृष्ण व बलराम को प्रणाम करके बोले–हे देवेश्वर ! चर-अचर लोकों में आपसे बढ़कर देखे जाने योग्य और आश्चर्य क्या हो सकता है। मैंने जो आश्चर्य वहाँ देखा, वह पृथ्वी पर देखना दुर्लभ है, किन्तु तो भी वही आश्चर्य मैं यहाँ भी देखता हूँ। इससे और अधिक आश्चर्य देखने का सामर्थ्य मुझ में नहीं है। आइए, सूर्यास्त होने से पूर्व अब हमें मथुरा पहुँच जाना चाहिए।'

बलराम तथा कृष्ण का कंस की धनुष यज्ञशाला में जाकर धनुष भंग करना–'मथुरा पहुँचने के बाद अक्रूर जी ने कृष्ण से कहा–कंस आपके माता-पिता को पीड़ित व अपमानित करता है। अतः अब रात्रि में वहाँ आप न जाएँ। बल्कि कुछ ऐसा करें, जिसे सुनकर

उनकी आत्मा आनन्दित हो जाए। तब कृष्ण बोले, 'यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम राजमार्ग से पैदल ही घूमते हुए कंस के भवन में जाएँ। इस प्रकार हम मथुरा नगरी का सौंदर्य भी देख लेंगे और कंस के पास भी अभी नहीं पहुँचेंगे—तब अक्रूर जी ने कृष्ण व बलराम को आज्ञा दे दी।'

धोबी माली व कुब्जा से भेंट—'मार्ग में उन्होंने कंस का धोबी देखा। तब कृष्ण ने उससे कंस के वस्त्र पहनने के लिए माँगे। धोबी ने उनको डाँटा। तब कृष्ण ने एक थप्पड़ मारकर उसका मुख फाड़ डाला। उसे मारकर, अपनी इच्छानुसार राजसी वस्त्र धारण करके वे आगे चल दिए। बाग में उन्हें एक माली मिला, कृष्ण द्वारा माला माँगे जाने पर उसने श्रद्धा सहित सभी मालाएँ उनके आगे रखकर कहा—'समस्त मालाएँ आप ही के लिए हैं। आपकी जो पसंद आए ले लें।' तब कृष्ण ने प्रसन्न हो कर माली को वर दिया कि लक्ष्मी सदैव ही उस पर प्रसन्न रहेगी। आगे चलने पर कंस के लिए अनुलेपन बना कर ले जाती हुई एक कुबड़ी स्त्री (कुब्जा) उन्हें मिली। कृष्ण द्वारा अनुलेपन माँगने पर कुब्जा ने उनके सौंदर्य पर मुग्ध होकर उन्हें थोड़ा अनुलेपन लगाने को दिया। तब कृष्ण ने प्रसन्न होकर

अपनी दो उंगलियों से उसका कूबड़ दबाकर ठीक कर दिया। कुब्जा के कूबड़ के ठीक होते ही वह अत्यंत सुंदर दिखने लगी।'

'हे राजन् ! फिर धनुष यज्ञ मण्डप में जाकर कृष्ण ने देवताओं से भी न चढ़ पाने योग्य और दैत्यों द्वारा पूजित, लौह स्तम्भ की भांति वह विशाल धनुष उठाकर अपनी उंगलियों पर नचाया और उसकी प्रत्यंचा चढ़ाते समय उसे तोड़ डाला। धनुष के टूटने के भीषण शब्द से पूरा क्षेत्र काँप उठा। तब घबराए हुए धनुष रक्षक ने कंस को यह समाचार दिया। उसने कहा कि 'नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किए हुए, कामदेवों को भी मात करने वाले दो रूपवान, बलशाली और तेजस्वी युवक यज्ञ शाला में आए, उनमें से एक ने यज्ञ धनुष को खेल खेल में उठाकर तोड़ डाला। जब तक हम लोग इस आश्चर्य से उबरते, दोनों भाग खड़े हुए। मैं नहीं जान सका कि वे दोनों कौन थे ?' कंस समझ गया कि ये दोनों प्रतापी बालक बलराम और कृष्ण ही हैं। अक्रूर के साथ वे दोनों मथुरा आ पहुँचे हैं, किन्तु अति विशाल और सुदृढ़ धनुष के इस प्रकार टूट जाने के समाचार से महाबली कंस का कलेजा काँप उठा। इस प्रकार कृष्ण ने इन कर्मों से वसुदेव को आनन्द पहुँचाया और कंस

को आतंकित कर दिया। क्योंकि युद्ध से पूर्व यदि शत्रु का विश्वास खंडित कर दिया जाए और उसे आतंकित कर दिया जाए तो उसे जीतना सरल हो जाता है।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'तब कंस ने प्रातः काल होने वाले महोत्सव में कृष्ण व बलराम का वध करने के लिए अपने दो अति बलवान और पराक्रमी पहलवानों चाणूर और मुष्टिक को समझाया, कि वे उन्हें बालक समझ कर दया न करें, बल्कि अत्यंत खतरनाक समझ कर तुरंत ही मार डालें। फिर कुवलयापीड़ नामक मतवाले और अति भयंकर हाथी के महावत को बुलाकर आदेश दिया कि वह अपने हाथी को मुख्य द्वार के निकट रखे और कृष्ण के रंगभूमि में प्रवेश करते समय हाथी को अंकुश द्वारा कुद्ध और प्रेरित कर कृष्ण के ऊपर उकसा दे। ताकि वह हाथी कृष्ण को रौंदकर मार डाले। हे राजन् ! तब महावत ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि कृष्ण आखिर कंस का सगा भाँजा है। अतः उसकी हत्या क्या उचित होगी ? कंस ने तब बताया कि कृष्ण उसका सगा भाँजा नहीं है। क्योंकि कंस उग्रसेन का पुत्र नहीं है तब कंस ने उसे वास्तविकता बताई।'

कंस के जन्म से पूर्व की कथा—कंस ने कहा,

'यह बात मुझे खुद देवर्षि नारद ने बताई थी कि 'शत्रु शत्रु होता है, उसका नाश ही कर देना चाहिए। अपने पराए का भेद विचार कर शत्रु को छोड़ नहीं देना चाहिए। और फिर कृष्ण तो तुम्हारा कोई सगा भी नहीं है। तुम्हारे पिता उग्रसेन नहीं महाबलि द्रुमिल हैं। वे तुम्हारी माता पर आसक्त हो गए थे। सौभपति दानव द्रमिल ने तब रूप को बदलकर उग्रसेन का भेस बनाकर तुम्हारी माता से रमण किया। बाद में तुम्हारी माता को जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ तब उसने द्रुमिल को बहुत प्रकार से धिक्कारा। द्रुमिल ने तब हँसते हुए कहा-देवी ! तुम्हें इस रमण के परिणाम स्वरूप कंस नामक महाबली पुत्र उत्पन्न होगा। कई असुर उसकी सेवा में रहेंगे और वह बड़ा भारी सम्राट होगा।' तब तुम्हारी माता ने क्रुद्ध होकर कहा, 'हे पापी ! मेरे पति के वंश में ईश्वर अवतार लेंगे-तेरे द्वारा उत्पन्न उस महाबली पुत्र कंस को उसके असुरों सहित मार डालेंगे।' अतः मैं उग्रसेन का नहीं द्रुमिल का पुत्र हूँ और यह कृष्ण ही मुझे मार डालने के लिए उत्पन्न हुआ अवतार है। यह बात मुझसे नारद जी ने कही थी। इसलिए तुम इस विषय में विचार न करो। मेरे काल के रूप में जन्मने वाले उस कृष्ण को अपने पागल और महाबलवान

हाथी के पैरों तले कुचलवा कर मार डालो, अन्यथा मेरे प्राणों को संकट बना रहेगा।'—इस प्रकार हे राजन् ! कंस ने अपनी ओर से स्वयं की सुरक्षा और कृष्ण के वध के समस्त प्रबन्ध कर दिए।'

'किन्तु हे राजन् ! उन सर्वशक्तिमान प्रभु का ब्रह्माण्ड के शक्तिशाली से शक्तिशाली असुर, दैत्य और दानव भी कुछ बिगाड़ नहीं सके, तो भला एक पागल हाथी या दो पहलवान उनका क्या बिगाड़ सकते थे। पापी कंस के पापों का घड़ा भर चुका था। उसका अंत तो कृष्ण के हाथों होना निश्चित ही हो चुका था। और वही हुआ भी।'

कुवलयापीड़ हाथी तथा मुष्टिक व चाणूर का वध—'हे राजन् ! प्रातःकाल श्रीकृष्णा बलराम सहित बहुत अच्छी तरह से सजाई गई और बहुत भीड़ से भरी रंगभूमि में पहुँचे। महावत ने कंस के आदेशानुसार कुवलयापीड़ नामक उस मदमस्त हाथी को उन दोनों पर हूल दिया। तब कृष्ण ने हाथी को सूँड से पकड़ कर उसे मरोड़कर घुमाया और भूमि पर पटक दिया। उसके दोनों दाँत उखाड़ कर उन्हीं दाँतों से मार-मार कर उसका कचूमर निकाल दिया। हाथी के महावत को भी मार डाला। बलराम ने हाथी की पूँछ पकड़कर घसीटते

हुए उसे जान से मार दिया। तब कुवलयापीड़ के दाँतों के साथ उन दोनों ने सिंहों के समान अकड़ते हुए रंगभूमि में प्रवेश किया। प्रजाजनों ने तालियों के साथ उन दोनों का स्वागत किया। कुवलयापीड़ से बच गए उन दोनों का जनता द्वारा स्वागत किए जाते देख कर कंस को बहुत बुरा लगा। तब उसने क्रुद्ध होकर चाणूर को कृष्ण के साथ और मुष्टिक को बलराम के साथ द्वन्द्व युद्ध करने का आदेश दिया। तब सभा में उपस्थित कुछ यादवों ने इस का विरोध करते हुए कहा कि यह मल्ल युद्ध की जोड़ी अनमेल है और इसमें द्वन्द्व युद्ध का आदेश देना ठीक नहीं है। किन्तु कंस ने किसी की नहीं सुनी।'

'मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ, जो शीघ्र ही द्वन्द्व युद्ध में बदल गया और अन्ततः मुष्टिक युद्ध में पराजित हुआ। चाणूर को बहुत खेल खिलाकर कृष्ण ने थकाकर चूरकर दिया। तब एक ही भरपूर मुक्के से उसका मस्तक फोड़ कर उसका वध कर दिया। तब कृष्ण तोशल नामक एक अन्य मल्ल से उलझ गए। उधर बलराम ने भी मुष्टिक को अधमरा कर हवा में घुमा कर पटका और मार डाला। तब कृष्ण ने तोशल के पैर पकड़ कर उसे भी हवा में घुमाकर भूमि पर पटक दिया

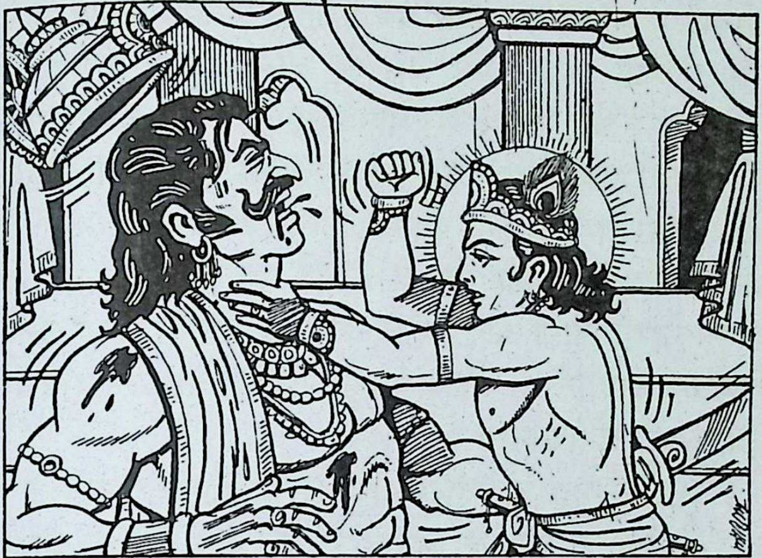

श्रीकृष्ण द्वारा कंस का वध

और उसका भी वध कर दिया।'

कंस वध –'हे राजन् ! महान बलशाली मल्लों चाणूर, मुष्टिक और तोशल को मरते देख शेष पहलवान दुम दबा कर भाग खड़े हुए। नन्द अन्य गोपों के साथ स्तब्ध होकर देखते रह गए। वसुदेव की आनन्दातिरेक से आँखें छलछला आईं और कंस के पसीने छूटने लगे। उसने घबराकर अपने सैनिकों को कृष्ण बलराम को नन्द तथा वसुदेव सहित बन्दी बनाने की आज्ञा दी। यह सुनकर वसुदेव तथा नन्द के अपमान से क्रुद्ध होकर

श्रीकृष्ण उछल कर मंच पर आ पहुँचे और कंस का मुकुट गिरा कर उसके सिर के बाल पकड़ कर उसे भूमि पर पटक दिया। उस महाबलशाली कंस के गिरने से भूमि में गड्ढा हो गया। तब श्रीकृष्ण ने उसे बालों से पकड़ कर घसीटा और उसकी छाती पर चढ़कर मुक्के बरसा कर कंस को मुँह से रुधिर उगलवाते हुए मार डाला। इसी बीच बलराम ने कंस के उन सैनिकों को ठिकाने लगा दिया, जो कंस की आज्ञा मान कर वसुदेव आदि को बंदी बनाने आए थे।'

उग्रसेन का राज्याभिषेक– 'हे कौरण्य ! कंस के वध हो जाने पर शोक संतप्त उग्रसेन वहाँ पहुँचे और रोते हुए कृष्ण से इस प्रकार बोले– 'हे वत्स ! मेरे पुत्र को मारकर तुमने अपनी क्रोधाग्नि को शीतल कर लिया। यश और सम्मान प्राप्त कर लिया। शक्ति का भी प्रदर्शन कर लिया और यदुवंश की रक्षा भी कर ली। अब तुम्हीं यादवों के नायक हो, इस राज्य को संभालो। मैं कंस का अंतिम संस्कार करके अब पत्नियों सहित संयास लूँगा। कृपाकर मेरे कुमति पुत्र कंस को सद्गति प्रदान करो। तब श्रीकृष्ण विनीत स्वर में बोले– 'हे तात! आपने समय के अनुसार उचित बात कही है, किन्तु मनुष्य जीवन में अपने ही कर्मों का फल भोगता

है। उसकी मृत्यु का समय, तरीका तथा कारण निश्चित होते हैं। अतः कंस के वध को आप विधि का विधान ही समझें (मेरे प्रति मन में कोई दुर्भाव न आने दें) और हे तात् ! लोककल्याण के निमित्त मैंने कंस का वध किया है, राज्य प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं। मैं तो पुनः गायों को चराने के लिए लौट जाऊंगा। यह राज्य आप ही का है, कृपा कर आप ही इसे संभालें। यही मेरी इच्छा है। इस प्रकार कृष्ण ने उग्रसेन को सांत्वना दी। फिर उनका राज्याभिषेक कर कंस का अंतिम संस्कार करवाया और यमुनातट पर जलाञ्जली दी।—इस प्रकार हे राजन् ! बालकाल में कृष्ण ने अनेक अद्‌भुत लीलाएँ कीं जो मैंने अति संक्षेप में तुमसे कहीं। अब कृष्ण की युवावस्था के चरित्र को भी कहता हूँ। ध्यानपूर्वक सुनो।'

पांचजन्य शंख की प्राप्ति

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, ' हे राजन् ! कंस वध के पश्चात् बलराम व कृष्ण काशी में उत्पन्न अवन्तिका पुरी वासी ऋषि संदीपन के पास धनुर्वेद सीखने के लिए गए। श्रवण मात्र से ६४ दिनों में ही कृष्ण व बलराम ने सम्पूर्ण अंगों सहित समस्त वेदों को जान

लिया। तथा अल्पकाल में ही धनुर्वेद में पारंगत हो गए। संदीपन जी भी उनकी ऐसी प्रतिभा देख दंग रह गए। तब कृष्ण ने उनसे दक्षिणा माँगनें के लिए कहा। हे राजन् ! कृष्ण बलराम की अद्वितीय प्रतिभा, ग्राह्य क्षमता तथा अन्य लक्षणों के आधार पर विद्वान् ऋषि संदीपन जान गए थे कि वे साधारण मनुष्य नहीं हैं। अतः उन्होंने प्रभास तीर्थ की यात्रा के समय समुद्र में विशाल मत्स्य द्वारा मार दिए गए अपने पुत्र को दक्षिणा में वापस मांगा। –वे जानते थे कि श्रीकृष्ण के प्रभाव और प्रताप को देखते हुए ऐसी दक्षिणा की माँग कोई अनुचित नहीं थी, वे सरलता पूर्वक ऐसा कर सकते थे।'

'हे राजन् ! तब बलराम की सहमति से कृष्ण जी समुद्र में प्रविष्ट हो गए। तब समुद्र ने मूर्तिमान होकर उन्हें प्रणाम किया और उनके पूछने पर उसने बताया कि संदीपन जी के पुत्र को पंचजन नामक दैत्य महान मत्स्य का रूपधारण कर निगल गया था। तब कृष्ण ने उस पंचजन दैत्य को ललकार कर मार डाला। और उससे ही पांचजन्य नामक शंख को ग्रहण किया। पंचजन के उदर से संदीपन के पुत्र के न मिलने पर कृष्ण ने यमपुरी में जाकर यमराज से उसे वापस माँगा। यमराज के अस्वीकार करने पर घोर युद्ध कर उन्होंने

यम को पराजित किया और गुरु पुत्र को जीवित अवस्था में पुनः प्राप्त किया। इस प्रकार उन्होंने गुरु दक्षिणा दी।'

मथुरा पर जरासंध का आक्रमण

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे राजन् ! मोटे नितम्बों और मोटे स्तनों वाली अस्ति और प्राप्ति नामक दो कन्याएँ मगध नरेश जरासंध की पुत्रियाँ थीं। ये दोनों कंस को ब्याही गई थीं। उनके द्वारा जरासंध को जब अपने दामाद (कंस) के वध की सूचना मिली तो वह महाप्रतापी और महान धर्नुधर राजा–कारुष, दंतवक्र, शिशुपाल, कलिंग राज, महाबली पौण्ड्र, सांकृति, केशिक, भीष्मक तथा भीष्मक का पुत्र रुक्मी, काशी राज, त्रिगर्तनरेश, श्रुतपर्वा, क्रश, अंशुमान्, वंगराज, अंगनरेश, कोशलाधिपति, मिथिलानरेश, शाल्व, सौवीर नरेश, भगदत्त, शैण्य, दरद, नग्नजित्, तथा दुर्योधन आदि महावीरों के साथ मथुरा पर चढ़ दौड़ा। जरासंध के प्रताप के कारण ही कंस उग्रसेन को बन्दी बनाकर मनमानी किया करता था और यादवों का अपमान किया करता था।'

'हे राजन् ! तब यादवों और जरासंध की विशाल

सेना में घोर संग्राम हुआ। अर्जुन को रण में चुनौती देने में समर्थ रुक्मी से श्रीकृष्ण, रुक्मी के पिता भीष्मक से उग्रसेन, व्रथस्थ से वासुदेव, बभ्रू से कौशिक चेदीराज से गद तथा जरासंध से बलराम आदि भिड़ गए। कृष्ण ने रुक्मणी के सम्बन्ध का विचार करते हुए रुक्मी का वध तो नहीं किया, मगर उसको परास्त अवश्य किया। उस महासंग्राम में जब सभी महारथी एक से बढ़कर एक सिद्ध हो रहे थे, एक समय महाबली जरासंध ने बलराम के रथ के घोड़ों को गदा द्वारा मार डाला। तब शेषावतार बलराम ने अति क्रुद्ध होकर अपना गदा छोड़कर मूसल धारण कर लिया। मूसल और हल उनके प्रिय शस्त्र थे। अत्यंत कुपित होने पर शत्रु का सर्वनाश करने के लिए वे उन्हें ही धारण करते थे। तब आकाशवाणी हुई कि जरासंध की मृत्यु का अभी समय नहीं आया है और उसका वध बलराम जी के हाथों नहीं होना है। अतः बलराम ने अपने अमोघ शस्त्र मूसल का त्याग कर दिया। हे राजन् ! तुम जानते ही हो, गदायुद्ध में बलराम और जरासंध दोनों ही परम आचार्य माने जाते थे।'

'हे क्षत्रिय श्रेष्ठ ! दोनों पक्षों द्वारा जी जान से लड़े जाने पर भी उस युद्ध का निर्णय नहीं हुआ अतः ऊबकर जरासंध वापस लौट गया। नई शक्ति एकत्र कर

पुनः बीस अक्षौहणी सेना के साथ जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण किया, किन्तु कृष्ण और बलराम के कारण वह यदुवंशियों को परास्त न कर पाने के कारण थक हारकर फिर वापस लौट गया। इस प्रकार पुनः शक्ति संचय करके जरासंध ने १७ बार मथुरा पर आक्रमण किया और प्रत्येक बार वह २० अक्षौहिणी सेना के साथ आया, किन्तु न तो वह यादवों को परास्त कर पाया न ही जरासंध का वध हो सका। अतः हर बार युद्ध अनिर्णित ही रहा। यादवों ने जरासंध के हरबार थकहार कर लौट जाने पर भी अपनी विजय नहीं जानी, क्योंकि जरासंध महाबलशाली, महाप्रतापी, महापराक्रमी, महावीर और दुर्जेय था। जब तक वह मर न जाता तब तक यादवों को निश्ंचितता प्राप्त नहीं होती। दूसरे जरासंध के प्रताप के कारण बहुत से महारथी सम्राट सहर्ष अथवा विवशता से उसका साथ देते थे अतः उसे पुनः सैन्यशक्ति संगठित करने में अधिक समय नहीं लगता था। एक बार थक हार कर लौट जाने के बाद वह जल्दी ही पुनः नई सेनाओं के साथ मथुरा पर चढ़ आता था। इसलिए उसका लौट जाना निर्णायक न होने से यादवों के लिए विजय नहीं था।'

कालयवन का वध

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, हे राजन् ! तब उस हठी और महाबली जरासंध ने अठारहवीं बार दलबल सहित पुनः आक्रमण किया। तब यादवों ने एक मंत्रणा की। नीति शास्त्र में प्रवीण विकद्रु ने उग्रसेन और कृष्ण आदि से कहा, 'वृष्णि और अंधक वंश में गुरु महर्षि गार्ग्य पत्नी के होते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। अतः उनकी कोई संतान नहीं थी। इस कारण उनके साले ने एक बार भरी सभा में 'नपुंसक' कहकर उनका अपमान किया। तब अति बलवान और अतितेजस्वी संतान की प्राप्ति की इच्छा से गार्ग्य ने लौह चूर्ण खाकर ही अजितञ्जय नगर में १२ वर्षों तक शंकर भगवान् का तप कर उन्हें प्रसन्न किया। तब शिव शंकर ने उन्हें वरदान दिया कि तुम्हें शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा के अनुसार वृष्णी व अंधक वंशीय यादवों पर विजय प्राप्त करने वाला महापराक्रमी पुत्र प्राप्त होगा।'

विकद्रू ने आगे कहा, 'यवन राज को जब यह समाचार मिला तो उसने गार्ग्य ऋषि को अपने अन्तः पुर में ही रख लिया। क्योंकि उसकी भी कोई संतान नहीं थी, अतः वह चाहता था कि गार्ग्य का वरदानी पुत्र उसी

के कुल में उत्पन्न हो। वहाँ गोपाली नामक अप्सरा के जो शाप वश मानवी बनी हुई थी, गार्ग्य ऋषि से संभोग करने के कारण एक काला किन्तु महाबलवान पुत्र उत्पन्न हुआ, जो 'कालयवन' के नाम से जाना गया। यवनराज की मृत्यु के पश्चात् कालयवन ने सिंहासन संभाला। उसके प्रताप से दबकर–जय, शक, दरद, पारुद, तुषार, खश, पहल, शृंगरा आदि अनेक पर्वतीय शासक उसके अधीन हो गए। तब उस युद्धोन्मादी कालयवन ने एक ब्राह्मण सभा में नारद से पूछा कि उसे किससे युद्ध करना चाहिए। नारद ने कहा कि वृष्णि तथा अंधकवंश में उत्पन्न महावीर ही उसके योग्य हैं। अतः वह बलवान कालयवन भी जरासंध के साथ मथुरा पर चढ़ आया है। अब इस विषय में श्रीकृष्ण ही जो उचित समझें करें, क्योंकि वही हमारे नेता हैं।'

तब कृष्ण बोले, 'नारद जी के कथनानुसार हमारा मथुरा में रहने का समय पूर्ण हो चुका है। कंस वध और जरासंध से १७ बार युद्ध कर उसे लौटा देने के कारण सभी राजागण यहाँ हमसे ईर्ष्या करने लगे हैं–जरासंध की मृत्यु अभी नहीं आई है, न ही विधानानुसार उसे हमारे हाथों मरना है। अतः वह अपने बढ़े हुए प्रताप से निरन्तर युद्ध करके हम सब को पीड़ा देता रहेगा। इससे

हमारी शांति भंग होगी और हमारी शक्ति का भी क्षय होगा। कालयवन भी शिव के वरदान के कारण मेरे या बलराम द्वारा अवध्य है। अतः समझदारी इसी में है कि हम मथुरा छोड़कर समुद्र द्वारा रक्षित द्वारिकापुरी में चले जाएँ। उस अभेद्य नगरी पर जरासंध आक्रमण नहीं कर सकेगा। अतः सब शांतिपूर्वक रह सकेंगे।'

'हे राजन् ! इस प्रकार निश्चिय करके श्रीकृष्ण सब युदवंशियों के साथ मथुरा छोड़कर द्वारिका चले गए। इस कारण उनका एक नाम 'रणछोड़' भी पड़ा। कृष्ण ने अपने दूत के हाथ कालयवन के पास एक मटके में काला विषधर बंद करके भेजा, ताकि वह और भड़क उठे। क्योंकि कृष्ण भले ही उसे स्वयं नहीं मार सकते थे, परन्तु उसका पापों का घड़ा भर चुका था, अतः उसे किसी उपाय द्वारा तो मरवाना था ही। विषधर सर्प को भेजकर कृष्ण ने यह संदेश दिया कि कृष्ण काले नाग की भांति भयंकर है, उससे मत उलझो। तब कालयवन ने क्रुद्ध होकर उस मटके में तीक्ष्ण दांतों वाली बहुत सी चींटियाँ छुड़वा कर यह मटका पुनः कृष्ण के पास भिजवा दिया। चींटियाँ उस नाग को चटकर गईं। कृष्ण ने अपने समस्त वंश बंधुओं को द्वारिका में सुरक्षित कर दिया था। अतः अकेले ही कालयवन के पास पहुँच

गए। कालयवन भड़क कर कृष्ण पर टूटा तो कृष्ण भागने लगे। इस प्रकार उन्होंने अपना रणछोड़ नाम सार्थक किया।'

'विजय के दर्प में डूबे कालयवन ने कृष्ण का पीछा किया। कृष्ण से उकसा कर अपने पीछे भागते हुए उसे उस कंदरा में ले गए–जहाँ महाराजा मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द सोए हुए थे। हे राजन् ! शंकर के वरदान के अनुसार कालयवन वृष्णि तथा अंधक वंश पर विजय पाने वाला और उनके द्वारा अवध्य था अतः कृष्ण बलराम आदि उसके प्राण नहीं ले सकते थे। अतः वह उसे इक्ष्वाकु वंशीय मुचुकुन्द के पास युक्ति से ले गए। पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में मुचुकुन्द देवताओं की ओर लड़ा था। विजयी हो जाने पर वह अत्यंत थक गया था अतः देवताओं द्वारा वर माँगने को कहने पर उस अत्यंत थके हुए मुचुकुन्द ने यही वर माँगा कि वह अब भरपूर विश्राम करने के लिए सोना चाहता है। उसकी निद्रा में जो भी व्यवधान डाले, वह जलकर भस्म हो जाए।'

'हे जनमेजय ! कृष्ण इसी कारण कालयवन को अपने पीछे भगाते हुए उस कंदरा में ले आए थे। उन्होंने अपना पीताम्बर सोए हुए मुचुकुन्द पर डाल दिया और

मुचुकुन्द की क्रोधाग्नि में जलता कालयवन

स्वयं छिप गये। तब कन्दरा में आ पहुँचे कालयवन ने पीताम्बर के धोखे में उस मुचुकुन्द को ही कृष्ण समझकर उसे लात मारी। मुचुकुन्द की निद्रा भंग होते ही उन्होंने क्रोध युक्त दृष्टि कालयवन पर डाली तो वह वहीं भस्म हो गया। तब कृष्ण ने मुचुकुन्द का धन्यवाद किया। मुचुकुन्द ने देखा कि उन्हें सोते-सोते युग व्यतीत हो चुका है। अब पृथ्वी पर छोटे आकारों के राज़्य तथा अल्पवीर्य एवं अल्पपराक्रमी राजाओं का शासन है। अतः पृथ्वी को तब अपने अनुकूल न पाकर उन्होंने तप

करते हुए योग समाधि ले कर स्वर्गलोक को चले जाना ही श्रेष्ठ समझा।'

द्वारिका पुरी की स्थापना—'हे राजन् ! समस्त यादवों को द्वारिका पहुँचा देने पर कृष्ण ने वहाँ शुभ मुहूर्त में पुरी का निर्माण किया। यह कार्य देव शिल्पी विश्वकर्मा के निरीक्षण में हुआ। पुरी निर्माण के लिए भूमि कम पड़ने पर श्रीकृष्ण ने समुद्र को १२ योजन पीछे हट जाने का आदेश दिया। इस प्रकार अत्यंत सुंदर विचित्र और सुरक्षित पुरी का वहाँ निर्माण किया गया। बाद में कुबेर के सेवक निधियों ने स्वामी यक्ष शंख को आदेश देकर कृष्ण ने वहाँ के समस्त निवासियों के घर, धन, वैभव तथा सुविधाओं से पूर्ण कराए। फिर द्वारिका के मध्य स्वर्ग से लाई गई सुधर्मा नामक देव सभा को स्थापित किया गया। महाराज उग्रसेन को द्वारिका का राजा, अन्नाधृष्टि को सेनापति, विकद्रु को मंत्री, काशी नरेश को राजपुरोहित आदि का दायित्व सौंप दिया गया। इसी समय रैवत की पुत्री रेवती से बलराम जी का विवाह हुआ। हे राजन् ! तब वह समुद्र द्वारा घिरी द्वारिका पुरी अत्यंत सुरक्षित तथा वैभव पूर्ण नगरी बन गई।'

अन्य चरित्र—वैशम्पायन जी पुनः बोले, 'हे

महाराज ! श्रीकृष्ण ने बलराम सहित गोमंत पर्वत पर भृगुवंशी परशुराम जी से भी भेंट की थी। वहाँ से करवीर पुर की यात्रा कर शृगाल का वध किया। बलराम को गोमंत पर्वत पर वरुण की पुत्री वारुणी तथा चन्द्रमा की स्त्री कान्ती ने भी वरण किया था। विरोचन द्वारा चुराए गए विष्णु के मुकुट को गरुड़ ने पुनः लाकर कृष्ण के सिर पर स्थापित किया था। महाबली बलराम जी ने सागर की पत्नी यमुना को हल की नोक से खींची गई रेखा द्वारा (निर्दिष्ट मार्ग से खींच कर) आकर्षित कर अपने पास बुला लिया था। श्रीकृष्ण और बलराम के युवावस्था में सैंकड़ों चरित्र हैं। जो विविध लीलाओं से पूर्ण हैं उनका समग्र वर्णन करना तो प्रायः असम्भव सा ही है। अतः मैं तुमसे उनके प्रमुख-प्रमुख चरित्रों को ही अति संक्षेप में कह रहा हूँ। कृष्ण द्वारा परम सुंदरी रुक्मणी का हरण व विवाह की कथा अब तुमसे कहता हूँ, सुनो-

रुक्मणी स्वयंवर व हरण

'हे राजन् ! राजर्षि यादव का विदर्भ नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र था, जिसने विन्ध्याचल के दक्षिण में विदर्भा नगरी का निर्माण किया था। क्रश तथा केशिक आदि

विदर्भ के पुत्र थे। उसी वंश में हिरण्रोमा उत्पन्न हुआ था जो भीष्मक के नाम से भी जाना जाता था। भीष्मक की पुत्री रुक्मणी लक्ष्मी का अवतार थीं और पृथ्वी की परम सुंदरी थीं। रुक्मी भीष्मक का पुत्र और रुक्मणी का भाई था। युद्ध में गाण्डीवधारी अर्जुन को भी चुनौती देने में समर्थ वह महापराक्रमी महारथी था। किन्तु अभिमान में चूर रहता था। रुक्मणी के रूप लावण्य और यौवन की चर्चा सुनकर सभी राजा महाराजा उसे अपनी अंकशायिनी बनाने को उत्सुक थे, किन्तु रुक्मणी कृष्ण पर मुग्ध थीं।

रुक्मी रुक्मणी का विवाह शिशुपाल से ही करना चाहता था। श्रीकृष्ण की बुआ, वसुदेव की बहिन श्रुतश्रुवा से दमघोष का विवाह हुआ था। शिशुपाल उन्हीं का महाबली पुत्र था। दमघोष और जरासंध एक ही वंश में उत्पन्न हुए थे। अतः स्नेह वश जरासंध ने शिशुपाल का पुत्रवत् पालन किया था। जरासंध के दामाद कंस को कृष्ण ने मार डाला था। अतः जरासंध यह बिल्कुल नहीं चाहता था कि रुक्मणी जैसा स्त्री रत्न कृष्ण को प्राप्त हो अथवा वृष्णि या अंधक वंश में ब्याही जाए। अतः कृष्ण को नीचा दिखाने के उद्देश्य से उसने रुक्मी से रुक्मणी का हाथ शिशुपाल के लिए माँगा था। रुक्मी उसके लिए सहर्ष तैयार हो गया था।

रुक्मी के पिता भीष्मक को भी इस रिश्ते से कोई आपत्ति न थी। किन्तु रुक्मणी ने स्पष्ट कह दिया था कि वह कृष्ण से विवाह करेगी।'

'रुक्मणी के स्वयंवर में भीष्मक ने–भूरिश्रवा, शिशुपाल, जरासंध, भगदत्य, शल्य, शाल्व तथा सुवक्य एवं दंतवक्र आदि राजाओं को आमंत्रित किया, किन्तु कृष्ण को नहीं। रुक्मणी ने यह जानकर 'कृष्ण को चुपके से संदेश भेज दिया। रुक्मणी के संदेश पर कृष्ण बलराम आदि यदुवंशियों के साथ कुण्डिनपुर पहुँच गए। और मंदिर से पूजा करके आते समय कृष्ण ने रुक्मणी का अपहरण कर लिया। जरासंध, शिशुपाल आदि कृष्ण द्वारा ऐसी किसी शरारत के प्रति पहले ही से शंकित थे, अतः वे अपनी विशाल सेनाओं सहित स्वयंवर में पहुँचे थे। कृष्ण का मार्ग रोकने का उन्होंने प्रयास किया, किन्तु बलराम ने वृक्ष उखाड़ कर उन्हें पीछे भगा दिया। तब बलराम, युयुधान, अक्रूर, कृतवर्मा, सात्यकि, विपृथु, चक्रदेव, प्रसेन तथा सुदेव आदि महारथी शत्रुओं को रोके रखने के लिए वहीं रुके रहे और कृष्ण रुक्मणी सहित शेष यादवों के साथ द्वारिकापुरी की ओर भाग निकले।'

'बलराम व अन्य यदुवंशियों ने उस युद्ध में जरासंध

आदि के दाँत खट्टे कर दिए। युयुधान और सात्यकि ने मिल कर जरासंध को छः बाणों से घायल किया। दन्तवक्र को अक्रूर ने नौ बाणों से घायल किया। बलराम ने बंगराज को उसके हाथी सहित मार डाला। विपृथु ने शिशुपाल को सात बाणों से बेधा। कृतवर्मा ने पौण्ड्रक के पुत्र को तीन बाणों से बेधा। उन लोगों ने भी इन्हें विभिन्न प्रकार से घायल किया। इस प्रकार वहाँ अति घमासान युद्ध हुआ। अन्त में बलराम और जरासंध परस्पर टकराए। जरासंध ने बलराम को तीन बाण मारे। बलराम ने जरासंध के रथ की ध्वजा काट दी और गदा के प्रहार से उसका रथ तोड़ दिया। इस प्रकार वहाँ देवासुर संग्राम की भांति ही बड़ा विध्वंसक, भयानक और महान युद्ध हुआ।'

'इधर रुक्मी अपनी बहिन के बिना कुण्डिनपुर में न लौटने की प्रतिज्ञा कर अनेक महावीरों के साथ कृष्ण के पीछे लग गया। भागते-भागते और युद्ध भी करते हुए कृष्ण ने उन सबका सामना किया। रुक्मी ने ६४ बाणों से कृष्ण को घायल किया तो कृष्ण ने सत्तर बाणों से उसे घायल करके उसकी ध्वजा व सारथी का सिर काट डाला। तब रुक्मी की प्राण रक्षा के लिए दक्षिण देश के अनेक राजाओं ने कृष्ण को घेर लिया

और उन पर भीषण प्रहार करने लगे, तब कुपित कृष्ण ने अंशुमान् का हृदय विदीर्ण कर दिया। श्रुतपर्वा के घोड़ों को मार डाला, वेणुदारि की भुजा काट उसकी ध्वजा तोड़ दी, क्रश और केशिक को भी घायल कर दिया। रुक्मी ने तीन बाणों से कृष्ण के सारथी दारुक को बेध डाला तब कृष्ण ने रुक्मी का धनुष काट दिया और उसका रथ तोड़ दिया। उसका खड़ग् काटकर उसे मूर्च्छित कर दिया, अन्त में रुक्मणी की प्रार्थना पर रुक्मी को जीवन दान दे दिया। इस प्रकार वह महायुद्ध समाप्त हुआ।'

कृष्ण की पटरानियाँ—'द्वारिका पहुँचकर कृष्ण ने रुक्मणी से विधिवत् पाणिग्रहण किया। रुक्मणी से कृष्ण के दस पुत्र—चारूदेष्ण, सुदेष्ण, प्रद्युम्न, सुबेण, चारूगुप्त, चारूबाहु, चारूविन्द, सुचारु, भद्रचारू तथा चारू हुए और चारूमती नामक एक पुत्री भी हुई। कृष्ण जी की सोलह हजार एक सौ साठ रानियों में जो आठ पटरानियाँ थीं वह—कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, नागनजीति, सत्यभामा, जामदन्ती, सुशीला और रुक्मणी थीं। रुक्मणी सबसे ऊपर थी। कृष्ण के इन सब रानियों से हजारों पुत्र उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार तुमसे रुक्मणी हरण तथा कृष्ण की समस्त रानियों व संतानों के विषय

में भी संक्षेप से कह दिया। अब आगे सुनो।'

वैदर्भी स्वयंवर तथा रुक्मी वध

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'रुक्मी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने में सफल नहीं हो पाया था, अतः वह वापस कुण्डिनपुर नहीं लौटा। विदर्भ देश में ही उसने 'भोजकट' नामक पुर का निर्माण किया और वहीं रहने लगा। कुछ विशेष समय बीतने पर रुक्मी की पुत्री वैदर्भी (शुभांगी) विवाह योग्य हो गई। तो उसने स्वयंवर में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का वरण कर लिया। प्रद्युम्न ने बाद में वैदर्भी से अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न किया। बाद में अनिरुद्ध ने रुक्मी की पौत्री रूक्मावती को विवाह के लिए चुना। यद्यपि रूक्मी का कृष्ण से वैर भाव था, किन्तु अपनी बहिन और बेटी को कृष्ण और उसके बेटे को (विवशता से ही सही) दे देने के कारण और अनिरुद्ध के अत्यंत योग्य होने के कारण तथा अपनी पौत्री का भी अनिरुद्ध के प्रति प्रेम देखकर रुक्मी ने उनके विवाह की विधिवत् अनुमति देकर वैरभाव को समाप्त कर दिया।'

'हे राजन् ! तब कृष्ण बलराम आदि वृष्णियों के साथ अनिरुद्ध को लेकर रूक्मी के पास पहुँचे। शुभतिथि में अनिरुद्ध व रुक्मावती का विवाह सम्पन्न हुआ।

बारातियों की बहुत आवभगत की गई। बाद में चाणूर, अंशुमान, वेणुदार तथा श्रुवा आदि रूक्मी के पक्ष के राजाओं ने समारोह में मनोरंजन के लिए द्यूतक्रीड़ा (जुए) का प्रस्ताव रखा। बलराम द्यूतक्रिया के दक्ष न थे, किन्तु शौकीन जरूर थे। अत: वे सहर्ष मान गए। इस प्रकार सर्वनाश और कलह की जड़ द्यूत-आरम्भ हो गया। सबसे पहले बलराम और रूक्मी की बाजी लगी। रूक्मी बलराम से दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ जीता। पुन: बाजी लगी। रुक्मी इतनी ही मुद्राएँ फिर जीता। रुक्मी बराबर जीतता रहा और द्यूतक्रीड़ा में अनाड़ी बलराम को उकसा कर मोटे-मोटे दाव लगवाता रहा। अन्तत: बलराम ने एक करोड़ का दाव लगाया। रुक्मी वह भी जीत गया। तब वह और उसके साथी विजय और मदिरा की तरंग में बलराम का अपमान करने लगे। युद्ध में अजेय इन श्रीमान जी को द्यूत में मैंने पराजित किया। ये मूसल और गदा ही चलाने में दक्ष हैं, पासे खेलना इनके बस की बात नहीं।' इस प्रकार के उपहास करते हुए वे बलराम को अपमानित करने लगे।'

'हे राजन् ! बलराम ने द्यूतक्रीड़ा के नियमों को ध्यान में रख अपना क्रोध पी लिया और ताव में दस करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का दांव लगाया। संयोग की बात

वह दाव रुक्मी हार गया। तब बलराम ने प्रसन्न होकर कहा कि 'तुम हार गए'। मगर रुक्मी ने बेईमानी करते हुए अपनी हार न मानी। और अड़ गया। उस समय आकशवाणी हुई कि 'धर्मतः विजय बलराम की ही हुई है।' यह सुनकर बलराम भड़क उठे और उन्होंने स्वर्णिम भारी अष्टपद (जिस मेज–बिसात पर जुआ खेलते हैं) को उठाकर रुक्मी के सिर पर दे मारा। जोर-जोर से हँसने वाले कलिंग नरेश जयत्सेन के दाँत तोड़ डाले। स्वर्ण स्तम्भ को उखाड़ कर रुक्मी के पक्ष में तमाशा देखने वाले अन्य लोगों को आतंकित कर दिया। रुक्मणी अपने भाई का वध देखकर रोने लगी। श्रीकृष्ण को भी बहुत खेद हुआ। अपने जिस साले को उन्होंने पत्नी प्रेम के कारण रण में जीवित छोड़ दिया था, उसे ही कपट करने पर बलराम ने द्यूत भवन में अष्टपद द्वारा सिर फोड़ कर मार डाला था। किन्तु मर्यादा वश उन्होंने बलराम को कुछ न कहा और रुक्मणी को सांत्वना देने लगे। इस प्रकार उस बारात में शवयात्रा भी सम्मिलित हो गई। हे राजन् ! सच ही है। बुद्धि को हर लेने वाला, कलह और विनाश को आमंत्रित कर लेने वाला यह द्यूत बड़ा ही दुखदायी होता है।'

वैशम्पायन जी ने कहा, 'इस प्रकार श्रीकृष्ण का

बाल्यावस्था तथा युवावस्था का सब चरित्र मैंने संक्षेप में कहा। अब और जो सुनना चाहते हो, सो कहो।'

जनमेजय ने कहा, 'हे विप्रर्षि ! हे महामुने ! आप मुझपर प्रसन्न हैं तो महाबलशाली बलरामजी के चरित्रों को मुझसे विशेष रूप से कहिए। अब तक विष्णु अवतार श्रीकृष्ण के बहुत से चरित्र आपने कहे, जो अद्‌भुत और अप्रतिम थे। किन्तु शेष अवतार बलराम जी के विषय में बहुत कम कहा। मैंने सुना है कि उन्होंने साठ हजार हाथियों के बलवाले भीमसेन को भी बाहुयुद्ध में एक ही बार में पराजित कर दिया था। जरासंध जैसे महायोद्धा को गदायुद्ध में पराजित करके भी जीवित छोड़ दिया था। और एक बार हस्तिनापुर को ही हल से उठाकर गंगा जी में उलट देने को उद्धत हो गए थे। तभी से यह नगर टेढ़ा (गंगा की ओर झुका हुआ) हो गया है।.हे महामुने ! मुझसे अद्‌भुत कर्मा शेषावतार महाबलवान और गदायुद्ध के प्रकाण्ड आचार्य बलराम जी के अन्य चरित्रों को विशेष रूप से कहिए। उनके विषय में और जानने की मेरी बड़ी इच्छा है।'

शेषावतार बलराम जी के अन्य चरित्र —तब वैशम्पायन जी ने कहा, 'पृथ्वी को अपने एक हजार फनों पर धारण करने वाले शेषनाग जी के अवतार

बलराम महावीर्य और महाबलवान थे। बाल्यकाल में उन्होंने प्रलम्बासुर को एक ही मुक्के से मस्तक फाड़ कर मार डाला था। गर्दभासुर को उसके बाँधवों सहित पैर पकड़ घुमाकर तमालवृक्ष पर दे मारा था। वह सब तुमसे कह ही चुका हूँ। गदायुद्ध में पुराणों तथा इतिहास में दो ही प्रकांड आचार्यों का वर्णन द्वापर युग में मिलता है। उनमें एक महाबली जरासंध था और दूसरे महावीर्य बलराम। तथापि जरासंध को पराजित कर देने पर आकाशवाणी के आदेशानुसार उन्होंने जरासंध को छोड़ दिया था, क्योंकि जरासंध की मृत्यु भीम के हाथों लिखी थी। महाबलशाली और शक्तिशाली भीम के अभिमान को परस्पर मल्लक्रीड़ा के समय खेल खेल में ही बलराम ने चूर्ण किया था। जरासंध के समस्त अनुयायियों को बलराम ने रण में जीता था। वारुणी, कान्ती तथा रेवती आदि सुंदरियाँ उनको अपने पराक्रम के कारण ही प्राप्त हुई थीं। यमुना में स्नान की इच्छा होने पर, मदिरा के नशे में होने के कारण उन्होंने हल की नोक द्वारा यमुना को ही वृंदावन में खींच लिया था। मदिरा और द्यूत का उनको शौक था। द्यूतक्रीड़ा में रुक्मी वध का प्रसंग अभी तुमसे कहा ही है। कंस के अत्यंत बलवान मल्ल मुष्टिक को उन्होंने हवा में घुमाकर

भूमि पर पटक कर मार डाला था।'

हस्तिनापुर को हल से उखाड़ना – 'हे राजन्! कृष्ण का पुत्र साम्ब जो जाम्बवती से उत्पन्न था, दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को हरण करने अकेला ही हस्तिनापुर चला गया था। बहुत पराक्रम दिखाने के बाद भी वह दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुशासन आदि महारथियों के बीच अकेला फँस जाने के कारण पकड़ लिया गया था। तब कृष्ण साम्ब को छुड़ाने के लिए हस्तिनापुर पर

हस्तिनापुर को उखाड़ते बलराम

आक्रमण करने को जाने लगे तो, बलराम उन्हें रोककर अकेले ही साम्ब को छुड़ाने हस्तिनापुर चले गए थे। दुर्योधन उनका प्रिय शिष्य था, अतः वह व्यर्थ का रक्तपात नहीं चाहते थे। किन्तु हस्तिनापुर में जब उनको अपमानित किया जाने लगा तो उन्होंने क्रुद्ध होकर अपने हल को ब्रह्ममन्त्र से अभिमंत्रित किया और हस्तिनापुर की चारदीवारी की नींव में हल डालकर उसे उखाड़ कर गंगा जी में उलट देने लगे। तब भीष्म, द्राण आदि बुजुर्गों के अनुरोध व बीच-बचाव करने पर वे शांत हुए। भयभीत होकर दुर्योधन ने उनसे क्षमा माँगी और सहर्ष साम्ब के साथ अपनी पुत्री लक्ष्मणा को विदा किया।'

द्विविद वानर का वध—'इसी प्रकार प र्वत पर प्रमोद के लिए अपनी स्त्रियों के साथ गए हुए बलराम जब मदिरा पान कर रहे थे तब द्विवित् नामक महापराक्रमी और महाशक्तिशाली वानर वहाँ उत्पात करने लगा था। यह द्विवित् बड़ी-बड़ी शिलाओं को ग्रामों के ऊपर गिराकर उन्हें नष्ट कर देता था। समुद्र के भीतर घुस कर अपनी उछलकूद द्वारा समुद्र को विक्षुब्ध कर देता था। अपने हाथों से समुद्र का जल बाहर उलीचकर निकटवर्ती प्रदेशों में बाढ़ ले आया करता था। उस महाबली

बलराम का द्विविद के साथ युद्ध

दानवाकार द्विविद को इन्हीं बलराम जी ने पेड़ उखाड़कर युद्ध करने के बाद अपनी प्रबल मुष्टियों के प्रहारों से मार डाला था। मूसल उनका अमोघ शस्त्र था। सौनन्द नाम का वह मूसल महाविकराल और तेजस्वी था। हल को भी वे आयुध के रूप में प्रयुक्त करते थे। मूसल और हल जैसी अटपटी वस्तुओं को भी हथियार के रूप में प्रयुक्त करने में समर्थ वे महावीर्य बलराम ही थे। इससे पूर्व न तो इनको कोई हथियार के रूप में प्रयुक्त कर सका है न ही कर पाएगा। यह तुमसे अद्भुत कर्मा

बलराम जी के विशेष चरित्रों को अति संक्षेप में कहा। और क्या जानना चाहते हो, सो पूछो। मैं योग्यतानुसार तुमको संतुष्ट करूँगा।'

नरकासुर वध तथा पारिजात की कथा

राजा जनमेजय बोले, 'हे महर्षि ! बलवान रुक्मी को मार देने के बाद जब कृष्णादि द्वारिका पहुँचे, तब जो हुआ, सो कहिए ।'

वैशम्पायन जी ने कहा, 'नरकासुर नामक दैत्य जो प्राग्ज्योतिषपुर का रहने वाला था। श्रीकृष्ण के कार्यों में विघ्न डालने लगा और द्वारिका वासियों को कष्ट देने लगा। वह भूमि से उत्पन्न असुर था। अत्याचार, बलात्कार, लूटपाट तथा देवद्रोही कार्यों में उसे आनन्द आता था। एक बार तो वह हाथी का रूप बनाकर १४ वर्षीय त्वष्टा की पुत्री को उठा लाया था। पृथ्वी व समुद्र की सम्पदाओं का भी वह हरण करता था। गंधर्वों, मनुष्यों आदि की कन्याएँ और अप्सराएँ जो उसने अपहृत करके प्राग्जोतिष पुर में रखी हुई थीं वे संख्या में सोलह हजार एक सौ थीं। उसने देवमाता अदिति के कुण्डलों का भी हरण किया था, अतः इन्द्र ने कृष्ण से नरकासुर को समाप्त करने की प्रार्थना की। वह वर प्राप्ति के

कारण विष्णु अवतार कृष्ण के अलावा सभी से अवध्य था। तब श्रीकृष्ण सत्यभामा को साथ लेकर गरुड़ पर सवार होकर प्राग्ज्योतिषसुर पहुँचे। नरकासुर पृथ्वी से उत्पन्न था। सत्यभामा भी पृथ्वी के अंश से उत्पन्न थीं, इसीलिए कृष्ण सत्यभामा को अपने साथ ले गए थे।'

कृष्ण के सोलह हजार एक सौ विवाह – 'हे राजन् ! नरकासुर के सहयोगी अनुचरों–हयग्रवि, निसुन्द आदि महाबलशाली राक्षसों ने दलबल के साथ कृष्ण का मार्ग रोकने का प्रयास किया, किन्तु कृष्ण ने शार्ङ्गधनुष के द्वारा उन सब का वध कर दिया। तब नरकासुर क्रोध में धधकता हुआ अपने अनुचरों सहित रण के लिए आया। नरकासुर के साथ कृष्ण का बहुत भयनाक युद्ध हुआ। अंत में श्रीकृष्ण ने अपने अमोघ अस्त्र सुदर्शन चक्र द्वारा नरकासुर का शीष उसके कंधों से उतार लिया। यह नरकासुर भूमि का पुत्र होने से भौमासुर भी कहा जाता था। उसे मारकर कृष्ण ने अदिति के कुण्डल प्राप्त कर इन्द्र को लौटाए और नरकासुर द्वारा अपहृत वे सोलह हजार एक सौ कन्याएँ श्रीकृष्ण की रानियाँ हुईं। इस प्रकार आठ पटरानियों को मिलाकर कृष्ण की कुल सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ हुईं। वे अपने योगबल से एक ही समय में समस्त रानियों से

रमण किया करते थे और उस समय उनकी हर रानी यही सोचती थी कि कृष्ण केवल उसी के पास हैं।'

'हे राजन् ! इन्द्र ने अदिति के कुण्डल पाकर कृतज्ञता ज्ञापन के लिए कृष्ण और सत्यभामा को स्वर्ग में आमंत्रित कर उनका बड़ा सत्कार किया। अदिति ने तब कृष्ण से कहा कि 'तुम्हारी यह पत्नी सत्यभामा सदैव प्रियदर्शनी, सुंदर तथा युवा रहेगी।' इस प्रकार आर्शीवाद प्राप्त कर, स्वर्ग में आनन्द लेकर, वहाँ घूम कर भांति-भांति की अद्भुत वस्तुएँ देखकर कृष्ण तथा सत्यभामा वापस लौटे। उन अदभुत वस्तुओं में नित्यपुष्पों को धारण करने वाला, दिव्य तथा पुण्य गंध के साथ प्रकाशित होने वाला, अति सुंदर पारिजात का वृक्ष भी था। इस पारिजात वृक्ष की कथा भी अत्यंत रोचक है। मैं इसे तुम्हारे लिए कहूँगा। सुनो-

पारिजात वृक्ष की कथा—वैशम्पायन जी ने आगे कहा- 'रुक्मणी से विवाह के बाद रुक्मणी के व्रत के पूजन के लिए कृष्ण सभी रानियों के साथ रैवतक पर्वत पर गए। वहाँ ब्राह्मणों आदि को भोज कराकर, बाँधवों को खिलाकर व्रत सम्पन्न किया। तब स्वर्ग से लाया गया पारिजात का पुष्प रुक्मणी के केशों में लगा दिया। उस पुष्प से रूपमती रुक्मणी की शोभा द्विगुणित हो

गई। तब वहाँ पधारे हुए नारद जी ने कहा–'हे देवी ! तुम्हारे योग्य यही एक पुष्प है। तुम्हारे धारण कर लेने से इस पुष्प की सुंदरता बढ़ गई है। यह पुष्प कभी कुम्हलाता नहीं, दिनोंदिन और खिलता जाता है। यह एक वर्ष तक एक प्रकार की सुगन्ध देता है। इच्छा करने पर ठण्ड व गर्मी भी देता है। सौभाग्य वर्धक है। प्रीति और ऐश्वर्य को देने वाला है। इच्छानुसार रंग तथा आकार परिवर्तित कर सकता है। भूख, प्यास, रोग और वृद्धावस्था को दूर करता है। ग्लानि व कष्ट होने नहीं देता। कृष्ण द्वारा यह पुष्प तुम्हें दिया गया है। अतः तुम उनकी पत्नियों में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो गई हो। तुम्हारा यश अमिट हो गया। सत्राजित् की सुंदरी और मधुर हासिनी पुत्री सत्यभामा, क्षीणकटि वाली रूप सी जाम्बदन्ती तथा कृष्ण की अन्य सभी आकर्षक पत्नियाँ अब तुम्हारे सौभाग्य से ईर्ष्या करने लगेंगी। कृष्ण भी सदैव तुम पर ही अधिक अनुरक्त रहेंगे।'

सत्यभामा का रुष्ट होना–'हे राजन् ! स्त्रियों की बुद्धि होती ही ईर्ष्यालु है। वह विशेष रूप से अपनी सौत से हारना पसंद नहीं करतीं। अतः कृष्ण की शेष रानियों ने तो रुक्मणी के ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होने से उसका यह सम्मान सहन कर लिया, किन्तु सौन्दर्या-

भिमानिनी सत्यभामा इसे सहन न कर सकी उसने अपने पीले वस्त्रों का त्याग कर श्वेतवस्त्र धारण किए और कृष्ण से रुष्ट होकर शृंगार व आभूषणों को त्याग कर कोपभवन में चली गई। तब कृष्ण अपनी प्राण प्रिया को मनाने के लिए सत्यभामा के पास पहुँचे। और पैर के नख से भूमि को कुरेदने वाली, दीर्घ निःश्वास छोड़ने वाली, रूठी हुई अपनी पत्नी को मनाने लगे। तब सत्यभामा ने कहा, 'हे नाथ ! मैं आपकी परम् प्रिया हूँ। आपके अतिरिक्त प्रेम के कारण ही सब विश्व मुझे सौभाग्यवती कहता है। मैं इसी से अपने सौभाग्य पर गर्वित होती थी। किन्तु आज अपनी सौतों के बीच मैं उपहास की पात्र बन गई हूँ। इसका कारण आपके द्वारा रुक्मणी को मान दिया जाना है। आपने श्रेष्ठ पारिजात का पुष्प उसी को दिया है–अब मेरे यहाँ रहने से क्या लाभ ? जीवन को समाप्त करना तो अपराध है, अतः आत्महत्या के विषय में तो सोचा नहीं जा सकता, किन्तु जब आपका मुझ पर प्रेम ही नहीं रहा, तो अब मुझे तप पर जाने (संन्यास लेने) की आज्ञा दीजिए।' इस प्रकार सत्यभामा ने अनेक प्रकार से कृष्ण को उलाहना दिया। तब श्रीकृष्ण मुस्करा कर बोले–

'हे प्राणप्रिये ! हे सुमुखी ! तुम रूठी हुई भी कितनी

सत्यभामा को मनाते श्रीकृष्ण

सुंदर लगती हो। रुक्मणी ने केशों में दिव्यपुष्प पारिजात के लग जाने के बाद भी वह उतनी शोभा नहीं पा रही थी, जितनी तुम अब (बिना श्रृंगार और बिना आभूषणों के ही) पा रही हो। तुम्हारी तुलना रुक्मणी से नहीं हो सकती। और हे प्यारी ! वह पुष्प मुझे नारद जी ने दिया था। उस समय रुक्मणी ही मेरे समीप थी और उसके व्रत का उद्यापन भी था, अतः मैंने पुष्प उसे ही दे दिया। यह मेरा प्रथम अपराध है, जो अनजाने ही में हो गया है। अतः इसको तुम्हें क्षमाकर देना चाहिए।' इस प्रकार

सत्यभामा की प्रशंसा कर रुक्मणी को हेय सिद्ध करते हुए वाक्चतुर श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को मनाया। किन्तु अत्यन्त रुष्ट हुई सौंदर्याभिमानिनी सत्यभामा प्रसन्न न हुई। बोली, 'आप शब्दजाल न फैलाएँ। मैं किस योग्य हूँ, यह तो आपने रुक्मणी को पारिजात का पुष्प देकर सिद्ध कर दिया है। ऐसा अमूल्य उपहार आप उसे ही तो देते जो आपको परम प्रिय हो। अतः आपने रुक्मणी के ही केशों में उसे लगाया है। हे स्वामी ! इस प्रकार आपने सहज ही मुझे मेरी वास्तविकता बता दी। अब इन प्रेमालापों से मेरा हृदय रखने का प्रयास रहने दीजिए। अथवा मेरे लिए भी पारिजात का पुष्प लेकर आइए।'

'हे राजन् ! तब श्रीकृष्ण ने कहा कि वे सत्यभामा के लिए पारिजात का पुष्प क्या पूरा पारिजात का वृक्ष ही ले आएँगे। यह सुनकर सत्यभामा प्रसन्न हो गई और हर्षातिरेक में श्रीकृष्ण के वक्ष से लिपटते हुए बोली, 'हे प्राण नाथ ! यदि आप मेरे लिए सत्य ही पारिजात का वृक्ष ले आएँगे तो मुझे क्रोध ही क्यों रहेगा। मैं रुक्मणी से ही नहीं आपकी समस्त रानियों और भूमंडल की समस्त स्त्रियों से अधिक श्रेष्ठ और सौभाग्यवती सिद्ध हो जाऊँगी। साथ ही इससे यह भी सिद्ध हो जाएगा कि आप मुझसे ही सबसे अधिक प्रेम करते हैं।

किन्तु आपको अपना वचन पूर्ण करना होगा।' तब कृष्ण ने 'तथास्तु' कहा।'

पारिजात के लिए कृष्ण व इन्द्र में युद्ध – वैशम्पायन जी ने आगे कहा–हे महाराज ! तब कृष्ण नारद जी से पारिजात वृक्ष लाने की आज्ञा लेकर अगली प्रातः ही स्वर्गलोक को चले गए। सात्यकि और प्रद्युम्न को उन्होंने अपने साथ लिया। अपने सारथी दारूक को रैवतक पर्वत पर रथ सहित अपनी प्रतीक्षा करने का आदेश दिया और स्वयं सात्यकि व प्रद्युम्न सहित स्वर्ग के देवोधान में चले गए। कृष्ण ने पारिजात वृक्ष उखाड़ कर गरुड़ पर रख लिया। तब पारिजात् मूर्तिमान होकर भयवश काँपने लगा। कृष्ण ने उसको सांत्वना दी। इधर देवोधान के रक्षकों में कृष्ण को तो रोकने का साहस न हुआ, किन्तु बाद में देवराज दण्डित करेंगे इस भय से उन्होंने तुरंत देवराज इन्द्र को यह सूचना दी कि श्रीकृष्ण देवोधान से पारिजात का वृक्ष उखाड़ कर ले जा रहे हैं। इन्द्र यह सूचना मिलते ही क्रोध व दर्प से भरा हुआ ऐरावत पर चढ़कर वहाँ पहुँचा। पीछे इन्द्र पुत्र जयन्त भी वहाँ आ गया।'

'हे राजन् ! तब अमरावती के पूर्वी द्वार पर देवराज इन्द्र के साथ श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ। प्रद्युम्न का जयन्त

से और सात्यकि का इन्द्र के ब्राह्मण मित्र प्रवर से युद्ध हुआ। जो परशुराम का शिष्य था। उस युद्ध में कृष्ण ने एरावत और इन्द्र को घायल किया। प्रद्युम्न ने जयन्त के दाँत खट्टे किए। किन्तु सात्यकि का धनुष प्रवर ने काट गिराया था। ब्राह्मण होने से सात्यकि उस पर शस्त्र उठाना नहीं चाहता था। तब प्रवर ने कहा कि युद्ध क्षेत्र में ब्राह्मण क्षत्रिय कुछ नहीं होता, केवल शत्रु होता है। अतः सात्यकि युद्ध करो। सात्यकि ने तब प्रवर से लोहा लिया, किन्तु वह बुरी तरह आहत हो गया। तब गरुड़ ने वहाँ आकर प्रवर को ऐसा शक्तिशाली धक्का अपने पंख से मारा कि प्रवर दो कोस दूर जाकर गिरा। प्रद्युम्न ने तब कराहते हुए अपने चाचा सात्यकि को संभाला और जयंत प्रवर को अपने रथ में बिठा कर ले गया। कृष्ण ने सात्यकि के शरीर पर हाथ फेरा तो उसका सारा दर्द जाता रहा।'

'हे राजन् ! तब सभी साँस रोककर कृष्ण व इन्द्र का युद्ध देखने लगे। उस युद्ध में गरुड़ ने भी जमकर ऐरावत से लोहा लिया। उसने ऐरावत को स्वर्ग से नीचे गिरा दिया। परन्तु इन्द्र ने अपने हाथी को नहीं छोड़ा और वह भी उसके पीछे स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गया। तब कृष्ण आदि भी पृथ्वी पर आ गए। और वहीं युद्ध होने लगा।

वह परियात्र पर्वत उनके भीषण युद्ध के कारण पृथ्वी में धँसने लगा। तब कृष्ण ने प्रद्युम्न को दारुक के पास रथ लाने भेजा और स्वयं पर्वत के धँसने के कारण इन्द्र के साथ आकाश में युद्ध करने लगे। उठापटक के मध्य वे दोनों फिर से परिपात्र पर्वत पर पहुँचे तो भयभीत होकर परिपात्र (उड़द के ढेर) चौथाई मासा का रूप धारण कर पृथ्वी के भीतर छिप गया। फिर संध्या हो जाने के कारण रातभर के लिए युद्ध रोक दिया गया। तब श्रीकृष्ण ने रात्रि में गंगा का स्मरण किया। गंगा के वहाँ उपस्थित होने पर उसमें स्नानकर गंगाजल तथा बेलपत्रों द्वारा भगवान शिव की स्तुति की–'

शिव स्तोत्र

कृष्ण द्वारा की गई शिव स्तुति :

रुद्रो देवस्तं रुद्रनाद्रावणाच्य
रोरूययाणो द्रावणाच्चातिदेवः ।
भक्तं भक्तानां वत्सलानां वत्सलानां
कीर्त्यायुङक्ष्वेशाद्य प्रभवाभयन्तरेण ॥
ग्रामयाहण्यानांत्व पतिस्त्वं
पशुनां ख्यातो देवः पशुपतिः ।
सर्वकर्मा नान्यस्तवत्तः परमो

देवदेव जगत्पतिः सुरविरारिहन्ता ॥
तस्मादीशो महतामीश्वराणां
भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ।
तस्मा द्धित्वामीश्वरं प्राहुरोशं
सन्तोः विद्वासंः सर्वेशस्त्रार्थ ॥
तज्ज्ञा भूतं यस्माज्जगदत्यन्त
घोर त्वत्तोऽव्यक्त यक्ष राक्षरेश ।
तस्मात्वासुर्भव इत्लवभूतं
सर्वेश्वराणां महतामप्यदारम् ॥
पूज्यो देवः पूज्यसे निव्यदा
वै कांक्षिविर्भरदामोधवीर्य ।
तस्माद्विख्यातौ भगवनान्देवदेवः
सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी ॥
भूमित्रयाणां देव यस्मात्प्रतिष्ठा
पुपर्लोकानां भावनामेयकीर्तिः ।
त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम
तवाप्रमेय त्रिदशेशामाथा ॥
सर्वःशत्रुणां शासनाद प्रेमयस्तथा
भूयः शासनाच्चैश्वरेण ।
सर्वव्यापात्त्विाछस्त्वाच्य सद्भिभः
शब्दस्येशाकः श्रीकारर्काग्रदुतेजः ॥

संसक्ताता नित्यदा यत्करोषि शुभं
भ्रातृव्यान्यद्वप्नेषी: समम्ताव
तस्माद्ददेव: शंकरौऽपभेयस्य
सद्भिद्वर्मज्ञे कथ्यते सर्वनाथ ।
दत: प्रहार: कुलिशेन पूर्व
तवेशान सुराज्ञाऽपिशीर्य कन्टेनैल्यं
तेन ते तत्प्रवृत्त तस्मात्खश
तत्स्वं नीलकण्ठे कल्प: ॥
यल्दिगांके यच्च लोके भगांके:
सर्व सोयत्वं स्थावरं जंगम च ।
प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिन
तत्वविज्ञास्तथा ध्येयामम्बिकांलोधात्रीम् ॥
वेदैर्गीता सा हि तत्वं प्रसूता
यज्ञो दीक्षाणां योगिनां चाति: रूप: ।
नात्यद्भूतंत्वत्समं देव भूत
भव्यं भवदेवाय नास्ति ॥
अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनत:
पुत्रा ब्रह्मणश्चाति वीरा: ।
त्वत: सर्वेदेव देव प्रसूता
एवं सर्वेश: कारणात्मात्वमीज्य: ॥
अर्थात्—आप रुदन करने से (माया रूपी पञ्जर

द्वारा जीव का निरोधन करने से) तथा द्रावण करने से (माया को नष्ट करने से अथवा विश्व का लय करने से) 'रुद्र' नाम से जाने जाते हैं। (रु+द्र=रुद्र-'रु' से 'रुदन' और 'द्र' से 'द्रावण' करने वाला) आप भक्तों के भक्त तथा वात्सल्य रखने वालों के प्रति स्वयं भी वात्सल्य रखने वाले हैं। मैं आपकी शरण लेता हूँ आप मुझे कीर्ति से युक्त कीजिए। हे प्रभु ! आप भोग में आसक्त, विरक्ति रहित (मोहयुक्त) मनुष्यों तथा पशु आदि जीवों के स्वामी होने से 'पशुपति' के नाम से विख्यात हैं। आप सर्वकर्मा के कर्त्ता हैं। आप देवाधिदेव महादेव हैं। आप जगत् के परम स्वामी और देवताओं के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। आप ब्रह्मा आदि ईशों के भी ईश हैं आद्य तथा सबके प्राणदाता हैं। समस्त शास्त्रों के तत्वों को जानने वाले-महाज्ञानी, विद्वान, सुहृद तथा प्रीति को देने वाले हैं। इसीलिए आपको ईश्वर तथा ईश कहते हैं। हे विश्व की बुद्धि के प्रवर्त्तक ! हे समस्त जीवों के स्वामी ! आप ही से यह जगत उत्पन्न तथा आक्रांत होता है। हे अविनाशी ! विद्वान आप को इसलिए 'भव' कहते हैं। ब्रह्मादि महानों पर भी उदारता करने से आपको 'उदार' भी कहते हैं। विदर्भ नगर में मैं जो सम्पूर्ण देवों तथा

प्राणियों से अभिषिक्त हुआ था—वह वास्तव में आप ही थे। अर्थात् आप और मैं अभिन्न हैं। इसीलिए आपको सब लोग महेश्वर और विश्वकर्मा कहते हैं। हे अनुप्रमेय पराक्रमी ! आप देवताओं के भी पूज्य हैं। कल्याण की इच्छा वाले भक्तों को आप निरंतर वर देने वाले हैं। समस्त प्राणियों की आत्मा में आप ही की भावना रहती है। अतः आप भगवान् कहे जाते हैं। हे देवताओं के भी देवता। भूमि, अंतरिक्ष, स्वर्ग अथवा भूत, भविष्य, वर्तमान अथवा सूर्य, वायु, और अग्नि के उत्पत्ति व लय के स्थान आप ही हैं। अतः आपको 'त्र्यम्बक' कहते हैं। राक्षसों के वधकर्त्ता होने से आपका 'शर्व' नाम प्रसिद्ध है। आप अप्रमेय हैं, सबके शासक अर्न्तयामी, सर्वव्यापक, विभु तथा शब्दों के स्वामी 'अक्षर' हैं। हे श्रीकर ! आप सूर्य से भी कहीं अधिक तेजस्वी हैं। संस्क्त भक्तों का कल्याण करने से, शुभ करने से आपको 'शंकर' तथा 'शुभंकर' भी कहते हैं। धर्मज्ञ आपको 'सर्वनाथ' कहते हैं।'

हे ईशान ! हे आदि वीर्य ! आप आशुतोष और भोले हैं। प्राचीन काल में इन्द्र ने आपके कण्ठ पर वज्र का प्रहार किया था, जिससे आपका कण्ठ नीला पड़ गया था, किन्तु क्षमाशील व भोले होने से आपने इन्द्र को

दण्डित नहीं किया, नीले कण्ठ होने से आपका नाम 'नीलकंठ' भी हुआ। आप सर्व समर्थ हैं, अतः आप मेरी रक्षा कीजिए। स्थावर तथा जंगम, चर, अचर सभी प्राणी, लिंग व भग चिन्ह धारण करने वाले आपके व उमा के ही सब रूप हैं। इसी लिए तत्त्वज्ञानियों ने आपको गुणी (पुरुष) तथा ध्यान करने योग्य अम्बिका को 'प्रकृति' कहा है। यही प्रकृति वेदों द्वारा गाई गई है और तत्त्वों की प्रसूता है। यज्ञ की दीक्षा धारण करने वालों के लिए आप यज्ञ स्वरूप तथा योगियों के लिए अतिरूप हैं। आपके समान अद्‌भुत ना कोई हुआ है, ना है, ना होगा। हे देवाधिदेव ! मैं, ब्रह्मा, कपिल, शेषनाग, सनकादिक अथवा इन्द्रादि–सब आप ही के अंश से उत्पन्न हैं। अतः आप सर्वेश हैं। स्वयम्भु हैं। समस्त कारणों के आत्मा हैं अतः आप स्तुति किए जाने योग्य हैं।'

'हे राजन् ! इस प्रकार कृष्ण द्वारा स्तुति किए जाने पर भगवान् शंकर प्रकट हुए और अपना दाहिना हाथ उठाकर कृष्ण से बोले, 'हे सुरोत्तम ! आपको इच्छित प्रयोजन की प्राप्ति होगी। आप मानसिक व्यथा न कर पारिजात ग्रहण करें। आप अजेय तथा अवध्य हैं, मुझसे भी अधिक शूर हैं। हे कृष्ण ! तुम्हारे कहे इस स्तोत्र से

जो कोई भी मेरी स्तुति करेगा वह धर्म लाभ तथा युद्ध में विजय प्राप्त करेगा तथा यश एवं प्रसिद्धि प्राप्त करेगा। और यह स्थान 'विल्वोदकेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध होगा, क्योंकि यहाँ बेलपत्रों से आपने मुझे स्थापित कर अपनी प्रार्थना सिद्ध कर ली है। अतः यह स्थान दर्शनार्थियों का परम कल्याण करने वाला होगा। और हे कृष्ण ! इस पर्वत के नीचे षटपुर नामक दानवों की नगरी है। वहाँ ब्रह्मा के वरदान से देवों द्वारा अवध्य कई बलशाली दैत्य निवास करते हैं। आप इस समय मनुष्य रूप में हैं, अतः उन दैत्यों का भी वध कर प्रजा को अभय दीजिए।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे महाराज ! इस प्रकार शिवजी को प्रसन्न करके श्रीकृष्ण रथ पर चढ़ कर इन्द्र से युद्ध करने के लिए चल पड़े। इन्द्र भी जयन्त के साथ रथ पर चढ़ कर युद्ध करने के लिए आ डटा। दोनों पक्षों में भयानक संग्राम हुआ तब ब्रह्मा जी की प्रेरणा पर कश्यप ऋषि अपनी पत्नी अदिति के साथ युद्ध स्थल पर पहुँचे और बीच बचाव करके युद्ध बंद करवाया। अदिति ने तब श्रीकृष्ण को पारिजात का वृक्ष ले जाने की आज्ञा दे दी और कहा कि जब तक उनको कार्य सिद्धि के लिए आवश्यकता हो तब तक वे

पारिजात को द्वारिका में ही रखें। बाद में उसे पुनः देवोधान नन्दन कानन में लाकर स्थापित कर दें।– इस प्रकार श्रीकृष्ण ने पारिजात वृक्ष को लाकर सत्यभामा को दिया। कृष्ण की इच्छा से वह पारिजात वृक्ष बड़ा छोटा भी हो जाता था। कृष्ण ने विधिवत् पूजा आदि करके वृक्ष को द्वारिका में स्थापित किया। तब सत्यभामा ने मनोकामना पूर्ण हो जाने पर पुण्यकव्रत करने के लिए सोचा। समस्त सामग्रियाँ जुटाने के बाद व्रत के दान के लिए सत्यभामा के कहने पर श्रीकृष्ण ने नारद जी को ध्यान द्वारा आमंत्रित किया।'

सत्यभामा द्वारा कृष्ण को दान करना –'हे राजन्! कृष्ण के स्मरण मात्र से ही नारद वहाँ प्रकट हो गए। सत्यभामा ने उनका विधिवत् व समुचित सत्कार किया। एक हजार गौवें, स्वर्ण का पर्वत, तथा मणियाँ आदि नारद को दान में दीं। नारद जानते थे कि सत्यभामा अभिमानिनी है। उसी के हठ के कारण कृष्ण को पारिजात वृक्ष को हरण करना पड़ा। अतः उन्होंने सत्यभामा के गर्व को तोड़ने के लिए उसके द्वारा दिए गए बहुमूल्य दान से संतुष्ट न होने का अभिनय किया। तब सत्यभामा ने कहा, 'हे देवर्षि ! आप यदि इनसे संतुष्ट नहीं हैं, तो जो भी आपको प्रिय व इच्छित हो,

मुझसे माँग लीजिए। श्रीकृष्ण की पत्नी होने से मुझे कुछ भी दान में देना कठिन नहीं है।' हे राजन् ! सत्यभामा के ऐसा कहने पर नारद ने हँसते हुए कहा, 'देवी ! कहने और करने में बड़ा अंतर होता है। तुम मेरी इच्छित या प्रिय वस्तु मुझे नहीं दे सकोगी।' सत्यभामा ने तब प्रण किया कि नारद जो भी उन से दान में माँगेंगे वह अवश्य देंगी। नारद ने तब कहा, 'हे देवी ! मुझे स्वर्ण और मणियों आदि से क्या प्रयोजन मेरे तो परम प्रिय देवाधिदेव नारायण ही हैं। अतः तुम अपने पति को मुझे दान में दे दो। क्योंकि यही श्रीकृष्ण वास्तव में नारायण हैं। हे राजन् ! इस प्रकार सत्यभामा को वचन बद्ध होने से कृष्ण को दान करना पड़ गया। तब नारद जी परिहास करते हुए बोले, 'हे कृष्ण ! तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें मुझको दान में दिया है। अतः अब तुम मेरी सम्पत्ति हो। मेरे साथ चलो।' तब कृष्ण भी मुस्करा कर दासवत् व्यवहार करते हुए शीष झुकाकर हाथ बाँधकर नारद के पीछे चले। सत्यभामा तब अत्यधिक दुखी हो गई। उसका अहंकार चूर हो गया। उसके नेत्रों में छलक आए प्रायश्चित् के आँसुओं को देख, नारद ने कहा, 'हे कृष्ण ! तुम्हारी प्राणवल्लभा ने पहले तुम को चोर (पारिजात का वृक्ष हरण करने वाला) बनाया और

अब मेरा दास भी बना दिया है। तथापि अब इसे अपनी भूल का अहसास हो गया है। और इसके दिए दान (श्रीकृष्ण) को पाकर मैं अति प्रसन्न हूँ। साथ ही ऐसा अनुभव करता हूँ कि इतना भारी दान मैं संभाल नहीं सकता अतः हे कृष्ण ! अपने मूल्य को चुकाने के लिए तुम मुझे एक सवत्सा कपिला गौ दे दो ताकि कृष्ण मृग चर्म व तिलों से पूर्ण एक स्वर्ण पात्र दे दो।–क्योंकि शंकर भगवान् ने यही दान का निष्क्रय निश्चित किया हुआ है। इस प्रकार निष्क्रय (बदले में उतने ही मूल्य की वस्तु) प्राप्त होने पर मैं आपको स्वतंत्र कर दूँगा।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'इस प्रकार निष्क्रय लेकर नारद जी ने कृष्ण को सत्यभामा को लौटा दिया। सत्यभामा ने नारद व कृष्ण से क्षमा माँगी। तब श्रीकृष्ण ने हँसते हुए नारद जी से वर माँगने को कहा। इस पर नारद जी बोले, 'प्रभो ! मुझे यही वर दें कि आपका स्नेह और आशीष, आपकी कृपा दृष्टि मुझ पर सदैव बनी रहे और मैं तन,मन, वचन से सदैव आप ही का स्मरण करता हुआ आपके प्रसाद से आपके सालोक्य को प्राप्त होऊँ। आप की कृपा से मैं अयोनिज होऊँ और जन्मजन्मांतरों में भी आप ही का परम भक्त ब्राह्मण होऊँ। तब श्रीकृष्ण ने कहा–'हे देवर्षि ! जैसा आप

कहते हैं, वैसा ही होगा।'

पुण्यक व्रत का वर्णन

जनमेजय द्वारा पूछे जाने पर वैशम्पायन जी ने पुण्यक व्रत के विषय में बताते हुए कहा–'हे नर-श्रेष्ठ ! सर्वप्रथम शंकर की प्रिया उमा द्वारा इस पुण्यक व्रत की विधि उत्पन्न हुई। रुक्मणी आदि द्वारा पूछे जाने पर नारद ने पुण्यक व्रत के विषय में उनको जो विस्तार से बताया था, तुम को मैं वही संक्षेप में बता रहा हूँ। यह अत्यंत कल्याणकारी व शुभव्रत है। इसके विषय में मनोयोग से सुनो–'

नारद जी बोले, 'हे निष्पाप सुन्दरी ! हे देवी ! अपनी सौतों सहित इस व्रत के विषय में वह सुनो, जो सोमपुत्री अरुन्धती के पूछने पर उमा ने बताया था। उमा को इस व्रत का उपदेश सर्वज्ञाता शंकर जी ने दिया था। जिस स्त्री का सतीत्व सदा अखण्डित है और धर्माचरण से युक्त है, वही इस व्रत की अधिकारिणी होती है। पुण्यक व्रत पुण्य फल देने वाला है, इसलिए इसको पुण्यक कहा गया है। इस व्रत के लिए स्नान शौचादि से शुद्ध हो पति से आज्ञा लेनी चाहिए। ताँबे के कमंडल में कुश व अक्षत ग्रहण कर सास ससुर अथवा घर के बड़ों

के चरणों में प्रणाम करना चाहिए। गौ के दाहिने सींग को धो कर उस जल का आचमन करना चाहिए। फिर अपने पति को भी आचमन कराकर अपने सिर पर उसे छिड़क लेना चाहिए। इससे तीनों लोकों में स्थित सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का फल मिलता है। तदुपरांत पति के चरणों को धोकर उस जल को ग्रहण करना चाहिए। श्वेतवस्त्र तथा चट्टी-खड़ाऊँ को पहनना चाहिए। रोने से, कलेश से, असत्य से, कपट से अथवा असंयम से व्रत भ्रष्ट हो जाता है।'

'इस व्रत में अंजन, महावर, गंध, तेल, काष्ठ की दातौन, सिर धोना, उबटन लगाना, बैल, ऊँट, गधे, भैंसे आदि निकृष्ट पशुओं से युक्त वाहन में बैठना तथा नग्न स्नान करना वर्जित है। अपनी सामर्थ्य अनुसार इसे एक दिन, एक सप्ताह, एक माह, छः माह अथवा एक वर्ष तक किया जा सकता है। दीर्घावधि के व्रत में साबुन आदि के स्थान पर मिट्टी से शुद्धि करें तथा सप्ताह में एक बार आँवले, हरड़ तथा बेल फल से युक्त जल से सिर धोया जा सकता है। दान, प्रजा, उपवास, कीर्तन तथा सत्संग या स्वाध्याय ही इस व्रत में नियमित रूप से करना चाहिए। ग्यारह साध्वी स्त्रियों को निमंत्रित कर उनके पतियों को उनका निष्क्रय मूल्य

देकर खरीदें और आचार्य को दान करें। बाद में आचार्य को उनका निष्क्रय मूल्य देकर पुनः खरीदें और उनके पतियों को लौटा दें।'

'स्नान आदि के पश्चात् अपने पति को अपने हाथ से काते गए सूत का वस्त्र पहनने को देना चाहिए। यदि ऐसा वस्त्र उपलब्ध न हो तो उसे नवीन श्वेत वस्त्र पहनाकर वस्त्र में अपने हाथ से काता सूत बाँध देना चाहिए। अथवा अपने हाथ का सिला या कढ़ा हुआ वस्त्र उसे पहनने को देना चाहिए। ऐसा करने से पति आपके प्रेम के वश में रहता है। तथा ऐसा करने से पत्नी द्वारा रखे गए व्रत का आधा भाग पति को प्राप्त होता है। व्रत के अंत में शिव पार्वती का पूजन करे उनकी नमक, मधु या स्वर्ण की प्रतिमाएँ दान देनी चाहिएँ। पूजन में दही, दूध, घृत व इर्वा के पुष्पों के साथ उपयोग करना चाहिए। तिल का पात्र, कपिला गौ तथा कृष्ण मृगचर्म भी अवश्य ही दान में देने चाहिएँ।'

'शीशा, मोर के पंख, आसन आदि भी दान में दिए जा सकते हैं। इस व्रत से समस्त इच्छित पदार्थों की प्राप्ति होती है तथा समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। स्त्री अपनी सौतों में अग्रगण्या, सौभाग्यवती व सुंदर रूप वाली हो जाती है। पति उसके वश में रहता है तथा

अपुत्रवती स्त्री को पुत्र की प्राप्ति होती है। धन, सम्पदा, वैभव, ऐश्वर्य तथा सुख प्राप्त होता है। घर में शुभ, शांति व कल्याण होता है। व्रत के समापन में शुद्ध हृदय वाले ब्राह्मण को खीर अवश्य खिलानी चाहिए। तथा इच्छानुसार दक्षिणा व अन्न दान करना चाहिए। दीर्घ व्रत हो तो शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को व्रत की समाप्ति करना अधिक शुभ व प्रभावी होता है।'

'इस प्रकार उमा ने अरुन्धति को पुण्यक व्रत के विषय में बताने के बाद अन्य भी कई स्त्रियों के उपयोगी तथा फलदायी, श्रेष्ठ व्रतों के विधान कहे थे।–मैंने तुम्हारे पूछने पर तुम्हें पुण्यक व्रत का विधान बता दिया है।– जैसा कि नारद ने रुक्मणी आदि कृष्ण की पत्नियों को कहा था। अब और जो पूछना चाहते हो, वह कहो।' वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय से कहा तब जनमेजय ने षटपुर के दैत्यों का वध कृष्ण ने किस प्रकार किया ? इस विषय में जानना चाहा। क्योंकि पुण्यक व्रत के वर्णन में वह बात बीच में ही रह गई थी। तब वैशम्पायन जी ने षटपुर के दैत्यों का कृष्ण द्वारा संहार करने की कथा भी सुनाई।

विष्णु पर्व का पूर्वार्द्ध समाप्त

विष्णु-पर्व (उत्तरार्द्ध)

षटपुर निवासी निकुम्भादि का वध

वैशम्पायन जी बोले, 'हे नृपोत्तम ! त्रिपुरासुर को जब भगवान् शिव ने अग्निवाण से बींधा था, तब त्रिपुर में ६० लाख दानव थे। उनमें से छः लाख भस्म होने से बच गए थे, तब उन्होंने जम्बू द्वीप पर आकर सूर्योन्मुख होकर केवल वायु का ही भक्षण करते हुए एक लाख वर्षों तक ब्रह्मा का कठिन तप किया था। इस प्रकार ब्रह्मा को प्रसन्न कर उन्होंने शिव से अपनी जाति वालों का प्रतिरोध लेने के उद्देश्य से वर माँगा। तब ब्रह्मा ने कहा, 'हे असुरो ! काल के भी काल महाकाल शिव से भला कौन प्रतिशोध ले सकता है। वे विनाश, विध्वंस और मृत्यु के अंतिम व निर्णायक (सर्वोच्च) देवता हैं। इन्द्रादि देवता भी उनसे बिगाड़ कर स्वर्ग में नहीं रह सकते, अतः उन महादेव रुद्र से प्रतिशोध की बात तो सोचना भी व्यर्थ है। ऐसा वर देना मेरे और नारायण के वश से भी बाहर है। तुम कोई और वर माँग लो। तप द्वारा तुमने स्वयं को अधिकारी सिद्ध कर दिया है, अतः

मैं वर देने को बाध्य हूँ। किन्तु जो मेरी सामर्थ्य में नहीं वह मैं तुम्हें कैसे दे सकता हूँ ?'

'तब उन छः लाख असुरों ने यह वरदान माँगा कि वे सभी शिव तथा अन्य देवताओं से अवध्य हों। उनके पृथ्वी के भीतर छः नगर हों, जिनमें वे आवश्यकता व सुविधानुसार आ जा सकें। हे राजन् ! तब ब्रह्मा ने उन्हें ऐसा ही वर दिया, किन्तु साथ ही यह शर्त भी रखी कि वे कभी सद्मार्ग पर चलने वाले ब्राह्मण को कष्ट नहीं देंगे। अन्यथा उनका नाश हो जाएगा, क्योंकि सद्मार्गी ब्राह्मणों पर देवताओं की विशेषकर नारायण की सदा कृपा रहती है। इस प्रकार वे असुर परियात्र पर्वत के नीचे छः नगर बनाकर और ब्रह्मा के वरदान से सुरक्षित होकर रहने लगे। उन्हीं के छः नगर 'षट्पुर' के नाम से जाने जाते हैं। शिवजी ने कृष्ण को उन्हीं षट्पुर वासी दैत्यों के वध करने का निर्देश दिया था।'

'हे राजन् ! याज्ञवल्क्य जी का शिष्य ब्रह्मदत्त नामक एक ब्राह्मण था। उसने वसुदेव का अश्वमेघ यज्ञ कराया था। वह वसुदेव का सहपाठी होने से उनका मित्र भी था। आवर्ता नदी के तट पर उसने यज्ञ व्रत की दीक्षा ली। उस यज्ञ में वसुदेव के साथ याज्ञवल्क्य, सुमन्तु, जाबालि, देवल, जैमिनी तथा धृतिमान् आदि ऋषि भी पधारे। तब

षटपुर वासी दैत्य निकुम्भ आदि वहाँ आकर यज्ञ का भाग, सोमरस आदि के साथ यजमान ब्रह्मदत्त से कन्याओं को भी माँगने लगे। ब्रह्मदत्त आदि का विरोध करने पर उन्होंने यज्ञ मंडप तहस नहस कर दिया और ब्रह्मदत्त की रूपसी कन्याओं का हरण करने लगे। तब वसुदेव ने कृष्ण बलराम एवं गद आदि को बुला भेजा। कृष्ण ने अपने पुत्र प्रद्युम्न को कन्याओं की रक्षा के लिए वहाँ भेजा। प्रद्युम्न ने माया रचित कन्याएँ असुरों को ले जाने दीं और ब्रह्मदत्त की कन्याओं को बचा लिया। दानव मायावी कन्याओं को वास्तविक मानकर षट्पुर को ले गए। यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो गया।'

'ब्रह्मदत्त द्वारा निमंत्रित जरासंध, शिशुपाल, पाण्डव, कौरव, दन्तवक्र, रुक्मी, शकुनि आदि राजा तब वहाँ पहुँचे। युद्ध की आशंका को ध्यान में रख नारद ष्टपुर में गए और निकुम्भ आदि दानवों से बोले, 'अरे मूर्खो ! शक्तिशाली यादवों से वैर लेकर तुम यहाँ मजे में पड़े हो। कृष्ण की ब्रह्मदत्त से मैत्री है। कृष्ण के प्रताप से ही ब्रह्मदत्त को पाँच सौ पत्नियाँ (दो सौ ब्राह्मण, सौ क्षत्रिय, सौ वैश्य और सौ शूद्र) प्राप्त हुईं। प्रत्येक से उसने एक-एक रूपवती कन्या को उत्पन्न किया था। दुर्वासा के वरदान से सभी ६४ कलाओं में दक्ष कामशास्त्र

में प्रवीण, रति में परम सुख देने वाली तथा शरीर से दिव्यगंध छोड़ने वाली हुईं। उनमें से चार सौ तो ब्रह्मदत्त ने यादवों को दे दीं। शेष सौ तुम हर लाए हो। वो भी प्रद्युम्न के छल से मायावी हैं वास्तविक नहीं। इस समय यादवों से वैर रखने वाले अन्य राजा भी पधारे हुए हैं। उनके सहयोग से यादवों को नष्ट करके शेष चार सौ कन्याएँ भी प्राप्त कर लो। रत्नादि के लोभ में वे राजा अवश्य तुम्हारी मदद को तैयार हो जाएँगे, क्योंकि कृष्ण आदि से वे शत्रुता रखते हैं।'

'हे राजन्! नारद द्वारा इस प्रकार उकसाए जाने पर निकुम्भ आदि षट्पुर के दैत्यों ने जरासंध, शिशुपाल आदि आमंत्रित राजाओं को अपने साथ मिलाकर युद्ध छेड़ दिया। केवल पाण्डवों ने उस युद्ध में यादवों के विरुद्ध लड़ने से मना कर दिया। तब यज्ञ स्थल पर ही युद्ध आरम्भ हो गया। पाण्डवों ने कृष्ण की ओर से युद्ध किया। इन्द्र पुत्र जयन्त तथा इन्द्र के मित्र प्रवर ने भी उस युद्ध में कृष्ण के पक्ष से भाग लिया। बलराम, सात्यकि, गद, साम्ब, प्रद्युम्न, भोज, वैतरण, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, निचक्षु, सुदंष्ट्र विपृथु, कृतवर्मा, अनाधृष्टि, सारण, उद्धव, पृथु, दृंष्ट्र तथा पाण्डव कृष्ण की ओर से तथा शेष आमंत्रित राजा (जरासंध, रुक्मी, दन्तवक्र, शिशुपाल,

दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि, भगदत्त, चेदिराज, त्रिगर्तनरेश, शल्य तथा विराट आदि निकुम्भ व अन्य दैत्यों की ओर से भयानक युद्ध करने लगे।'

'प्रद्युम्न ने माया से एक गुफा का निर्माण किया और उस युद्ध में पराजित होने वाले महारथियों को पकड़ कर उसमें बंद करने लगा, गद, सारण, साम्ब व अनिरुद्ध आदि ने मिलकर पहले महारथी कर्ण को पकड़ा। प्रद्युम्न ने उसे गुफा में डाल दिया। फिर क्रमशः गदायुद्ध में प्रवीण दुर्योधन, विराट, द्रुपद, शकुनि, शल्य, नील, विन्द, अनुविन्द, भीष्म, जरासंध तथा धृष्टद्युम्न आदि को पकड़कर गुफा में बंद किया फिर शिशुपाल, भगदत्त, आहृति, रुक्मी आदि शेष राजाओं को पाशों से बाँध लिया। और उन्हें भी गुफा में बंद करके प्रद्युम्न ने अपने महावीर पुत्र अनिरुद्ध को पहरे पर बैठा दिया। तब वे शेष युदवंशियों के साथ निकुम्भ आदि असुरों पर टूट पड़े।'

'असुर तब श्रीकृष्ण, बलराम आदि यादवों से मार खाकर भागने लगे। तब निकुम्भ ने उनको ललकार कर युद्ध के लिए उकसाया। किन्तु वे प्रतापी यादवों के सामने टिक न सके। उनसे प्राण बचाकर वे आकाश की ओर भागते थे जयन्त तथा प्रवर उनकी पिटाई करते

थे। यज्ञशाला की ओर भागते थे तो भीम तथा अर्जुन उनकी धुनाई करते थे, और षट्पुर की ओर भागते थे तो कृष्ण व बलराम उनकी छिताई करते थे। वहीं रहते थे तो प्रद्युम्न, साम्ब, गद आदि उनकी कुटाई करते थे। तब अत्यंत कुपित होकर महाबलशाली निकुम्भ ने प्रवर को अपने परिघ से आहत कर भूमि पर गिरा दिया। जयन्त ने तब क्रुद्ध होकर निकुम्भ को बाणों से बींध डाला। किन्तु घावों की परवाह न करते हुए निकुम्भ ने जयन्त को भी घायल कर दिया। उसने कृतवर्मा, चारूदेष्ण, वैतरण, अनाधृष्टि आदि अनेक महावीर यदुवंशियों को घायल कर, माया से मूर्च्छित किया और एक अंधेरी गुफा में बंद कर दिया। महान धनुर्धर अर्जुन का गाण्डीव भी उसे रोक नहीं पाया। तब अपनी विजय से उत्साहित होता हुआ वह श्रीकृष्ण की ओर उसी प्रकार लपका जैसे अपनी मृत्यु से अनभिज्ञ पतंगा दीपशिखा की ओर खिंचा चला जाता है।'

'हे राजन् ! कृष्ण और निकुम्भ में अत्यंत भीषण युद्ध हुआ। त्रस्त होकर भागता हुआ निकुम्भ उसी गुफा में घुस गया जहाँ उसने कुछ यदुवंशियों को बंदी बना रखा था। तब कृष्ण और उनके पीछे प्रद्युम्न व पांडव आदि भी उसी गुफा में घुस गए।

प्रद्युम्न ने वहाँ बंदी हुए युदवंशियों को स्वतंत्र किया और कृष्ण निकुम्भ के ऊपर चढ़ दौड़े। एक बार फिर गुफा में हृदय व दहला देने वाला महासंग्राम हुआ। अंत में शिव द्वारा कृष्ण के कान में आकाशवाणी करने पर कृष्ण ने निकुम्भ को वज्र के द्वारा 'गर डाला।

तब तक गुफा के बाहर बलराम, गद, सारंग तथा अन्य युदवंशियों ने शेष असुरों को ठिकाने लगा दिया था। इस प्रकार ब्रह्मा के वरदान से रक्षित वे निकुम्भ आदि छः लाख असुर ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण का अपमान करने के कारण नष्ट हो गए। हे जनमेजय ! षट्पुर विनाश का यह प्रसंग पढ़ने या सुनने वाले को अवश्य ही युद्ध में विजय प्राप्त होती है। धनहीन को धन, पुत्र हीन को पुत्र, रोग तथा संकट से ग्रस्त व्यक्ति को स्वास्थ्य तथा अभय लाभ होता है। बन्दी को मुक्ति मिलती है। पुंसवन तथा गर्भाधान में इस प्रसंग को अवश्य पढ़ना चाहिए। श्राद्ध में इसे पढ़ने से पितरों को अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। ऐसा इस प्रसंग का प्रताप कहा गया है।'

अंधकासुर के वध की कथा

अंधकासुर का जन्म—राजा जनमेजय द्वारा अनुरोध

किए जाने पर तब वैशम्पायन जी ने अन्धकासुर के वध की कथा भी सुनाई। वे बोले–विष्णु द्वारा अपने पुत्रों (दैत्यों) के मारे जाने पर दिति ने अपने पति कश्यप को तप द्वारा प्रसन्न किया। तब उनसे देवताओं से अवध्य पुत्र का वरदान माँगा। कश्यप जी बोले, 'हे दाक्षायणि! तुमको ऐसा ही महापराक्रमी पुत्र प्राप्त होगा, किन्तु महादेव शिव मेरे प्रभाव से परे हैं। अतः उनके द्वारा तुम्हारे पुत्र का वध हो सकता है। इसलिए तुम्हारा वह पुत्र शिव का कोई अप्रिय न करे यह सावधानी रखना।' कुछ समय बाद कश्यप जी के वरदानानुसार दिति को अत्यंत पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति हुई। उसके एक हजार हाथ, एक हजार पैर, एक हजार सिर तथा दो हजार नेत्र थे। दो हजार नेत्र होते हुए भी वह गर्व में चूर हो कर अंधों के समान रहता था। अतः उस महावीर का नाम अंधक हुआ। वह अत्यंत शक्तिशाली असुर था।'

'वर के प्रभाव से अवध्य होने से वह स्वयं को अमर मानता हुआ विभिन्न दुष्कर्म करने लगा। हे राजन् शक्ति, पद, प्रतिष्ठा और सफलता प्रायः संभाले नहीं जाते (इन्हें पाकर व्यक्ति मनमानी करने लगता है।) इसी प्रकार अंधकासुर भी लूटपाट, बलात्कार, अपहरण तथा अत्याचार आदि धर्मविरोधी कर्म करने लगा। अन्य

असुरों की मदद से वह त्रैलोक्य विजय का स्वप्न देखने लगा। तब इन्द्र द्वारा अपने पिता कश्यप से प्रार्थना किए जाने पर कश्यप ने अंधकासुर को इस कार्य से रोका। किन्तु अंधक ने अपनी मनमानी बंद न की। उसके अत्याचारों से प्रजा, ऋषि व देवता अत्यंत त्रस्त हो गए। तब बृहस्पति ने देवताओं से कहा कि वह केवल रुद्र द्वारा ही मारा जा सकता है। अतः देवताओं को उन्हीं की शरण में जाना चाहिए। तब देवताओं ने यह कार्य देवर्षि नारद को सौंपा।'

नारद द्वारा अंधक को उकसाना—'हे राजन्! चतुर नारद मंदार पुष्पों की माला धारण कर अंधक के पास गए। जैसा कि वे चाहते थे, अंधक मंदार के पुष्पों की गंध से आकर्षित होकर बोला, 'हे देवर्षि ! इन पुष्पों की सुगंध तो पारिजात के पुष्पों से भी श्रेष्ठ है। आपने इन्हें कहाँ से प्राप्त किया ? मुझसे कहिए। मैं भी इन पुष्पों को प्राप्त करना चाहता हूँ। तब नारद बोले, 'हे असुर श्रेष्ठ ! मन्दराचल पर्वत पर काम्यक नामक उपवन में ये दिव्य पुष्प खिलते हैं। यह पुष्प माँगने पर समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। किन्तु वह क्षेत्र भगवान् शंकर का है। उन्हीं की रचना है। उनके गण सदैव उस उपवन की रक्षा करते रहते हैं। बिना शिव की

आज्ञा के वहाँ कोई नहीं जा सकता। इस पुष्प का वृक्ष मन्दारवृक्ष के नाम से जाना जाता है। वह स्वयं प्रकाशित वृक्ष है। भूख, प्यास, जरा, चिन्ता, शोक आदि मन्दार पुष्प के धारण करने मात्र से दूर हो जाते हैं। स्वर्ग का नन्दन कानन और पारिजात वृक्ष तो इस मन्दार नामक कल्पवृक्ष के सामने किसी गिनती में नहीं आते। किन्तु यह पुष्प तुमको प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि महावीर्य, महादेव शिव के अगम्य क्षेत्र में तुम्हारा प्रवेश संभव नहीं है।' इस प्रकार कहकर नारद ने बातों-बातों में अंधक को उकसाकर उसे मन्दराचल पर्वत पर जाने के लिए प्रेरित किया।'

अंधक द्वारा मंदराचल पर आक्रमण—'महापराक्रमी, महातेजस्वी, महावीर, महाशक्तिशाली, महाप्रतापी, महाबली और महायोद्धा अंधक, गर्व में अंधा तो था ही, नारद द्वारा प्रेरित होकर वह घमंड और क्रोध में अकड़ता हुआ दलबल सहित मंदराचल पर पहुँच गया। वहीं कैलाश पर शिव का निवास था। वह मंदराचल से बोला, 'अरे पर्वत, तेरे शिखर पर शिव का काम्यक वन है। मैं वहाँ उगे मंदरावृक्ष को ले जाने आया हूँ। यदि स्वेच्छा से तू मुझे यह वृक्ष नहीं देता तो मैं युद्ध कर तुझे नष्ट कर दूँगा, तब उसे ले जाऊँगा।' यह

सुनकर मंदराचल अन्तर्धान हो गया। तब कुपित होकर अंधक ने उसका कई योजन विस्तृत शिखर उखाड़ कर फेंक दिया, किन्तु शिवकृपा से वह शिखर पुनः यथास्थान स्थापित हो गया। तब और भी कुपित होकर मंदराचल को चूर्ण कर देने के विचार से अंधक उसके समस्त शिखरों को तोड़कर फेंकने लगा। लेकिन शिव कृपा से वे टूटे हुए शिखर उसके असुर साथियों को नष्ट करते हुए पुनः अपने स्थान पर स्थापित होते रहे। तब चिढ़ कर अंधक ने कहा, अरे ! यूँ छल पूर्वक छिपकर युद्ध करने से क्या लाभ है। जो तेरा स्वामी और रक्षक है, वह सामने आकर मुझ महाबली से युद्ध क्यों नहीं करता ?'

अंधकासुर का वध – 'हे राजन् ! इस प्रकार ललकारे जाने पर वृषभध्वज शंकर अपने तीनों लोकों को भयभीत कर देने वाले त्रिशूल के साथ नन्दी पर आरुढ़ होकर वहाँ आए। उनके क्रोध से भूमंडल काँपने लगा, नदियाँ उलटी चलने लगीं। दिशाएँ जलने लगीं, समुद्र का जल उबलने लगा, चन्द्रमा ऊष्ण तथा सूर्य शीतल किरणें छोड़ने लगा और आकाश थरथराने लगा। तब घबराकर समस्त ऋषिगण, देवगण व मनुष्य शिव की स्तुति करते हुए उनसे शाँत होने की प्रार्थना करने लगे। संसार की यह विपरीत क्रियाएँ देखकर आशुतोष शिव ने अपने

क्रोध के कारण को तुरंत समाप्त कर देना ही उचित समझा। और अग्नि में धधकता अपना दुर्धर और विकराल त्रिशूल अंधक की छाती पर मारा। हे राजन् ! उस महाअस्त्र के एक ही वार से महाबली अंधक कटे वृक्ष की भांति धराशायी होकर भस्म हो गया। तब शिव का क्रोध शाँत होने पर विश्व में जो विपरीतताएँ उत्पन्न हुईं थीं, पुनः सामान्य हो गईं।'

तब राजा जनमेजय ने कहा, 'हे मुनिश्रेष्ठ ! निकुम्भ की दूसरी देह का वध जिस प्रकार हुआ, मुझसे वह प्रसंग भी कहिए। मेरे मन में उसे जानने का बहुत कौतुहल है।'

भानुमती का अपहरण

तब वैशम्पायन जी ने कहा– 'एक समय जब श्रीकृष्ण अपनी समस्त रानियों के साथ, बलराम अपनी पत्नी के साथ तथा प्रद्युम्न आदि महावीर अपनी-अपनी पत्नियों के साथ समुद्र में जब जलक्रीड़ा तथा आमोद-प्रमोद में मग्न थे, तब उचित अवसर जानकर देव शत्रु निकुम्भ ने भानु यादव की सुंदरी कन्या भानुमती का हरण कर लिया। प्रद्युम्न ने पूर्व समय में निकुम्भ के भाई व्रजनाभ की हत्या करके उसकी पुत्री प्रभावती का हरण कर

लिया था। अतः निकुम्भ ने इस प्रकार अपना प्रतिशोध लिया। तब भानुमती के रुदन को सुनकर यादवों को चेतना हुई। श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर गरुड़ पर उस ओर लपके तथा प्रद्युम्न को रथ पर पीछे आने को कहा। वज्रपुर में प्रवेश करते समय कृष्ण ने निकुम्भ को पकड़ लिया। तब निकुम्भ माया द्वारा तीन शरीर धारण कर कटीली गदा के साथ, भानुमती को काँख में दबा कर उन तीनों महारथियों से अलग अलग युद्ध करने लगा। हे राजन् ! यद्यपि कृष्ण, प्रद्युम्न और अर्जुन तीनों ही उस दैत्य का वध करने में समर्थ थे फिर भी भानुमती उसके कब्जे में होने के कारण (उसे चोट न लग जाए इस भय से) उस पर निर्दयता पूर्वक प्रहार नहीं कर रहे थे। उससे खुलकर नहीं लड़ रहे थे। 'नागोष्ट्र विधि' (अजगर यदि ऊँट को लपेट ले, तब इस प्रकार बाण मारना कि ऊँट सुरक्षित रहे, किन्तु अजगर आहत हो) से उन तीनों ने निकुम्भ पर बाण चलाए। तब निकुम्भ भानुमती के साथ मायापूर्वक अदृश्य हो गया। बहुत खोजने के बाद वह हारित पक्षी का रूप धारण किए बैठा दिखाई दिया। अर्जुन ने तब मर्मभेदी वैतस्तिक बाण (बालिश्त भर के तीर) उस पर चलाए, ताकि भानुमती आहत न हो। तब वह प्राण रक्षा के लिए सात

द्वीपों वाली पृथ्वी पर इधर-उधर भागने लगा।'

निकुम्भ वध —'हे राजन् ! कृष्ण अर्जुन तथा प्रद्युम्न ने उस दुष्ट असुर का पीछा न छोड़ा। अन्ततः वह भागते-भागते गोकर्ण पर्वत को लाँघते हुए गंगा के तट पर बालू में गिर गया क्योंकि महादेव शिव के तेज द्वारा रक्षित उस गोकर्ण पर्वत देवता, दानव अथवा मनुष्य कोई लाँघ नहीं सकता। तब उचित अवसर पाते ही प्रद्युम्न ने भानुमति को छुड़ा लिया। कृष्ण व अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से भयभीत होकर निकुम्भ पुनः भागा और षट्पुर में जा घुसा। तब कृष्ण और अर्जुन ने षट्पुर के बिल (प्रवेशद्वार) पर पहरा देना आरंभ कर दिया। प्रद्युम्न भी तब तक भानुमति को द्वारिका छोड़ कर वहीं आ गया था। वे तीनों वहीं पहरा देने लगे। कुछ समय बाद शत्रुओं का ध्यान बँटा हुआ देखकर निकुम्भ अदृश्य होकर बिल से बाहर निकला और अर्जुन तथा प्रद्युम्न के सिरों पर पीछे से गदा का प्रहार करके उन दोनों को मूर्च्छित कर दिया। तब श्रीकृष्ण सावधान होकर कौमोद की गदा लेकर उस असुर से उलझ गए।'

'हे राजन् ! इन्द्रादि देवगण भी वहाँ आकर उस घोर संग्राम को देखने लगे। तब उनको शत्रु का बल दिखलाने के लिए श्रीकृष्ण निकुम्भ की बहुकन्टक गदा का वार

अपने मस्तक पर खाकर लीला दिखाते हुए मूर्च्छित हो गए। मनुष्य रूप में होने से मानव की मर्यादाओं को दिखाने तथा देवों को निकुम्भ की शक्ति का आभास करा देने के उद्देश्य से ही लीलाधर कृष्ण ने ऐसा किया। अन्यथा श्रीहरि को भला रण में कौन पराजित कर सकता है ? तब चारों ओर हा-हाकार मच गया। इन्द्र ने अमृत लाकर श्रीकृष्ण पर छिड़का। तब वे महान एक विचित्र लीलाएँ दिखाने वाले केशव उठ बैठे। इन्द्रादि देवताओं को निस्तेज तथा चिन्तित देखकर मुस्कराते हुए जनार्दन ने तब और विलम्ब करना उचित न जानकर सुदर्शन चक्र द्वारा उस मायावी महाअसुर निकुम्भ का वध कर दिया। मरने से पूर्व भी उस मायावी ने अपने हजारों रूप बनाए और चेतना को प्राप्त हुए अर्जुन के हरण का प्रयास किया, किन्तु श्रीकृष्ण की योगदृष्टि के आगे उसकी दाल न गली। और अन्ततः वह अपनी दूसरी देह में भी कृष्ण के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुआ।'

सहदेव से भानुमती का विवाह—हे राजन् ! तब नारद जी ने वहाँ आकर अर्जुन से इस प्रकार कहा, 'हे पार्थ ! यह कन्या भानुमती पूर्ण पवित्र है। दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण इसका अपहरण हुआ था। अब यह शाप मुक्त हो चुकी है। अतः इस कन्या को अपने छोटे

महावीर भाई सहदेव के लिए स्वीकार करो। और हे कृष्ण ! तुम भी इसे सहदेव को दे दो क्योंकि पाण्डु पुत्र, वीर, प्रतापी, धार्मिक, सत्यनिष्ठ तथा न्यायप्रिय हैं। उनके साथ यह कन्या सुख, सौभाग्य, यश, पुत्र तथा वैभव प्राप्त करेगी। तब कृष्ण ने ऐसा ही किया।'

प्रद्युम्न द्वारा वज्रनाभ वध व प्रभावती से विवाह

राजा जनमेजय बोले–'आपने जो श्रीकृष्ण विजय का यह अद्‌भुत प्रसंग सुनाया–यह बहुत ही आनन्ददायक था। किन्तु हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने जो बीच में वज्रनाभ और प्रभावती के विषय में कहा, मुझसे वह प्रसंग भी पूरा कीजिए। किस प्रकार प्रद्युम्न ने वज्रनाभ का वध किया और प्रभावती से विवाह किया ?'

वज्रनाभ तथा वज्रपुर–तब वैशम्पायन जी बोले, 'हे नृपश्रेष्ठ ! वज्रनाभ ने मेरू पर्वत पर तप कर ब्रह्मा को प्रसन्न किया था और उनसे देवताओं द्वारा अवध्य होना तथा वज्रपुर नामक अभेद्य और वैभवपूर्ण दुर्ग वरदान प्राप्त किया था–जिसमें बिना आज्ञा वायु भी प्रविष्ट नहीं हो सकती थी तथा जिसमें इच्छा मात्र से सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती थीं। करोड़ों असुरों को वज्रनाभ

ने उस अभेद्य दुर्ग में शरण दी और उनका महाराज बनकर त्रैलोक्य विजय की सोचने लगा। तब वरदान और शक्ति के मद में चूर होकर वह इन्द्र के पास गया और उससे स्वर्ग का सिंहासन छोड़ देने को कहा। इन्द्र यह सुनकर चिन्ता में पड़ गए। वज्रनाभ को वर प्राप्त था अतः उस से युद्ध करना व्यर्थ था, तब बृहस्पति के परामर्श पर इन्द्र ने कुछ समय की सुविधा लेने के लिए उससे कहा, 'हे भाई ! मुझे सिंहासन तुम्हें सौंपने में आपत्ति नहीं है, किन्तु हमारे पिता महर्षि कश्यप इस समय एक यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं। उनके यज्ञ पूर्ण कर लेने तक रुक जाओ, फिर जैसा वे कहेंगे, वैसा ही कर लिया जाएगा।' तब वज्रनाभ ने इन्द्र की बात मान ली। किन्तु धैर्य न होने से स्वयं कश्यप ऋषि के पास जाकर स्वर्ग पर शासन करने की अनुमति माँगने लगा। तब कश्यप जी ने भी वज्रनाभ से ऐसा ही कहा कि– 'हे पुत्र ! मैं इस समय यज्ञ के अनुष्ठान पर बैठा हूँ। मेरे यज्ञ पूर्ण कर लेने तक तुम आनन्दपूर्वक वज्रपुर में रहो। फिर मैं विचार करके तुमको इस विषय में बताऊँगा।'

इन्द्र व कृष्ण की प्रवेश योजना–'हे राजन् ! तब वज्रनाभ मनमारकर अपनी पुरी में लौट गया। उधर इन्द्र ने कृष्णं के पास जाकर यह समस्या रखी। तब

कृष्ण ने कहा कि उनके पिता व वसुदेव अश्वमेघ यज्ञ करने वाले हैं। यज्ञ समाप्त होने पर वज्रनाभ को वे मार देंगे। यद्यपि उसके पुर में बिना आज्ञा के वायु भी नहीं प्रवेश कर सकती, फिर भी विचार कर कोई उपाय निकालेंगे। हे राजन् ! जब वसुदेव का अश्वमेघ यज्ञ समाप्त होने ही वाला था तब भद्र नामक एक नट वहाँ आया। ऋषियों को अपने नृत्य, कलाबाजियों और करतबों से प्रसन्न करके उसने उनसे आकाश गमन की शक्ति, स्थावर तथा जंगम प्राणियों से अवध्यता, रूपांतरणशक्ति, चिर यौवन तथा परकाया प्रवेश का वरदान प्राप्त किया। और सातद्वीपों वाली पृथ्वी पर विचरण करने लगा। उधर–श्रीकृष्ण की योजनानुसार इन्द्र ने स्वर्ग में रहने वाले धार्तराष्ट्र नामक हंसों को वज्रपुर में यह कह कर भेजा कि वे वज्रपुर के अंतःपुर की झील में निवास करें और अवसर मिलने पर वज्रनाभ की चन्द्रप्रभा जैसी परम सुंदरी पुत्री प्रभावती का मन प्रद्युम्न के रूप, यौवन, गुण तथा पराक्रम आदि का वर्णन कर प्रद्युम्न की ओर आकर्षित करें। तब उन हंसों ने ऐसा ही किया।'

'इस प्रकार प्रद्युम्न की ओर आकर्षित हुई वह प्रभावती हंसों से बोली, 'विष्णु ने पृथ्वी पर कृष्णावतार

लिया है, यह तो मुझे नारद जी से ज्ञात हुआ था। उनके पुत्र प्रद्युम्न से मेरा विवाह हो, इससे उत्तम और क्या हो सकता है। मैंने तुमसे पूर्व भी प्रद्युम्न द्वारा अम्बरासुर को मारे जाने का वृत्तांत सुना है। तभी से मैं उस महावीर के पराक्रम पर मुग्ध हूँ। किन्तु मेरे पिता दैत्य वज्रनाभ प्रबल देवविरोधी हैं,–फिर भला देवाधिदेव विष्णु के पुत्र से मेरा विवाह किस प्रकार संभव हो पाएगा ? यही सोचकर निराश हो जाती हूँ।'

'तब उन हंसों में शुचिमुखी नामक हंसिनी जो कि प्रभावती की सखी बन चुकी थी। इन्द्र द्वारा दिए गए पूर्वनिर्देश. के अनुसार बोली–'देवी ! मैं इस असंभव कार्य को संभव कर दूँगी, तुम केवल अपने पिता से मेरे कथा कौशल तथा सर्वत्र भ्रमणशीलता के विषय में प्रशंसा कर उनको मेरे पास ले आओ।' प्रभावती ने ऐसा ही किया। वज्रनाभ अपनी पुत्री द्वारा उस हंसिनी की प्रशंसा से प्रभावित होकर वहाँ आया और बोला, 'हे हंसिनी मेरी पुत्री ने तुम्हारे कथा कौशल तथा सर्वत्र भ्रमणशीलता के विषय में बहुत प्रशंसा की है। मुझको भी अपना कौशल दिखाओ। इस विश्व में जो कुछ अद्भुत तथा आश्चर्यजनक तुमने देखा हो वह सब मुझसे कहो।' तब शुचिमुखी ने शाण्डिली नामक एक

मनस्विनी स्त्री के चमत्कारों की कथा कहकर वज्रनाभ को प्रसन्न किया और ऋषियों से वरदान प्राप्त भद्र नामक उस नट के विचित्र आश्चर्यजनक तथा अदभुत करतबों के विषय में इस प्रकार से बताया कि वज्रनाभ भद्र के कौशल देखने को अत्यंत उत्सुक हो गया। तब वह हंसिनी से बोला, हे शुचिमुखी। कोई ऐसा उपाय करो कि वह अद्भुत नट हमें भी अपना कौशल दिखलाए।' इस पर वह हंसिनी बोली 'आप निश्‍िंचत रहिए। मैं स्वयं जाकर उसको आपके विषय में कहूँगी। आपके गुणों से प्रभावित होकर वह स्वतः ही वज्रपुरी में कौशल प्रदर्शन को आ जाएगा।'

वज्रपुर में यादवों का प्रवेश—वैशम्पायन जी ने आगे बताया—'हे राजन् ! तब उस चतुर हंसिनी ने पूरी भूमिका बाँधकर इस विषय में इन्द्र तथा कृष्ण को सूचित किया। तब श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न को भद्र बन कर वज्रपुर जाने के लिए कहा। उसकी सहायता के लिए साम्ब को विदूषक (जमूरा—जोकर) तथा गद को परिपास्वर्क (पीछे से बोलते रहने वाला—सूत्रधार) बनाकर और कुछ श्रेष्ठ युदवंशियों को नाचने वाली वैश्याओं के रूप में मदारी-नट बने प्रद्युम्न के साथ वज्रपुर भेज दिया। इस प्रकार वे सब वज्रनाभ की आज्ञा

मिल जाने से उसके अभेद्य दुर्ग में प्रवेश कर गए। अन्यथा, जैसा कि बताया उस अभेद्य दुर्ग में बिना आज्ञा के वायु तक प्रवेश न कर सकती थी और न ही उसको तोड़कर प्रविष्ट हुआ जा सकता था। अत्यंत सुदृढ़ और चौकस होने से वह अभेद्य था, इसीलिए उसे 'वज्रपुर' कहा जाता था।'

प्रभावती व उसकी बहिनों का विवाह—'हे राजन् ! तब प्रद्युम्न आदि ने रामायण आदि महाकाव्यों पर आधारित नाटकों का मंचन किया तथा नृत्यगान तथा विभिन्न करतबों द्वारा वज्रनाभ को प्रसन्न कर उससे बहुमूल्य उपहार प्राप्त किए। वज्रनाभ ने उनके भोजन तथा रात्रि में विश्राम की व्यवस्था की। तब शाम को शुचिमुखी ने प्रभावती से कहा, 'आज रात्रि में हे सुभगे। तुम्हारा मिलन अपने प्रियतम के साथ होगा' और हे राजन् ! उस रात प्रद्युम्न तथा प्रभावती ने शुचिमुखी के पहरे में गंधर्व विवाह करके संभोग कर लिया। संयोग वश वज्रनाभ के भाई सुनाभ की चन्द्रावती तथा गुणवती नामक पुत्रियों ने प्रद्युम्न को प्रभावती के साथ सहवास करते देख लिया। तब वे प्रभावती का परिहास करने लगीं। प्रभावती ने कहा कि वह एक विद्या जानती है जिसके द्वारा मन चाहे पुरुष को वशीकृत करके अपने

पास बुलाया जा सकता है। प्रमाण के रूप में इनको (प्रद्युम्न) को देख लो। और यदि वे दोनों चाहें तो प्रभावती से वह विद्या सीखकर अपनी पसंद के पुरुषों को संभोग के लिए बुला सकती हैं।' इस प्रकार दोनों बहनों ने प्रभावती की बातों में आकर वह विद्या सीख ली और काम पीड़ित होते हुए उन्होंने गद तथा साम्ब को बुला लिया। इस प्रकार गद व साम्ब ने भी उन दोनों से गंधर्व विवाह करके रमण किया।'

श्रीकृष्ण द्वारा अगले आदेश की प्रतीक्षा करते हुए वे तीनों वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। दिन में वज्रनाभ को करतब दिखाते, रात में उसकी पुत्रियों से प्रणय करते।'

प्रद्युम्नादि को पुत्र प्राप्ति तथा वज्रनाभ से युद्ध—'हे राजन् ! इधर कश्यप जी का यज्ञ समाप्त होते ही, वज्रनाभ ने उनसे स्वर्ग पर शासन करने के सम्बन्ध में फिर पूछा। तब कश्यप बोले, 'पुत्र ! इन्द्र तुमसे अधिक श्रेष्ठ, सुपात्र तथा सज्जन है। तुम वज्रपुर में ही आनन्द से रहो। अमरावती में इन्द्र को रहने दो। उससे बैर ठानोगे तो नारायण की कृपा उस पर होने से तुम्हारा अकल्याण होगा। नाग को पैर से कुचलने का प्रयास करने वाला उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कश्यप द्वारा कही गई हित की बात वज्रनाभ को

भली न लगी, और वह स्वर्ग पर आक्रमण की योजना बनाने लगा।'

'उधर हंसों द्वारा इन्द्र को सब समाचार मिला तो वह कृष्ण के पास आकर चिन्तित होकर यूँ कहने लगा, 'हे माधव ! प्रद्युम्न आदि वज्रनाभ के नाश का उपाय न सोचते हुए उसकी पुत्रियों के साथ रमण में ही संलग्न हैं। वे तीनों गर्भवती हैं और उनके प्रसव का समय भी निकट आ गया है, ऐसे में युद्ध कार्य भला किस प्रकार संभव हो सकेगा ? तब कृष्ण बोले–देवेन्द्र ! तुम चिन्तित न होओ। वे हमारी पुत्रवधुएँ, समय से अत्यंत गुणी पुत्रों को उत्पन्न करेंगी। वे पुत्र जन्म के साथ ही वेदों शास्त्रों तथा युद्धकला के ज्ञान से सम्पन्न होंगे तथा उत्पन्न होते ही युवा हो जायेंगे। अतः युद्धकार्य में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। बस, वज्रनाभ का अंत निकट आ गया ही समझो।'

'हे राजन् ! कृष्ण के प्रभाव से वैसा ही हुआ। प्रद्युम्न साम्ब तथा गद के पुत्र उत्पन्न होते ही युवा हो गए। तब इस सब का रहस्य बने रहना संभव न था! वज्रनाभ को अपनी पुत्रियां द्वारा प्रसव का समाचार मिला और प्रद्युम्न आदि के साथ गंधर्व विवाह का ज्ञान हुआ, तो उसने अत्यंत क्रुद्ध होकर अपने असुरों को आदेश दिया

कि वे उन बहरूपियों और धोखेबाजों को तुरंत बंदी बना लें।

'प्रभावती, चन्द्रावती तथा गुणवती इस समाचार को सुन अपने पतियों के अनिष्ट की आशंका से काँपने लगीं। तब प्रद्युम्न बोला, 'हे सुमुखी। यह बड़ा कठिन समय आ गया है। यदि हम युद्ध नहीं करेंगे तो मारे जायेंगे। यदि युद्ध करेंगे तो अपने श्वसुर को मारना पड़ेगा। अब तुम जैसा कहो, मैं वैसा ही करूँगा।' तब सजल नेत्रों से प्रभावती ने प्रद्युम्न को युद्ध की अनुमति दी। और उसे युद्ध के लिए एक खड्ग प्रदान किया। यह देख कर चन्द्रावती ने भी गद को और गुणवती ने साम्ब को तलवारें दीं। फिर तो वे तीनों मिलकर अन्य यादव वीरों के साथ असुरों पर टूट पड़े और वहाँ घमासान युद्ध होने लगा। प्रद्युम्न ने माया द्वारा आकाश में जाकर समस्त दिशाओं से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की और साम्ब तथा गद अन्य यदुवंशियों के साथ मिलकर असुर सेना को गाजर मूली की भाँति काटने लगे। देवता लोग उत्सुक होकर उस रण को देखने के लिए आकाश में एकत्रित हो गए। तब तो इन्द्र का सारथी मातली, ऐरावत, जयन्त, प्रवर तथा मातली पुत्र सुवर्चा भी युद्ध में सम्मिलित हो गए। कृष्ण भी गरुड़ पर आरूढ़ होकर

वहाँ प्रकट हो गए। और पाञ्चजन्य शंख बजाया।'

वज्रनाभ का वध–'उस शंख के नाद से शत्रुओं के दिल दहल गए। प्रद्युम्न उस नाद को सुनकर कृष्ण के पास गए। तब कृष्ण ने कहा, 'इन असुरों से तो साम्ब, जयन्त आदि ही निपट लेंगे। तुम वज्रनाभ का वध करो। ऐसी आज्ञा पाते ही वह महावीर वज्रनाभ पर टूट पड़ा। वज्रनाभ के साथ उसका भयंकर युद्ध हुआ। तब प्रद्युम्न की गदा का एक अति भीषण प्रहार छाती पर खाकर वज्रनाभ मुँह से खून उगलता हुआ मूर्च्छित हो गया। प्रद्युम्न ने उसे उकसा उकसा कर पुनः चेतना को प्राप्त कराया। तब वह प्रद्युम्न के रणकौशल की प्रशंसा करता हुआ बोला, ' तुम्हारा पराक्रम धन्य है, किन्तु अब प्रतिशोध की मेरी बारी है।' ऐसा कहकर उसने बातों-बातों में अपनी काँटों वाली गदा प्रद्युम्न पर फेंक मारी। गदा सिर पर खाने से प्रद्युम्न चकराकर भूमि पर गिर पड़ा। कृष्ण द्वारा बजाए पाँचजन्य के नाद को सुनकर वह चेत हुआ और कृष्ण की इच्छा से असुरों का नाश करने वाला सुदर्शन चक्र प्रद्युम्न के पास आ गया। प्रद्युम्न ने तब हजारों तीक्ष्ण अरों वाले उस चक्र से व्रजनाभ का सिर काट डाला। सुनाभ नामक वज्रनाभ के भाई को महापराक्रमी गद ने मार गिराया था तथा

साम्ब ने जयन्त आदि के साथ समस्त असुरों का नाश कर दिया। उस समय वज्रनाभ का एक और भाई निकुम्भ ही केवल प्राण बचाकर भागने में सफल हो सका। उसने षट्पुर में शरण ली।

पुत्रों का राज्याभिषेक– 'तब कृष्ण ने वज्रपुर के चार भाग किए। एक भाग जयन्त के पुत्र विजय को तथा शेष तीन भाग गद, साम्ब तथा प्रद्युम्न के उन पुत्रों को दिए जो असुर कन्याओं से वज्रपुर में ही उत्पन्न हुए थे। और द्वारिका को लौट आए। छः मास बाद अपने पुत्रों को भली प्रकार राज्य सँभालकर –प्रद्युम्न, गद, साम्ब भी द्वारिका को लौट आए।'

कृष्ण की संतानों का वर्णन

राजा जनमेजय बोले, 'प्रभो ! कृष्ण जी को सोलह हजार एक सौ आठ रानियों से उत्पन्न संतानों के विषय में भी मुझे बताएँ। विशेष रूप से उनकी आठ पटरानियों की संतानों के विषय में मुझसे कहें।'

कृष्ण का वंश–तब वैशम्पायन ने कहा, 'हे राजन् ! कृष्ण का वंश तो अत्यंत विस्तृत है। उनकी संतानों की गणना करना भी कठिन है, फिर भी प्रमुख एक लाख अस्सी हजार पुत्र कहे गए हैं और बहुत सी

पुत्रियाँ भी हुईं। सबके विषय में कहना तो असंभव है। अतः मैं प्रमुख रानियों से उत्पन्न हुई कृष्ण की संतानों को तुमसे कहता हूं। रुक्मणी के ज्येष्ठ तथा सर्वश्रेष्ट पुत्र शम्बरासुर को मारने वाले प्रद्युम्न हुए। इसके अलावा चारूदेष्ण, चारूभद्र, चारूगर्भ, चारूविन्द, चारूबाहु, सुदेष्ण या सुचारू, द्रुम या चारू तथा सुषेण—ये दस पुत्र और चारूमती नामक रूपमती पुत्री हुई। ये सभी शूरवीर हुए। सत्यभामा से भानु, भीमरथ, रोहित, दीप्तिमान, ताम्रजाक्ष तथा जलान्तक ये छः वीर पुत्र तथा भीमलिका, ताम्रपर्णी, जलंधमा और भानुमति—ये चार सुंदर पुत्रियाँ हुईं। जाम्बवन्ती से साम्ब, मित्रवान्, मित्रविन्द, मित्रबाहु और सुनीथ ये पाँच प्रतापी पुत्र तथा मित्रवती नामक सुशीला पुत्री हुई। नाग्नजिती से भद्रकार, भद्रविन्द तथा भद्रवती ये दो पुत्र और एक पुत्री हुए।'

'सुदत्ता—शैण्या से संग्रामजित्, सत्यजित्, सेनजित् तथा सपत्नजित् ये चार पराक्रमी पुत्र हुए। (माद्री) मद्र देश की भीमा से वृकाश्व, वृकनिर्वृति तथा वृकदीप्ति ये तीन पुत्र हुए। लक्ष्मणा से गात्रवान्, गात्रगुप्त तथा गात्रविन्द नामक तीन रण कुशल पुत्र और गात्रवती नामक एक सुघड़ पुत्री हुई। कालिन्दी के अश्रुत नामक एक ही महावीर पुत्र हुआ। श्रुतसेना के भी श्रुतसेन

नामक एक ही श्रेष्ठ पुत्र हुआ। बृहती–मित्रविन्दा के पराक्रमी गद तथा अंगद नामक दो पुत्र हुए। पौरवी के कुमुद, श्वेत, अवगाह, सुमित्र, पवित्र, चित्ररथ व चित्रसेन ये सात पुत्र तथा श्वेता नामक पुत्री हुई। सुदेवा के वनस्तम्ब तथा स्तम्बवन ये दो पुत्र तथा चित्रवती नामक पुत्री हुई। कौशिकी–श्रुतसोमा के निवासन, उपसन्न, शंकु, वज्रांशु, क्षिप्र तथा वनस्तम्ब नामक छः पुत्र तथा स्तम्बवती नामक एक पुत्री हुई। यौशिष्ठिरी के युधिष्ठिर तथा गरुड़ नामक दो पुत्र तथा कापालिका नामक एक पुत्री हुई। ये सभी रण कुशल थे।'

'कृष्ण के प्रमुख एक लाख अस्सी हजार पुत्रों में से भी जो अति प्रमुख (विशिष्ट रानियों से) पुत्र हुए वह तुम से कह दिए। इनमें भी प्रद्युम्न, साम्ब, चारूदेष्ण तथा गद संग्रामजित् और श्रुतसेन विशेष प्रसिद्ध व गुणवान हुए। इन छः में भी प्रद्युम्न सर्वाधिक पराक्रमी तथा कृष्ण के उत्तराधिकारी हुए। और इन्हीं से कृष्ण का वंश विशेष रूप से पहचाना गया। बलराम जी के निशठ और उल्मुख दो ही महाबली और तेजस्वी पुत्र हुए। पौण्ड्रक (जो राजा हुए) और कपिल (जो ऋषि हुए) भी वसुदेव की पत्नियों क्रमशः सुतनु तथा सुतारा से उत्पन्न होने के कारण कृष्ण के भाई हुए। उसी प्रकार

जिस तरह सात्यकि कृष्ण के भाई थे। हे राजन् ! प्रद्युम्न के पुत्र अतिरूपवान और महावीर अनिरुद्ध हुए। अनिरुद्ध का पुत्र सानु, पौत्र वज्र, प्रपौत्र अतिरथ हुआ। अतिरथ का पुत्र सुचारु हुआ। साम्ब का पुत्र सुपार्श्व हुआ। इधर सात्यकि का पुत्र युयुधान, पौत्र असंग, प्रपौत्र मणि हुआ। मणि का पुत्र युगंधर हुआ। –इस प्रकार कृष्ण की प्रमुख रानियों की संतानों को तथा प्रमुख संतानों की भी संततियों को मैंने तुमसे संक्षेप में कहा। अन्यथा कृष्ण के अगणित पुत्रों, पौत्रों, प्रपौत्रों तथा उनके भी पुत्रों से यह विश्व भरा पड़ा है। तुम्हारी इच्छानुसार कृष्ण का वंश तुमसे कह दिया। अब और जो चाहते हो, सो कहो।'

तब राजा जनमेजय ने कहा, 'हे महामुने ! आपने प्रद्युम्न द्वारा शम्बरासुर के वध की बात कही थी। मुझे वह प्रसंग भी सुनाइए। प्रद्युम्न ने शम्बरासुर को क्यों और किस प्रकार मारा ? मुझसे वह सब कृपा कर कहिए।'

प्रद्युम्न का अपहरण व शम्बरासुर का वध

प्रद्युम्न हरण –वैशम्पायन जी ने कहा– 'प्रद्युम्न के जन्मने के बाद आठवें दिन आधी रात को सूतिका गृह

से ही शम्बर नाम का असुर उसे हर ले गया था। योगदृष्टि से सब कुछ जानते हुए भी कृष्ण ने इस विषय में कोई उपाय नहीं किया (क्योंकि विधानानुसार इस घटना से रति और कामदेव का मिलाप तथा शम्बरासुर का नाश होना था।) शम्बर ने प्रद्युम्न को अपनी पत्नी मायावती को सौंप दिया। (अन्य कुछ पुराणों में मायावती को शम्बर ने प्रद्युम्न को काटकर उसका माँस बनाकर तैयार करने को दिया था, किन्तु मोहवश मायावती ने उसे बचा लिया था)। प्रद्युम्न को देखकर उस सतत् युवा मायावती को स्मरण हो आया कि वह बालक पिछले जन्म में उसका पति था। अतः उसने प्रद्युम्न को पुत्र न मानते हुए स्वयं स्तनपान नहीं कराया, बल्कि उसके लिए दाई नियुक्त कर दी। रसायन आदि औषधियों के प्रयोग से मायावती ने प्रद्युम्न को शीघ्र ही युवा कर दिया। और माया में प्रवीण होने से उसने माया की समस्त दानवी मायाएँ भी सिखा दीं। युवा प्रद्युम्न का रूप तथा सौष्ठव कामदेव के समान ही आकर्षक हुआ।'

मायावती से विवाह – 'हे राजन् ! इस प्रकार युवा हुए प्रद्युम्न के सामने पति से मिलन की इच्छा से मायावती ने काम पीड़ित होकर प्रणय प्रस्ताव रखा। तब

प्रद्युम्न ने उसे अपनी माता मानने के कारण अस्वीकार करते हुए धर्म को समझाया। मायावती ने प्रद्युम्न को तब पूर्व जन्म का संस्मरण याद कराया व कहा, हे नाथ ! तुम पूर्व जन्म में कामदेव और मैं तुम्हारी पत्नी रती थी। शिवजी की तपस्या भंग करने के अपराध में तुम उनकी क्रोधाग्नि से भस्म हो गए थे। तब मेरे द्वारा प्रार्थना किए जाने पर शिवजी ने कहा था कि द्वापर युग में तुम्हारा पति पुनर्जन्म लेकर प्रद्युम्न रूप से तुम को प्राप्त होगा। तुम तब तक प्रतीक्षा करो। हे प्रिय ! तब मुझ दुखियारी को बाद में यह शम्बरासुर हर लाया था और बलपूर्वक अपने महल में रख लिया था। इस जन्म में भी तुम मेरे गर्भ से उत्पन्न नहीं हो। और न ही तुमको मैंने अपना दूध पिलाया है। इसके अलावा शम्बर भी तुम्हारा पिता नहीं है–अर्थात् किसी भी दृष्टि से न मैं तुम्हारी माता हूँ, न तुम मेरे पुत्र हो, अतः हमारे मिलन में कोई दोष या अधर्म नहीं है।' इस प्रकार समझाए जाने पर प्रद्युम्न ने पूछा–'फिर मेरे माता-पिता कौन हैं ? और मैं यहाँ क्यों रह रहा हूँ। इस पर मायावती ने उसे बताया कि किस प्रकार शम्बर उसे सूतिका ग्रह से उठा लाया था। रुक्मणी उसकी माता और कृष्ण उसके पिता हैं।– तब संतुष्ट होकर प्रद्युम्न ने मायावती से रमण किया और

फिर शम्बरासुर को ललकारा।'

शम्बरासुर से युद्ध – 'प्रद्युम्न ने वहाँ भयानक युद्ध कर शम्बर के दस पुत्रों को मार गिराया। अन्य दानवों को भी त्रस्त करने लगा। महापराक्रमी, रणकुशल तथा माया का जानकार होने से उस महारथी ने अकेले ही रण में आए शम्बर के सौ अन्य पुत्रों को मार डाला। तब अत्यंत क्रुद्ध होकर महाबली शम्बरासुर रथ पर चढ़कर वहाँ आया। और बोला– 'कुत्तों के बीच सिंह की भांति निर्भय विचरते हुए महाविनाश करने वाले वीर, मुझ से युद्ध करो मैं तुम्हारे योग्य हूँ। –तब शम्बरासुर व प्रद्युम्न में अत्यंत घमासान युद्ध हुआ। प्रद्युम्न के बाणों से शम्बर का रथ ढक गया। शम्बर ने वैद्युतास्त्र से उनका निराकरण किया और अपने बाणों से प्रद्युम्न को ढक दिया। प्रद्युम्न ने भी अनर्तपर्व नामक बाण से उनका निराकरण किया। इस प्रकार दोनों ने अपने युद्ध में वृक्षवर्षा, सरिसर्प वर्षा, पशुवर्षा, अग्निवर्षा आदि अनेक मायाओं और आग्नेयास्त्र, गंधर्वास्त्र, वायव्यास्त्र, वरुणास्त्र आदि अनेक अस्त्रों का प्रयोग किया। पर दोनों ही एक दूसरे को पराजित करने में असफल रहे। और एक दूसरे के रण कौशल को सराहने लगे।'

'हे राजन् ! प्रद्युम्न से विजय पाने का कोई अन्य

उपाय न देखकर शम्बरासुर ने शिव द्वारा बताई गई पन्नगी नामक विद्या से प्रद्युम्न और उसके रथ के घोड़ों को भयंकर सर्पों द्वारा बाँध दिया। तब प्रद्युम्न ने सौपर्णी–गारुड़ी माया से अपनी रक्षा की। और शम्बर को अपने अस्त्रों से व्यथित करने लगा। तब अपराजेय शत्रु के योग्य अंतिम अस्त्र के रूप में शम्बरासुर ने 'मायान्तकरण-मुद्‌गर' का स्मरण किया। यह मुद्‌गर स्वयं पार्वती ने अपने तप से रचा था और शम्बर पर प्रसन्न होकर उसे दिया था। इसी मुद्‌गर से पार्वती ने पहले शम्भू व निशम्भू नामक महादानवों को मारा था। 'मायान्तकरण' नामक वह मुद्‌गर महाभयकारी, महातेजस्वी, महाशक्तिशाली और परम विनाशक है।–शम्बर को उस मुद्‌गर का स्मरण करते देखकर इन्द्र ने घबराकर नारद से कहा, 'हे देवर्षि ! शम्बरासुर उमा के अजेय मुद्‌गर का प्रयोग करने वाला है। प्रद्युम्न को सावधान कर उसे रक्षा का उपाय बताओ और इस महाअसुर के वध के लिए उसे महातेजस्वी वैष्णवास्त्र प्रदान करो। अन्यथा प्रद्युम्न को अवश्य ही शम्बर से पराजित होना पड़ेगा, क्योंकि 'मायान्तकरण' मुद्‌गर अमोघ अस्त्र है।–तब नारद प्रद्युम्न के पास गए और वैष्णवास्त्र तथा कवच देते हुए इस प्रकार बोले, 'हे

महावीर ! तुम कृष्ण के पुत्र हो और पूर्वजन्म में शिव द्वारा भस्म किए गए कामदेव थे। तुम्हारा यहाँ आना रति से मायादेवी के मिलन तथा इस दुर्जेय शम्बरासुर के वध के लिए ही हुआ है। अतः उसके वध और अपनी रक्षा के लिए इन्द्र के द्वारा दिए इन दिव्य कवच तथा वैष्णवास्त्र को ग्रहण करो और हे महाबाहो ! शम्बर के पास महातेजस्वी अमोघ मायान्तकरण मुद्‌गर प्रकट होने वाला है। देवता, दानव कोई भी उसे निरस्त नहीं कर सकते, केवल उमा ही की स्तुति द्वारा उसका निराकरण संभव है।–फिर वे अन्तर्धान हो गए।

प्रद्युम्न द्वारा देवी की स्तुति – 'हे कौरण्य। तब तक वह महाप्रतापी मुद्‌गर उस असुर के हाथ में प्रकट हो चुका था। उस मुद्‌गर को शम्बरासुर द्वारा धारण करते ही बारहों आदित्य एक साथ निकल आए। पर्वत व पृथ्वी काँपने लगे। सागर आंदोलित हो गए और तूफ़ान चलने लगे। तब प्रद्युम्न ने रथ से उतर कर उमा की स्तुति की–'

नोट : जिस स्तोत्र से प्रद्युम्न ने देवी जी की स्तुति की, उसका अर्थ यहाँ दे रहे हैं :

अर्थात्–सच्चिदानन्दमयी देवी कात्यायनी को नमस्कार है। पर्वतों की स्वामिनी तथा तीनों लोकों की

देवी द्वारा महिषासुर का वध

मायास्वरूप देवी को मेरा बारम्बार नमस्कार है। शत्रुविनाशिनी और शिव की प्रिया गौरी देवी को मेरा प्रणाम है। शम्भु दैत्य को मथ डालने वाली व निशम्भुदैत्य को रौंद डालने वाली शिवप्रिया को भी मेरा प्रणाम है। हे कालरात्रि ! आपको नमस्कार है। कौमारी शक्ति स्वरूपा आपको बारम्बार नमस्कार है। मैं कान्तारवासिनी देवी को करबद्ध होकर प्रणाम करता हूँ। हे विन्ध्याचलवासिनी ! हे विपत्तियों का नाश करने वाली। हे रणचंडी, रणप्रिया, जया और विजया नामों वाली महादेवी मैं आपका अभिवादन करता हूँ। मैं अपराजिता शत्रु विनाशिनी देवी को नमस्कार करता हूँ। घन्टों की मालाओं को तथा हाथ में घन्टा धारण करने वाली घन्टादेवी को मेरा प्रणाम है। महिषासुर विनाशिनी,

त्रिशूलधारिणी देवी को नमस्कार है। सिंह की सवारी करने वाली, सिंहध्वज वाली देवी को प्रणाम है। मैं एकानंशा देवी को प्रणाम करता हूँ। यज्ञों में पूजी जाने वाली गायत्री देवी को प्रणाम करता हूँ। विप्रों की सावित्री रूप से पूजी जाने वाली देवी को भी हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। हे देवी ! आप सर्वदा मेरी रक्षा कीजिए और संग्राम में मुझे विजय दिलाइए।'

शम्बरासुर वध–'हे राजन् ! इस प्रकार स्तुति किए जाने से प्रसन्न हुई पार्वती ने उसी क्षण प्रकट होकर कहा– 'पुत्र मैं तेरी स्तुति से प्रसन्न हूँ। मेरे दर्शन अमोघ हैं, अतः जो वर चाहे माँग ले।' तब प्रद्युम्न बोला, 'माँ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे इस युद्ध में विजय का वर दीजिए। आपके द्वारा शम्बरासुर को दिया गया यह परम घातक और महाविनाशक 'मायान्तकारी' मुद्गर मेरे शरीर से स्पष्ट होते ही पुष्पमाला बने।' तब देवी 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्ध्यान हो गईं। फिर क्या था। शम्बर द्वारा फेंककर मारा गया वह मुद्गर प्रद्युम्न की छाती को छूते ही फूलों की माला बन गया और प्रद्युम्न ने देर लगाए बिना धनुष पर वैष्णवास्त्र चढ़ाकर शम्बरासुर पर छोड़ दिया। हे राजन् ! वैष्णवास्त्र के प्रभाव से शम्बरासुर माँस, अस्थि, रुधिर, मज्जा तथा

चर्म सहित वहीं जलकर भस्म हो गया। तब आकाश से देवताओं तथा किन्नरों आदि ने महावीर प्रद्युम्न पर पुष्पवर्षा की।'

रुक्मणी द्वारा नववधु का स्वागत—वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे जनमेजय ! तब प्रद्युम्न मायावती के साथ द्वारिका पहुँचा। रुक्मणी अपने पुत्र को पुनः वापस पाकर, जीवित तथा युवा देखकर और मायावती जैसी कमनीय वधु के साथ देखकर अत्यंत आश्चर्यचकित और हर्षित हुई। कृष्ण की सभी रानियों ने प्रसन्नता से उन दोनों का यथोचित् स्वागत किया। कृष्ण भी नारद द्वारा शम्बरासुर का समाचार सुनकर अन्तःपुर में आ गए। जब रुक्मणी ने अपने पुत्र के पराक्रम और शम्बर के वध का वर्णन सुना तो हर्षातिरेक में उसके नेत्र छलछला आए और उसने प्रद्युम्न को हृदय से लगा लिया। तब उसने बताया कि रात्रि को उसने एक अत्यंत शुभ स्वप्न देखा था, जिसके फल स्वरूप प्रातः ही उसे पुत्र और पुत्रवधु दोनों प्राप्त हो गए। तब उसने परम्परानुसार नववधु की अगवानी की। हे राजन् ! इस प्रकार जो तुमने शम्बरासुर के वध की कथा जाननी चाही थी वह तुमसे मायावती के विवाह सहित कह दी। अब और जो सुनना चाहते हो, सो कहो।'

सहस्त्रबाहु बाणासुर की कथा

बाणासुर को वर प्राप्ति—जनमेजय द्वारा आग्रह किये जाने पर तब वैशम्पायन जी ने उसे महाप्रतापी और शिवभक्त बाणासुर की कथा भी सुनाई। जो इस प्रकार है। वैशम्पायन जी ने कहा—'एक बार महाबली बाणासुर ने खेलते हुए कार्तिकेय को देखा। कार्तिकेय जी के रूप में सौष्ठव से अति प्रभावित होकर बाणासुर को स्वयं शिव का पुत्र बनने की इच्छा हुई। तब उसने अत्यन्त कठोर तप करके उमा सहित शिव को प्रसन्न किया। और उनसे तीन वर माँगे। पहला शिव तथा पार्वती उसे अपना पुत्र मानें, दूसरा उसके अत्यंत बलशाली एक हजार हाथ हों और तीसरा उसके पुर की रक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं भगवान् शिव अपने ऊपर लें। हे राजन् ! भक्तवत्सल, आशुतोष और परमकृपालु भोले भंडारी शिव ने कृपावश तीनों वर उसको दे दिए। और कार्तिकेय के निवास स्थान 'रुधिर पुर' (जहाँ अग्नि से कार्तिकेय प्रकट हुए थे) के समीप ही बाण को अपना पुत्र मानने का प्रमाण देते हुए बाण के लिए 'शोणित पुर' नामक निवास की व्यवस्था की।'

'हे राजन् ! जैसा कि प्रायः होता है। वरदान पाकर

बाण और भी अहंकारी और निरंकुश हो गया। कार्तिकेय जी ने भी शिव के वर का आदर करते हुए उसे अपना छोटा भाई समझ कर अपना अग्निध्वज तथा कहीं भी निबोध गति से जा सकने वाला सुंदर वाहन मोर उसे दे दिया था। बाणासुर ने तब अपने पराक्रम द्वारा देवताओं, यक्षों, गंधर्वों, किन्नरों, दैत्यों, राक्षसों तथा असुरों व दानवों आदि सभी को पराजित किया। शिव के प्रसाद से उसके सम्मुख युद्ध में कोई भी नहीं ठहर सकता था। इस प्रकार सबको जीतकर, पुनः युद्धोन्माद से पीड़ित होता हुआ वह महाअसुर शिवजी के पास पहुँचा और गर्व में भरकर इस प्रकार बोला, 'हे प्रभो ! मुझसे युद्ध करने के लिए कोई भी शेष नहीं है (सब मुझसे पराजित हो चुके हैं)। मैं अपनी भुजाओं की फड़कन कैसे मिटाऊं ? अब किससे युद्ध करूँ ? हे शूलपाणी ! यदि मुझे यूँ ही हाथ पर हाथ रखकर बैठना है (यदि मैं युद्ध न करूँ) तो मेरी इन एक हजार भुजाओं से क्या लाभ है ? अतः कृपाकर मुझे बताइये मेरे योग्य योद्धा कौन है ? मुझे कब युद्ध प्राप्त होगा।' तब उस अभिमानी की बात सुनकर भगवान् शंकर हँसते हुए बोले-

अमंगल की पूर्व सूचना–'पुत्र ! तुम्हें तुम्हारे योग्य योद्धा शीघ्र ही प्राप्त होगा। वह योद्धा तुम्हारी

समस्त भुजाओं की फड़कन भली प्रकार मिटा देने वाला होगा। उससे युद्ध करने के बाद, फिर तुम्हें कोई अन्य युद्ध करने का ना तो विचार ही होगा, न अवसर ही मिलेगा। जिस दिन तुम्हारे दुर्ग की ध्वजा टूटकर गिर पड़ेगी, तब समझ लेना कि तुमको वह अप्रतिम योद्धा युद्ध के लिए प्राप्त होने वाला है। तब वह महाबली 'शीघ्र बराबरी का युद्ध प्राप्त होगा' इस विचार से हर्षित होता हुआ शोणितपुर को लौट गया। वहाँ उसके मंत्री कुम्भाण्ड ने उससे उसकी प्रसन्नता का कारण पूछा तो उसने कुम्भाण्ड को सच बात कह दी। यह सुनकर कुम्भाण्ड चिन्तित स्वर में बोला–'हे स्वामी ! यह तो कोई प्रसन्नता का विषय नहीं है। भगवान् शिव द्वारा कहे गए यह वचन शुभ अर्थों वाले नहीं हैं। किन्तु बाण ने अट्टहास करते हुए कहा, 'अरे कुम्भाण्ड ! मैं पूरी त्रिलोकी में भगवान् शिव के अलावा किसी से भय नहीं मानता।'–अभी वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि दुर्ग की ध्वजा इन्द्र के वज्र से आहत होकर, टूटकर नीचे आ गिरी। ध्वजा के टूटते ही भारी अपशकुन होने लगे। जिनसे कुम्भाण्ड अत्यधिक चिन्तित हो उठा, किन्तु मूर्ख बाणासुर युद्ध की कामना से हर्षित होने लगा। कुम्भाण्ड को चिन्तित देखकर वह उसे सांत्वना देता

हुआ बोला– 'तुम इन उत्पातों के दोष से भय मत मानो। जिससे भी मेरा युद्ध होगा, मैं उसको अवश्य ही मार डालूँगा। और फिर शिव स्वयं इस पुर के रक्षक हैं, फिर भला हमें किससे भय हो सकता है ? आओ। आनन्दपूर्वक मदिरा पियें। किन्तु कुम्भाण्ड निश्चिंत न हुआ और मदिरा न पीकर महल के भीतर चला गया।'

बाण की पुत्री ऊषा की कथा–वैशम्पायन जी ने आगे कहा– 'हे राजन् ! इस प्रसंग को यहीं छोड़कर मैं तुमसे इसी से संबंधित दूसरा प्रसंग कहता हूँ। यह प्रसंग इसी कथा को आगे बढ़ाने वाला है। ध्यान पूर्वक सुनो– 'एक समय शिव और पार्वती एक साथ किसी नदी के रमणीय तट पर विहार कर रहे थे। सैंकड़ों गंधर्व व अप्सराएँ अपने नृत्य व गान द्वारा उनको प्रसन्न कर रहे थे। तभी चित्रलेखा नामक अप्सरा पार्वती का रूप धारण कर शिव के साथ क्रीड़ा करने लगीं। यह देख पार्वती व शिव हँसने लगे। उनको प्रसन्न देखकर तब अन्य गंधर्व व अप्सराएँ भी शिव और पार्वती का रूप बनाकर परस्पर क्रीड़ा करने लगे। तब बाणासुर की पुत्री ऊषा ने वहाँ आकर यह सब देखा। शिव तथा पार्वती को विहार करते देखकर वह काम पीड़ा से व्यथित होती हुई पार्वती से बोली, 'हे माते ! मैं विहार के योग्य

पति को कब प्राप्त करूँगी ?' तब पार्वती ने कहा वैशाख मास की द्वादशी रात्रि में जो तुम्हारे स्वप्न में आकर तुमसे रमण करेगा, वही तुम्हारा पति होगा। तब तुम उससे रमण करके हमारी भांति आनन्द प्राप्त कर सकोगी।'

'हे राजन् ! पार्वती के बताए गए समय पर ऊषा ने स्वप्न में एक पुरुष को स्वयं से रमण करते देखा। तब उसने सखियों को यह बात बताई। सखियों ने कहा कि वह स्वप्न में देखे गए पति का पता लगाएँ ताकि शीघ्र ही उससे ऊषा का विवाह हो सके। तब ऊषा ने चित्रलेखा नामक पूर्ण विश्व की जानकारी रखने वाली अपनी अप्सरा सखी को बुलाया। स्वप्न का हाल सुनाकर वह बोली, 'हे सखी ! अब मुझे उस पुरुष को ढूँढना है। तुम सम्पूर्ण विश्व के समाचार अपने पास रखती हो, इस विषय में मेरी मदद करो।' तब चित्रलेखा ने कहा, 'हे सखी ! तुमने किसे स्वप्न में देखा यह मैं कैसे जान सकती हूँ। मैंने उसे देखा होता तो उसका अता-पता लगाती। फिर भी मैं ऐसा करती हूँ कि एक सप्ताह में देवताओं, किन्नरों, गंधर्वों, यक्षों, दैत्यों, असुरों, राक्षसों, दानवों तथा मानवों आदि में जो भी प्रमुख व प्रसिद्ध हैं उनके चित्र मैं बनाकर लाऊँगी, क्योंकि कोई साधारण

व्यक्ति तो महापराक्रमी बाणासुर की पुत्री के स्वप्न में आने का साहस कर ही नहीं सकता। तुम उन चित्रों में से स्वप्न में देखे गए पुरुष को पहचानना। फिर मैं उसका अता-पता लगा लूँगी।' चित्रलेखा का यह उपाय सुनकर ऊषा प्रसन्न हो गई।'

'हे राजन् ! सात दिन बाद जब चित्रलेखा ने ऊषा को सब चित्र दिखाए तो उसने उनमें से कृष्ण के पौत्र तथा प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को स्वप्न में रमण करने वाले पुरुष के रूप में पहचान लिया। तब चित्रलेखा बोली कि वह यदुवंश कुलभूषण अनिरुद्ध है। ऊषा ने यह सुनकर कहा, 'सखी ! यदि शीघ्र ही इससे मेरा मिलन न हुआ तो मैं विरह में संतप्त होकर भस्म हो जाऊँगी।' यह सुनकर चित्रलेखा बोली, 'हे सखी ! द्वारिका पुरी समुद्र द्वारा और महावीर यादवों द्वारा सुरक्षित है। तो भी मैं योगबल से वहाँ प्रविष्ट होकर तुम्हारे प्रियतम को चुपचाप ले आऊंगी तुम धैर्य धारण करो।'

अनिरुद्ध का अपहरण—'चित्रलेखा अप्सरा थी और माया एवं योग में प्रवीण थी। वह जो कह रही थी उसे कर भी सकती थी। किन्तु उसे भेद खुल जाने पर कृष्ण द्वारा शाप दिए जाने का भय सताने लगा। वह धर्म

संकट में पड़ गई। तभी मार्ग में उसे नारद जी दिखाई पड़े। चित्रलेखा ने अपनी समस्या बताकर नारद से परामर्श माँगा। तब नारद जी बोले, 'तुम तामसिक विद्या का प्रयोग कर निःसंकोच अनिरुद्ध का अपहरण करके शोणितपुर ले जाओ। ऊषा और अनिरुद्ध का विवाह होना तय है। देवी पार्वती की इच्छा से यह हो रहा है। किन्तु बाणासुर का वध हुए बिना यह सम्बन्ध संभव नहीं हो पाएगा। अनिरुद्ध यद्यपि महावीर है, किन्तु वरदानी बाणासुर के वध में वे समर्थ नहीं हैं। बाणासुर तो नारायणावतार कृष्ण के ही योग्य है। अनिरुद्ध का अपहरण होने से कृष्ण अवश्य ही शोणितपुर जायेंगे, तब बाणासुर मारा जाएगा। इससे जगत का भी कल्याण होगा, और मुझे भी एक महायुद्ध देखने का अवसर मिलेगा। अतः तुम शीघ्र जाओ और अनिरुद्ध को हरण करो।' इस प्रकार समझाए जाने पर चित्रलेखा निश्िंचत हो गई।'

'चित्रलेखा ने अनिरुद्ध को ऊषा का संदेश दिया। तब अनिरुद्ध ने बताया कि वह स्वयं भी ऊषा को स्वप्न में देखने के बाद से अत्यन्त व्यग्र है। इस प्रकार अनिरुद्ध स्वेच्छा से ही चित्रलेखा के साथ तामस विद्या के प्रभाव से शोणितपुर जा पहुँचा (कहीं ऐसा वर्णन भी आता है

कि चित्रलेखा सोए हुए अनिरुद्ध को पलंग सहित अदृश्यकर हरण करके ले गई थी। शोणितपुर में ऊषा को देखकर वह उस पर आसक्त हुआ था।) वहाँ ऊषा और अनिरुद्ध ने गंधर्व विवाह कर लिया। कुछ दिन अनिरुद्ध ऊषा के अन्तःपुर में ही गुप्त रूप से रहा फिर भेद खुल जाने पर बाणासुर ने अतिक्रुद्ध होकर अनिरुद्ध को पकड़ लाने के लिए दैत्यों को भेजा। एक अकेले वीर के लिए प्रबल दैत्यों की सेना देख चित्रलेखा भयभीत हो गई और अनिरुद्ध के अनिष्ट की आशंका से नारद को स्मरण किया। नारद ने प्रकट होकर निश्चिंत रहने का आश्वासन दिया। निहत्था अनिरुद्ध दैत्य सेना से भिड़ गया और उनके शस्त्र छीन-छीन कर उन्हीं से उनको मारने लगा। भ्रान्त, उद्भ्रान्त, प्लुत, आप्लुत, विलुप्त तथा आविद्ध आदि ३२ प्रकार पैंतरे दिखाते हुए युद्ध करने लगा। उस महारथी ने अकेले ही पूरी सेना को छितरा दिया। दैत्य उसके पराक्रम, तेज, शक्ति, कौशल और प्रहारों से भयभीत हो, विभिन्न दिशाओं में भागने लगे। जिन्होंने कुछ साहस किया वे यमलोक पहुँच गए।'

बाणासुर से अनिरुद्ध का युद्ध— 'हे राजन्! तब अत्यंत क्रोधित होकर महापराक्रमी बाणासुर वहाँ गरजता

हुआ पहुँचा। उसने अनिरुद्ध को ललकारते हुए उस पर क्षुद्र नामक बाणों की वर्षा की। वीर अनिरुद्ध अपनी ढाल से बाणों को रोकने तथा खड्ग से मार्ग ही में काटने लगे। तब बाणासुर ने 'भेदी' नामक बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उन बाणों से अनिरुद्ध को पूर्णतः ढक लिया। अनिरुद्ध तब मेघों द्वारा घिर गए। सूर्य की भाँति शोभा पाने लगे। उन तीक्ष्ण बाणों की संख्या इतनी अधिक थी कि अनिरुद्ध सभी को ढाल खड्ग से न रोक पाए। तब बाणों से आहत होकर वे खड्ग को सिर से ऊँचा किए बाणासुर के रथ की ओर बड़े वेग से आक्रमण के लिए दौड़े। रक्त से सने तथा बाणों से बिंधे शरीर से ही उन्होंने बाणासुर के रथ के पहिए काट दिए और घोड़ों को मार डाला। तब क्रुद्ध बाणासुर ने अनिरुद्ध पर 'शक्ति' चलाई। अनिरुद्ध ने 'शक्ति' को मार्ग में ही पकड़ कर बाण पर फेंक दिया। वह जलती हुई तेजस्वी 'शक्ति' बाणासुर के शरीर को छेदकर पृथ्वी में प्रविष्ट हो गई।'

'अत्यंत गहरा घाव लगने से आहत हुआ बाण पीड़ित होकर रथ की ध्वजा का दण्ड पकड़कर बैठ गया। तब कुम्भाण्ड ने कहा, 'स्वामी ! इस शत्रु को सामान्य न समझकर माया का आश्रय लेकर युद्ध

कीजिए, और इसे तुरंत ही मार डालिए। यह पराक्रमी यदि कुछ समय और जीवित रहा तो हम सबको मारकर ऊषा को यहाँ से ले जाएगा। बालक या अकेला समझ कर इस पर दया न करें।' तब बाणासुर परिस्थितियों की गंभीरता को समझ कर अन्तर्धान हो गया और माया द्वारा युद्ध करने लगा।'

अनिरुद्ध का बंदी होना— 'हे नृपेन्द्र ! अनिरुद्ध ने दसों दिशाओं पर सतर्कता पूर्ण दृष्टि रखते हुए अदृश्य हुए बाणासुर के बाणों से स्वयं की रक्षा की। तब और भी कुपित होकर बाणासुर ने सर्पबाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। अत्यंत पराक्रमी होते हुए भी वे सर्पों द्वारा बाँध लिए गए। तब बंधन में पड़कर भी निडरता पूर्वक अनिरुद्ध बाणासुर को धिक्कारने लगे। बाणासुर ने प्रकट होकर अत्यन्त क्रोधित होते हुए अपने मंत्री कुम्भाण्ड से कहा—'अरे कुम्भाण्ड। इस बालक का साहस तो देखो !' फिर निशस्त्र और बंधे हुए होने के कारण अनिरुद्ध के प्राण लेना अपनी वीरता के योग्य न समझते हुए बाण ने कुम्भाण्ड से कहा, 'इस वाचाल को तुम तुरन्त मार डालो।' कुम्भाण्ड ने कहा—' आप जैसा चाहेंगे वही होगा। किन्तु इसके वध से पूर्व यह जान लीजिए कि यह उच्च कोटी का पुरुष है। महावीर,

महापराक्रमी, महारथी और रणकुशल है। तेजस्वी, सुंदर और बलवान है। धैर्यवान, निडर और आपके दुर्ग में प्रवेश पाने के कारण बुद्धिमान है। (क्योंकि गुप्त रूप से ऐसे अभेद्य दुर्ग में साधारण बुद्धि का मनुष्य तो प्रवेश कर ही नहीं सकता।)। उस पर आपकी पुत्री ऊषा ने इसे पति मान लिया है। इससे योग्य जमाई संभवतः और कोई होगा भी नहीं, अतः मेरे विचार से यह वध योग्य नहीं है।'

'तब बाणासुर को भी एक महावीर का इस प्रकार बन्दी बनाकर वध कराना कायरता पूर्ण कार्य लगा। वह स्वयं अनिरुद्ध के पराक्रम को भुगत चुका था, यदि माया द्वारा वह बाँध न लिया गया होता तो नाकों चने चबवा देता। अतः वह कुम्भाण्ड से बोला–'तुम्हारा तर्क उचित और युक्तिसंगत है। यह वध किए जाने योग्य नहीं है। तुम इसकी रक्षा करो। किन्तु पूर्ण सतर्क रहते हुए, यदि यह स्वतंत्र हो गया तो पुनः कठिनाई से वश में आएगा।' –इस प्रकार बाणासुर ने अनिरुद्ध का वध न कर उसे बन्दी बनाए रखा।'

भगवान् शिव और श्रीकृष्ण का युद्ध

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'इधर अनिरुद्ध बन्दी

बना लिया गया। उधर द्वारिका में अनिरुद्ध के अपहरण से हाहाकार मच गया। रानियाँ रोने लगीं और यदुवंशी चिन्ता में पड़ गए–कि ऐसा कौन शत्रु है जिसने कृष्ण और बलराम जैसी महाशक्तियों का भी भय न मानते हुए उनके पौत्र अनिरुद्ध का अपहरण कर लिया ? तभी नारद जी ने वहाँ आकर बताया– 'आपका पौत्र शोणित-पुर में महापराक्रमी बाणासुर से लोहा ले रहा है। मैं अभी उसका रण कौशल देखकर आ रहा हूँ। उस महावीर ने अकेले ही शत्रुसेना के छक्के छुड़ा दिए हैं, और बाणासुर के दाँत खट्टे कर दिए हैं। वश न चलते देख बाण ने उसे 'नागपाश' में बाँध लिया है। आपका पौत्र बाणासुर की रूपमती पुत्री ऊषा से गंधर्व विवाह कर चुका है। अब आप वहाँ जाकर बाणासुर का अंत कीजिए और अपने पौत्र तथा पौत्रवधु को द्वारिका लाइए।' नारद द्वारा सब समाचार जानकर कृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्न के साथ गरुड़ पर शोणितपुर जा पहुँचे।"

अग्निगणों व शैव्यज्वर से युद्ध– 'शोणितपुर में रक्षार्थ महादेव द्वारा तैनात अग्नि प्रदीप्त हो गई। अग्नि के तेज से कृष्ण बलराम व प्रद्युम्न का रंग पीला हो गया। तीन शत्रुओं को शोणितपुर में प्रवेश करने आते देखकर अग्नि तीन मूर्तरूपों में परिवर्तित हो गया।

वे तीन अग्निगण इन तीनों से युद्ध करने लगे। तब गरुड़ ने हजार मुँह वाला होकर आकाश गंगा के जल को पीकर शोणितपुर पर बरसाया, जिससे अग्नि शाँत हो गई। तब वे अग्नि रूप को त्याग कर गणों के रूप में अपनी सेनाओं सहित युद्ध करने लगे। कलमाष, दहन, जठर, शोषण, तपन, पतंग, स्वर्ग, श्वागाध, भ्राज तथा पिठर–ये दस अग्नि गण भीष्ण युद्ध करने लगे।'

'दस अग्निगणों और उनकी सेनाओं के बीच अग्निमय रथ पर महर्षि अंगिरा भी त्रिशूल लेकर युद्ध में आ डटे। किन्तु कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न जैसे महावीरों के सामने वे अधिक समय तक टिक न सके। किन्तु उठापटक और मारधाड़ के कोलाहल को सुनकर बाणासुर के दैत्य सैनिक वहाँ आ धमके। प्रद्युम्न के बाण जाल ने उनको रोका और बलराम अपने हल द्वारा उन्हें खींच-खींचकर मूसल से उनको कूटने लगे। गरुड़ ने भी तीक्ष्ण चोंच, नखों और पंखों के प्रहार से बहुत से दैत्यों को यमलोक पहुँचाया। कोलाहल सुनकर तब शिव द्वारा नियुक्त शैव्यज्वर वहाँ नींद से जागकर अंगड़ाई लेता हुआ वहाँ आया। वह तीन पैर, तीन सिर, छः हाथ और नौ आँखों वाला भयंकर ज्वर बिजली के समान तड़क रहा था। बलराम द्वारा असुरों को कूटे जाते

देख उसने कुपित होकर बलराम के हृदय पर भस्म फेंकी। उसमें से कुछ बलराम के वक्ष पर और कुछ मेरुपर्वत के शिखर पर गिरी। जिससे पर्वत शिखर राख हो गया और बलराम के शरीर में तीव्र जलन होने लगी। उनके नेत्र लाल हो गए, श्वास दीर्घ हो गई, शरीर शिथिल, कम्पायमान और तापपूर्ण हो गया। चक्कर आने लगे और वमन होने लगी। कृष्ण ने तब बलराम को हृदय से लगा लिया। कृष्ण का स्पर्श पाते ही बलराम स्वस्थ हो गए और ज्वर का प्रभाव नष्ट हो गया। तब कृष्ण ने ज्वर को ललकारा।'

'हे राजन् ! उस ज्वर ने दोनों हाथों से जलते हुए महाभस्म को कृष्ण पर फेंका। कृष्ण के शरीर में भी उपद्रव आरम्भ हुए, किन्तु कुछ ही समय में शान्त हो गए। तब उन दोनों में मुष्टि युद्ध होने लगा। थोड़े ही समय में कृष्ण ने उसे उठा पटका। मरा हुआ जानकर उसे ठोकर से दूर धकेल दिया। तब ज्वर अदृश्य होकर कृष्ण के शरीर में जा घुसा। ज्वर के शरीर में प्रविष्ट होते ही कृष्ण ज्वर से लड़खड़ाने लगे। उनका शरीर भारी होकर टूटने लगा। उन्हें जम्हाइयाँ और अंगड़ाइयाँ आने लगीं। शरीर में ठिठुरन होकर रोंगटे खड़े हो गए। नेत्र मुँदने लगे और श्वास गहरे हो गए। साथ ही तवे के

समान शरीर गर्म हो गया। तब श्रीकृष्ण ने अपने भीतर वैष्णव ज्वर को उत्पन्न किया क्योंकि विष की चिकित्सा विष से ही होती है। काँटे को काँटे द्वारा ही निकाला जाता है। इस प्रकार शैव्यज्वर का प्रभाव समाप्त होने लगा। तब निष्क्रिय हुआ शैव्यज्वर कृष्ण के शरीर से बाहर निकल आया। कृष्ण ने तब उस ज्वर के तलवार से खंड-खंड करने के लिए तलवार उठाई तब प्राण भय से गिड़गिड़ा कर वह अभय माँगने लगा। तब आकाशवाणी ने भी ज्वर को नष्ट न करने के लिए कहा। अतः कृष्ण ने उसे छोड़ दिया। तब वह ज्वर कृष्ण को प्रणामकर लौट गया। –हे राजन् ! ज्वर समर के इस प्रसंग को पढ़ने मात्र से ही मनुष्य के शरीर में घुसा ज्वर निकल भागता है।'

सुदर्शन चक्र, मूसल, हल और बाणों के सम्मुख जब शोणितपुर की रक्षा के समस्त प्रारम्भिक उपाय विफल होने लगे और दैत्य सेना भागने लगी, तब एक ओर से मंत्री कुम्भाण्ड और बाणासुर समरांगण में पहुँचे और दूसरी ओर से वचन बद्ध होने के कारण इच्छा न होते हुए भी भगवान् शंकर कार्तिकेय के साथ वहाँ पहुँचे। तब मंत्री कुम्भाण्ड ने अति उत्साहित स्वर में भागती सेना से कहा, 'अरे शोणितपुर के वीरो ! पीठ

दिखा कर क्यों भागते हो ? अब तो तीनों लोकों में अजेय, महापराक्रमी तुम्हारे महाराज बाणासुर युद्ध में आ गए हैं। और मृत्यु के देवता महाकाल शिव स्वयं अपने पुत्र महावीर कार्तिकेय के साथ यहाँ उपस्थित हैं। फिर तुम भय क्यों मानते हो ? देवाधिदेव महादेव शिव को भला रण में कौन पराजित कर सकता है। तुम लोग लौट आओ।'—इस प्रकार उत्साहित करने के बाद भी प्रमथगणों को छोड़कर शेष दैत्य सेना भाग खड़ी हुई।

शिव और कृष्ण का युद्ध— 'तब कृष्ण के रूप में नारायण और महाकाल रुद्र का अप्रतिम, अकथनीय व अविश्वसनीय युद्ध हुआ। हर ने हरि को 'नाराच' नामक १०० बाणों से बींध डाला। तब कृष्ण ने शिव पर पर्जन्यास्त्र चलाया। उस अस्त्र के प्रभाव से भयंकर उल्का पात होने लगे, प्रचंड अंधड़ों के साथ रुधिर वर्षा तथा विद्युतपात होने लगे। शिव ने उत्तर में आग्नेयास्त्र चलाया, जिससे गरुड़ सहित वे तीनों (कृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्न) अग्नि से घिर गए और जलने लगे। तब कृष्ण ने महाबलशाली वरुणास्त्र द्वारा उसका निराकरण किया। हे राजन् अपना अस्त्र विफल होते देख शिव ने प्रलयकाल की अग्नि के समान तेजस्वी—पैशाचास्त्र, राक्षसास्त्र, रौद्रास्त्र तथा आंगिरास्त्र इन चार अस्त्रों को

एक साथ छोड़ा। श्रीकृष्ण ने तुरंत ही–वायव्यास्त्र, सावित्रास्त्र, वासवास्त्र तथा मोहनास्त्र द्वारा यदि सुरक्षा न कर ली होती तो भूमंडल पर प्रलय आ जाती। किन्तु हे राजन् ! कृष्ण द्वारा छोड़े गए अति तेजस्वी अस्त्रों से टकराकर शिव के अस्त्र प्रभाव हीन हो गए, और उन्हें प्रभावहीन करते हुए कृष्ण के अस्त्र भी निष्क्रिय हो गए। इस प्रकार आठ अति शक्तिशाली विध्वंसक (बम) मानो बिना चले (फूटे) ही निस्तेज हो गए।'

त्रिपुरांतक भगवान् शिव

'हे राजन् ! तब कृष्ण ने परम तेजस्वी वैष्णवास्त्र उठाया। वह जलता हुआ महा भयंकर अस्त्र कृष्ण के हाथ में आते ही समस्त दिशाओं को थरराने लगा। युद्ध विद्या में दक्ष और धर्नुविद्या में प्रवीण शिव ने उस महाभयंकर अस्त्र के निराकरण के लिए परमशक्तिशाली 'पाशुपतास्त्र' को हाथ में उठा लिया। दोनों अस्त्रों के असह्य तेज से पूरा भूमंडल जलने लगा। वायु स्तब्ध हो गया, जल शुष्क होने लगा। आकाश पिघलने लगा, भूमि डोलने लगी, पर्वत काँपने लगे और समुद्र अशाँत हो गया। तब कृष्ण ने 'शार्ङ्ग' नामक महाधनुष पर और शिव ने 'पिनाक' नामक महान धनुष पर उन परम विध्वसंक अस्त्रों का संधान किया। भूमि तब भयभीत होकर ब्रह्मा की ओर भागी और 'त्राहीमाम' करने लगी। सब देवता आदि भी भयकंपित होकर ब्रह्मा की शरण होते हुए बोले 'प्रभो ! इन दोनों महाशक्तियों को टकराने से रोकिए। अन्यथा प्रलय से पूर्व ही प्रलय आ जाएगी। तब ब्रह्म महायोद्धा शिव के पास जाकर बोले– 'हे महादेव ! अपने क्रोध को शाँत कर लीजिए। आपने स्वयं ही बाणासुर के वध की ऐसी व्यवस्था की थी, फिर अब उसकी रक्षा में सम्पूर्ण भूमंडल को अपने महातेज से दग्ध क्यों कर रहे हैं ? आप जानते ही हैं

आप और विष्णु एक दूसरे की आत्मा हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों ही एक दूसरे से पराजित नहीं हो सकते।'

शिव का युद्ध से उपरत होना—'ब्रह्माजी ने आगे कहा—'हे आशुतोष ! हे महावीर्य ! इन महान अस्त्रों के तेज को आप दोनों ही सह जाएँगे—किन्तु समूची सृष्टि नष्ट हो जाएगी। अतः हे प्रभो ! जगत् के कल्याण के हेतु आप युद्ध से विश्राम लीजिए।' तब शिव ने शाँत होते हुए कहा, 'आपका कहना उचित ही है ब्रह्मदेव ! किन्तु मैं वचन बद्ध होने से शोणितपुर की रक्षा करने को बाध्य हूँ। युद्ध से स्वेच्छा से उपरत नहीं हो सकता। अतः कृष्ण से कहिए कि वे 'जृम्भास्त्र—सम्मोहनास्त्र का प्रयोग करें। इस उपाय से मुझे युद्ध से उपरत होने का कारण मिल जाएगा। और कृष्ण शोणितपुर में प्रविष्ट हो सकेंगे।' तब ब्रह्मा के संकेत पर कृष्ण ने 'जृम्भास्त्र' का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से सम्मोहित होते हुए शिव पिनाक को त्याग कर नेत्र बंद कर जम्हाइयाँ लेने लगे।'—इस प्रकार वे युद्ध से उपरत हो गए।'

कार्तिकेय का युद्ध स्थल से जाना—'देवों के सेनापति कार्तिकेय तब प्रद्युम्न से युद्ध छोड़ कृष्ण के सम्मुख आ डटे। किन्तु कृष्ण से पार न पाते देख उन्होंने

'ब्रह्मशिरास्त्र' को चलाया। वह अतिभयानक अस्त्र पूरे भूमंडल में उपद्रव करता कृष्ण पर झपटा। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र द्वारा उस अस्त्र को काट दियां। तब कृष्ण कार्तिकेय पर सुदर्शन चक्र चलाने को हुए तो महादेव के प्रभाव से कोटवी देवी नग्न ही वहाँ उपस्थित हो गईं। कृष्ण ने तब उस ओर से मुँह फेर कर कहा कि वह कुमार को वहाँ से ले जाएँ, अन्यथा उन्हें कार्तिकेय कुमार का वध करना पड़ेगा। तब कोटवी देवी कुमार को युद्ध स्थल से ले गईं। इस प्रकार बाणासुर की समस्त रक्षा प्रणाली भंग हो गई। तब कृष्ण बाणासुर की ओर बढ़े। बाणासुर के वध के लिए उनकी भुजाओं की संख्या तब आठ हो चुकी थी।'

कृष्ण से बाणासुर का युद्ध व बाण की पराजय –वैशम्पायन जी ने आगे कहा– 'कृष्ण को अपनी ओर आते देख वह महाघमंडी बाण हँसता हुआ बोला– 'तुम आठ हाथों से मुझ १००० हाथों वाले का सामना किस प्रकार करोगे ? समर में तो मेरी ये हजार भुजाएँ करोड़ भुजाओं की भाँति दक्षता दिखाती हैं।' तब कृष्ण बोले– 'जिह्वा को व्यर्थ चलाने का क्या लाभ ? अपनी भुजाओं को चलाओ। मुझे विजित करो अथवा स्वयं नष्ट हो जाओ।' तब दोनों एक दूसरे पर

अविरल बाण वर्षा करने लगे। तथा कुम्भाण्ड से और प्रमथ गणों से बलराम व प्रद्युम्न उलझ गए। नारद आकाश में विचरते हुए पूर्व युद्धों की भांति, इस युद्ध को भी देखने लगे।'

'बाण के बाणों से कृष्ण और कृष्ण के बाणों से बाणासुर उसी प्रकार ढक गए जैसे मधु का छत्ता मधुमक्खियों द्वारा ढका जाता है। किन्तु दोनों ही एक दूसरे के बाणों को अपने बाणों से विफल करते हुए मेघों से निकल आए सूर्य की भांति शीघ्र ही शोभा पाने लगे। हजार भुजाएँ होते हुए बाण को उस युद्ध में पसीने छूटने लगे। और श्रम का अनुभव होने लगा।'

'तब वश न चलता हुआ पाकर बाणासुर ने कृष्ण पर दिव्यास्त्र चलाया। जिससे समूची पृथ्वी पर अंधकार छा गया। कृष्ण ने पार्जन्यास्त्र से उस अंधकार को दूर किया। बाणासुर ने क्रुद्ध होकर तब विकटास्त्र से कृष्ण पर मूसल, पट्टिश, कुलिश, परिध, शूल तथा परशु आदि शस्त्रों की वर्षा की। कृष्ण ने निवारणास्त्र द्वारा उनसे रक्षा कर तीक्ष्ण बाणों से उसकी पताका, घोड़ों तथा रथ को काट गेरा। हे राजन् ! अन्य बाणों से उसका कवच, मुकुट तथा शंकर द्वारा दिया 'कार्मुक' नाम का धनुष भी काट गिराए। बाणासुर तब कार्तिकेय द्वारा

दिए गए मोर पर सवार होकर युद्ध करने लगा। अत्यंत पराक्रम दिखाए जाने के बाद भी गरुड़ के प्रहारों से मोर तथा कृष्ण के भीषण बाण को हृदय पर खाने से बाणासुर मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। तब शिव वाहन नन्दी वहाँ बाणासुर की रक्षा के लिए उपस्थित हो गया। नन्दी ने बाणासुर को चेतित करके अपने रथ पर सवार कराया, तब बाणासुर ने ब्रहशिरास्त्र का संधान किया। कृष्ण ने सुदर्शन चक्र को ब्रह्मास्त्र को काटने के लिए उठा लिया। कृष्ण के हाथ में अजेय सुदर्शनचक्र को पार्वती ने लम्बादेवी को बाण की रक्षा के लिए भेजा। लम्बा देवी नग्न होकर कृष्ण व बाण के मध्य आ गईं। पार्वती की अंश लम्बा को नग्न देखकर कृष्ण ने लज्जा व मर्यादा वश मुख दूसरी ओर करके पूछा–

पार्वती द्वारा बाणासुर की रक्षा–'हे माँ ! आप इस अधम की रक्षा के लिए इस प्रकार निर्वस्त्र होकर युद्ध में क्यों आ गई हैं ? तब लम्बा ने कहा, 'हे वासुदेव! आप रण में अजेय हैं ? अतः आपसे मैं युद्ध करना नहीं चाहती, किन्तु बाण को मैंने पुत्र माना है। पुत्र तो कुपुत्र हो भी सकता है, माता कभी कुमाता नहीं होती। अतः बाण की रक्षा मेरा कर्त्तव्य भी है, अधिकार भी। आप

कृपया इसका वध करके मुझे पुत्र विहीन न कीजिए। अन्यथा मुझे आपसे इसी अवस्था में युद्ध करना होगा।'

'तब श्रीकृष्ण ने कहा, 'आप का कथन तर्कसंगत है, किन्तु आपका यह अभिमानी पुत्र एक हजार भुजाओं के गर्व से रणोन्मत्त रहता है तथा देवों व मानवों सभी के लिए कष्टकारी बन गया है। तो भी आपकी इच्छा का सम्मान करते हुए मैं इसका वध नहीं करूँगा। परन्तु इसके इन हजार हाथों को अवश्य काटूँगा। जिससे यह फिर अभिमान करके उपद्रव न करे। आपका पुत्र दो हाथों वाला होकर ही जीवित रहेगा।' कृष्ण के इस प्रकार कहने पर पार्वती की अंश लम्बा देवी अदृश्य हो गई। तब कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से बाण की दो भुजाएं छोड़कर अन्य भुजाओं को वृक्ष की शाखाओं की भांति काट कर भूमि पर गिरा दिया। इस प्रकार उस युद्ध में शोणितपुर की रक्षा का शिव का निश्चय तथा बाणासुर के वध का कृष्ण का निश्चय पूर्ण न हुआ, किन्तु बाण के प्राणों की रक्षा कर शिव ने तथा बाण की भुजाओं को काट कर कृष्ण ने अपना-२ उद्देश्य पूर्ण कर लिया।'

बाण का अमर हो, शिवगण बनना—'हे राजन्! शिव के वरदान से बाण अमर अजर हुआ तथा शिव के प्रमथ गणों में सर्वोपरी होकर 'महाकाल' के भी नाम से

जाना गया। कृष्ण तब अनिरुद्ध को मुक्त कराकर ऊषा सहित द्वारिका चले गए। (जब अनिरुद्ध बंधन में था तब उसने देवी के मुक्ति स्तोत्र से उनकी स्तुति कर शीघ्र मुक्त हो जाने का वर पाया था। शिव द्वारा युद्ध से उपरत होने पर मार्कण्डेय जी द्वारा रचे गए 'हरिहरात्मक स्तोत्र' से स्तुति की गई थी। बलराम जी ने प्रद्युम्न की आत्मरक्षा के लिए 'आह्निक स्तोत्र' का भी उपदेश दिया था। विस्तार भय से उन स्तोत्रों को हमने नहीं दिया है, क्योंकि वे आकार में बहुत बड़े हैं। पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे। इच्छुक पाठक मूल पुराण से वे स्तोत्र पढ़ सकते हैं) तथा शोणितपुर का राज्य बाणासुर के सुहृद किन्तु वीर और बुद्धिमान मंत्री कुम्भाण्ड को सौंप दिया। द्वारिका में ऊषा का नववधु के रूप में विधिवत् स्वागत हुआ।'

कृष्ण का वरुण लोक में बाण की गौएँ लेने जाना—वैशम्पायन जी आगे बोले—हे राजन् ! ऊषा का अनिरुद्ध से विधिवत् विवाह होने के बाद जब कुम्भाण्ड ने बताया कि बाणासुर की गौएँ—जिनका दूध पीने से दैत्य महाबली व दुर्जेय हो जाते थे—वरुण के अधिकार में हैं। तब ऐसी गौओं को तो द्वारिका में होना चाहिए।' यह विचार कर कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध

ने वरुण लोक पर आक्रमण किया। वरुण के ६०,००० सैनिकों को युद्ध में पराजित करके और वरुण को अंतिम अस्त्र 'वरुणास्त्र' को 'वैष्णवास्त्र' से निरस्त करके कृष्ण ने वरुण को समर्पण के लिए विवश कर दिया। तब गौएँ माँगे जाने पर वरुण ने कहा, 'प्रभो ! बाणासुर से हुई संधि के अनुसार मैं गौएँ किसी और को न देने के लिए वचन बद्ध हूँ। हे माधव ! मैं सन्धी की शर्तों को तोड़ नहीं सकता। आप चाहें तो मेरा वध करके गौएँ ले जा सकते हैं। मैंने समर्पण कर दिया है, अतः अब युद्ध नहीं करूँगा।' हे राजन् ! तब कृष्ण ने ना तो समर्पित हुए शत्रु का वध करना उचित समझा, न ही उसे बाध्य कर संधि की शर्त का उल्लंघन करवाना। अतः वे कृपालु—बलराम, प्रद्युम्न व अनिरुद्ध सहित बिना गौएँ लिए ही द्वारिका लौट आए। तब द्वारिका में उनका विधिवत् स्वागत् हुआ।'

'इस प्रकार हे राजन् ! जो-जो तुमने पूछा था सब मैंने बता दिया। कृष्ण विजय की ये समस्त कथाएँ नित्य पढ़ने वाले का पुण्य व कल्याण करने वाली हैं। अब और जो भी सुनना चाहते हो, सो मुझसे कहो।'

॥ ॐ नमोः भगवतेवासुदेवाय॥

द्वितीय पर्व समाप्त

भविष्य-पर्व

जनमेजय का वंश तथा कलियुग का वर्णन

यहां तक की कथा सुनने के बाद शौनक जी बोले-'हे लोमहर्षण-पुत्र सूत जी। आपने वैशम्पायन जी के द्वारा जनमेजय को सुनाई गई कथाओं को कृपा पूर्वक मुझ से कहा, अब कृपया मुझसे पाण्डवों के पुत्रों तथा राजा जनमेजय के वंशजों की कथा भी कहिए। मेरे मन में उनके विषय में जानने का बड़ा कौतूहल है।'

जनमेजय का वंश -तब सूत जी बोले, 'हे शौनक ! अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु तथा पौत्र परीक्षित हुए थे। परीक्षित ने काशीराज की कन्या से विवाह करके चन्द्रपाड़ तथा सूर्यपीड़ नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। सूर्य पीड़ योगमार्ग से मोक्ष को प्राप्त हुए। चन्द्रपीड़ से पाण्डवों का वंश आगे बढ़ा। उनके सैंकड़ों उत्तम पुत्र जनमेजय के गोत्र से प्रसिद्ध क्षत्रिय हुए। उनमें श्रेष्ठ 'सत्यकर्ण' नामक पुत्र वाराणसी का शासक हुआ। इस सत्यकर्ण का पुत्र श्वेतकर्ण हुआ। श्वेतकर्ण पुत्र हीन था। उसने संन्यास का आश्रय लिया। तब उसकी पत्नी 'भातृ मालिनी' को स्वयं के गर्भवती होने का ज्ञान

हुआ। वह पति की अनुगामिनी होकर वन में गई। वन में ही उसे प्रसव हुआ, किन्तु वह पुत्र मोह में न फंसकर पुत्र को वन में ही छोड़कर पति के पीछे ही चली। तब वह बालक वन में अकेला ही रोने लगा। वन से गुजरने वाले श्रविष्ठा के पुत्रों ऋषि पिप्पलाद और कौशिक ने दयावश उस बालक को उठा लिया। शिला पर ही नग्न लेटे हुए, रुदन के समय हाथ पैर चलाने से उसकी पीठ रगड़ खाने से श्यामवर्ण के बकरे के सदृश हो गई थी। अतः उसे 'अजपार्श्व' कहा गया। वह उन ऋषियों द्वारा ही पाला पोसा गया। बड़ा होने पर इसका विवाह हुआ और इससे पाण्डवों का वंश वृद्धि को प्राप्त हुआ।'

शौनक जी ने पूछा–'हे महर्षि। राजा जनमेजय ने जब वैशम्पायन जी से महाभारत के खिल भाग, 'हरिवंश पुराण' को भी सुन लिया, तब उन्होंने क्या किया ? यह सब भी मुझ पर कृपाकर बताइये। मैं जनमेजय के विषय में जानने का इच्छुक हूँ।'

सूत जी बोले, 'हे ऋषि शौनक ! जनमेजय ने तब सर्पयज्ञ किया। सर्पयज्ञ के पूर्ण हो जाने पर उस महान् राजा ने अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी की। अश्वमेघ यज्ञ की सुनकर धर्मज्ञ व्यास जी वहाँ आए। तब जनमेजय ने व्यास जी से कहा, 'हे प्रभो। मैंने आपके द्वारा रचित

महाभारत का एक वर्ष तक श्रवण किया। आपने मानो शंख में समुद्र भर दिया है। किन्तु अमृत पाकर भी जैसे कोई तृप्त नहीं होता इसी प्रकार मैं महाभारत के कथाअमृत का पान करके भी तृप्त अनुभव नहीं करता हूँ। कृपया मुझसे पौरव वंश के पतन का कारण कहिए। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि युधिष्ठिर द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ ही इस महाविनाश का कारण था। क्योंकि पहले सोम ने इस यज्ञ को किया था तब 'तारकामय' नामक महासंग्राम हुआ था। वरुण ने इस यज्ञ को किया तो देवासुर संग्राम हुआ था। राजा हरिश्चन्द्र द्वारा यह यज्ञ करने पर वशिष्ठ ने आड़ी (जलचर) तथा विश्वामित्र ने बक (बगुले) का रूप धारण किया और 'आड़ी-बक' नामक क्षत्रिय विनाशक युद्ध हुआ। इसी प्रकार युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ करने पर महाभारत नामक विश्वयुद्ध हुआ। जान पड़ता है कि इस अति कठिन और जटिल यज्ञ की रचना महायुद्धों के लिए ही की गई है। प्रभो ! ऐसा ही है तो आपने पाण्डवों द्वारा इसे किए जाते समय ही इस यज्ञ का निवारण क्यों न कर दिया ?'

'व्यास जी तब हँसते हुए बोले- 'हे राजन् ! काल की गति अटल है। काल के वशीभूत होकर तुम्हारे

पूर्वज की बुद्धि विपरीत हो गई थी, वे मुझसे भविष्य के विषय में परामर्श नहीं लेते थे और मैं बिना पूछे कुछ कहता नहीं हूँ। अतः तुम्हारे पूर्वजों के पतन तथा नाश का कारण और इससे पूर्व भी हुए महासंग्रामों विनाश का कारण काल ही है। राजसूय यज्ञ नहीं। हे राजन् ! काल द्वारा निश्चित भविष्य को पलट देने की सामर्थ्य मैं किसी में नहीं देखता। क्योंकि भविष्य जान लेने वाला भी काल से प्रेरित होकर विपरीत बुद्धि वाला होकर वैसा ही आचरण करता है, जैसा उसका काल आवश्यक समझता है। अब मैं तुमसे ही भविष्य को कहूँगा—किन्तु तुम काल के बलवान होने से भविष्य जानकर भी कोई उपाय नहीं कर सकोगे। सुनो ! यह अश्वमेघ यज्ञ अति श्रेष्ठ तथा क्षत्रियों के लिए यशदायी है। किन्तु इन्द्र तुम्हारे इस यज्ञ में व्यवधान डालेगा। अतः मैं कहता हूँ, कि इस यज्ञ को तुम न करो। क्योंकि विधाता द्वारा इस यज्ञ का भी विनाश होना भविष्य में निश्चित है। ब्राह्मण तब इस यज्ञ का फल बेचेंगे ! लेकिन तुम मेरी बात न मानकर इस यज्ञ को उत्साह के कारण, अति आत्म विश्वास के कारण अवश्य करोगे, क्योंकि वास्तव में काल तुमसे ऐसा कराएगा।'

'तब जनमेजय ने कहा, 'प्रभो ! यदि ऐसा ही है तो

मुझ से अश्वमेघ यज्ञ की निवृत्ति (समाप्ति–लोप) हो जाने का कारण कहिए। मैं प्रयास करूंगा कि ऐसा न हो।' यह सुनकर व्यास बोले– 'इस निवृत्ति का कारण ब्राह्मणों का कोप ही होगा। तुम परिहार (रोकने) का उपाय करना चाहो तो अवश्य करो। किन्तु तुम्हारे बाद पृथ्वी पर कोई भी क्षत्रिय अश्वमेघ यज्ञ नहीं करेगा। यह यज्ञ विनष्ट हो जाएगा।' (अर्थात् तुम्हारे प्रयासों के बाद भी ऐसा होना निश्चित है।) राजा जनमेजय तब घबराबर पूछने लगा, 'क्या अश्वमेघ यज्ञ की मेरे कारण विनष्ट होने के बाद कभीं पुनरावृत्ति नहीं होगी ? क्या यह सदा विलुप्त ही रहेगा ? व्यास जी ने कहा– 'कलियुग में ब्राह्मणों का नेता कोई कश्यप नाम का ब्राह्मण भूमि के विवर से प्रकट होकर इस यज्ञ को पुनः लौटाएगा। उसी ब्राह्मण के कुल का कोई राजसूय यज्ञ को भी करेगा। हे राजन् तब श्रद्धानुसार ही यज्ञफल मिला करेगा।'

कलियुग वर्णन –विध्न की आधिकता के कारण थोड़ा धर्म भी बड़ा फल देगा। किन्तु मनुष्य धर्माचारों की खिल्ली उड़ाएँगे। अधर्मी हो जाएँगे। उनके मन, प्राण व इन्द्रियाँ प्राचीन मुनष्यों की भाँति शिष्टता और संयमपूर्ण आचरण नहीं करेंगी। अर्थ (धन) की ही तब ईश्वर मानकर पूजा होगी। मर्यादाएँ नष्ट हो जायेंगी।

मनुष्य का उद्देश्य केवल स्वार्थ पूर्ति, व्यभिचार और भ्रष्टाचार ही रह जाएगा। प्रजा नास्तिक हो जाएगी। अतः उस काल में थोड़ा सा भी तप फल देने वाला होगा। दान व नाम (जप-कीर्तन) ही तब कल्याण कारी होंगे।'

'हे राजन् ! कलियुग के प्रभाव से ऋतुओं के भी स्वभाव बदल जाएँगे। स्त्रियाँ शील, लज्जा और लोकाचार खो देंगी। पुरुष अपना पौरुष, सज्जनता तथा सद्‌गुण खो देंगे। जुआ, मदिरा, नशा, नृत्य व अश्लीलता ही तब सत्कार तथा संस्कृति बन जाएँगे। पाप का साम्राज्य होगा। –यह सब युगधर्म है, तुम या कोई अपने प्रयासों से युगधर्म को या कलियुग के आगमन को रोक नहीं पाओगे। –तब जनमेजय द्वारा पूछे जाने पर व्यास जी ने कलियुग का और भी वर्णन किया। वे बोले–'

'राजा प्रजा पर कर लगाएँगे, किन्तु रक्षा नहीं करेंगे, उल्टा प्रजा को शोषण और उनके धन व सम्पत्ति का हरण करेंगे। आश्रम व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। ब्राह्मण शूद्रों व अन्य वर्णों के कार्य करने लगेंगे तथा शूद्र ब्राह्मण आदि अन्य वर्णों के कार्य करेंगे जिससे वर्ण संकरता (शूद्र पहचान–अस्तित्व का न होना) उत्पन्न हो जाएगी। सब एक ही पंक्ति में भोजन करेंगे। ब्राह्मणों

का आदर नष्ट हो जाएगा। पिता-पुत्र, भाई-बहन, माँ-बेटे आदि के साथ गुरुशिष्य की भी मर्यादाएँ नष्ट हो जाएँगी। बुजुर्गों को सम्मान के स्थान पर तिरस्कार प्राप्त होगा। मित्र, मित्र के धर्म का पालन न करेंगे। एक बर्तन में खाना खाना अथवा साथ-साथ मनोरंजन (तफरीह) करना ही मित्रता का लक्षण मान लिया जाएगा।'

'तब अधिकतर मनुष्य कलपुर्जों का ज्ञान रखने वाले होंगे, किन्तु झूठे, कपटी, स्वार्थी, अवसरवादी, अधर्मी (बेईमान), दूसरे के परिश्रम या अधिकार में अपना हक जताने वाले (लूट तथा दलाली) होंगे। मद्य तथा माँस भक्षी होंगे। -स्त्री को मित्र समझेंगे। स्त्री भी चारदीवारी लाँघ कर पुरुषोचित्त कार्य करेंगी। अन्न, वेद, शिक्षा, इज्जत तथा यज्ञफल बिकने लगेंगे। गौओं की हत्याएं होने से तथा उनकी सेवा न होने से उनका क्षय (कमी) हो जाएगी। दो-दो वर्ष के बछड़ों को भी बैलगाड़ी में जोता जाएगा। मौसमों का समय बदल जाएगा। लोग व्यसनी व दुर्मति होंगे। प्राकृतिक सम्पदाओं का अंधे स्वार्थ के कारण अंधाधुंध दोहन होगा तथा प्रकृति को विकृत (प्रदूषित) किया जाने लगेगा। स्त्रियों के केशों का कटे होना उनकी शोभा समझा जाएगा।

पुरुष कम तथा स्त्रियाँ अधिक हो जाएँगी। मरुस्थल व समुद्र विस्तार को प्राप्त होंगे। मेघ बालू की वर्षा करेंगे (शुद्ध जल अप्राप्य हो जाएगा)। लोगों को परलोक पर अविश्वास हो जाएगा। ज्ञानी भी दुराचारी हो जायेंगे। सत्ता, गुण, शक्ति, विद्या, ज्ञान, अधिकार तथा सुविधा आदि का दुरुपयोग होने लगेगा। शपथ तथा वचन का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। ऋण लेने वाला आभार न मानकर ऋणदाता को ही आँखें दिखाएगा। शास्त्र लुप्त हो जाएँगे। गाल बजाने वाले पाखंडी को ही धर्मगुरु मान लिया जाएगा। पिता पर पुत्र, सास पर बहू, गुरु पर शिष्य तथा पुरुष पर स्त्री शासन करेगी।'

'उपकार के बदले कोई उपकार नहीं करेगा। व्यभिचार संस्कृति का भंग होगा। तब कोई भी रोग तथा व्याधि से रहित न होगा। मनुष्य पशुओं से भी रमण करेंगे। हे राजन् ! राज्य पर पुरुषों के स्थान पर स्त्रियाँ शासन करेंगी। बाद में स्त्रियों के भी स्थान पर नपुंसक शासन करेंगे। ज्ञान, विद्या, न्याय, धर्म और शील इन सबका लोप हो जाएगा। ईश्वर का नाम लेने वाले को प्रजा पत्थर मारा करेगी। कपटी पूजे जाएँगे। शस्त्रधारी, रक्षक और अंगरक्षक (सेना, पुलिस बॉडीगार्ड) ही भक्षक हो जाएँगे। मनुष्य सर्वभक्षी तथा अखाद्य पदार्थों को भी

खाने वाले होंगे। पुरुष का पुरुषत्व (मर्दानगी-संभोग योग्यता) क्षीण हो जाने से वे स्त्रियों के आज्ञापालक, उनके दास तथा विषम रति द्वारा उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करने वाले हो जायेंगे (विषम का अर्थ है जो सम न हो–अतः इसमें सभी प्रकार के अप्राकृतिक मैथुन आ जाते हैं)। भूमि की भी उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाएगी। सूर्य का ताप बढ़ जाएगा। अतिथि के आने पर प्रसन्नता नहीं होगी। केवल धन कमाना और उपभोग करना ही मनुष्य मात्र का लक्ष्य होगा।' इस प्रकार बताकर और कभी पुनः आने का आश्वासन देकर वे महाज्ञानी, धर्मज्ञ, त्रिकालदर्शी व्यास जी लौट गए।'

राजा जनमेजय द्वारा यज्ञ का होना

सूत जी ने आगे कहा, 'हे शौनक ! व्यास जी के द्वारा सब कुछ जान लेने पर भी राजा जनमेजय काल द्वारा प्रेरित हुआ, 'मैं उपाय कर लूँगा–'ऐसा सोच कर अश्वमेघ यज्ञ के लिए दीक्षित हो गया। जब घोड़े की बली दी गई। तब नियमानुसार (पत्नी के अभाव में यज्ञ पूर्ण नहीं होता) काशीराज की अति सुंदरी पुत्री व पुष्टमा उसकी पटरानी होने से उसके (जनमेजय के) साथ बैठ गई। तब इन्द्र उस सर्वांग सुंदरी पर मोहित हो

गया। अतः वह उस वध किए हुए घोड़े में जा छिपा और वपुष्टमा से मिल गया। तब घोड़े को जीवित देखकर यज्ञ को विकार ग्रस्त हुआ देखकर जनमेजय क्रुद्ध होकर अध्वर्यु (यज्ञ पुरोहित) से बोला– 'यह अश्व तो जीवित है। तुम्हारा नाश हो।' अध्वर्यु ने इस अनहोनी पर विचार करने के लिए ध्यान लगाया, और सब कुछ जानकर राजा को बताया। तब राजा जनमेजय क्रुद्ध होकर इन्द्र से बोला, 'हे कामी ! तेरे अधर्माचरण व कपट से मेरा यज्ञ भंग हुआ है। अतः आज से कोई भी क्षत्रीय अश्वमेघ यज्ञ में तेरा पूजन न करेगा।' फिर वे क्रोध के आवेग में ऋत्विजों (यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण) से बोला, ' आप लोगों के ज्ञान और प्रभाव के होते हुए भी इन्द्र मेरा यज्ञ भंग कर सका, यह आप लोगों की दुर्बलता है। अतः आप मेरे राज्य से निकल जाएँ।' तब भी जनमेजय का क्रोध शाँत न हुआ। अतः उसने अपनी रानी वपुष्टमा को भी दूषित हुई मानकर घर से निकाल दिया।'

'तब गंधर्वराज विश्वावसु ने वहाँ आकर जनमेजय से कहा– 'राजन्! आपने तीन सौ यज्ञ करके इन्द्र की बराबरी कर ली थी। इसीलिए ईर्ष्यावश उसने रम्भा नामक अप्सरा को वपुष्टमा के रूप में यहाँ भेजा था।

आप यह यज्ञ करके उससे आगे निकलने वाले थे, अतः उसने अवसर देखकर आपके यज्ञ का नाश कर दिया। वपुष्टमा के रूप में इन्द्र ने रम्भा से रति की है। आपने इस सत्य को न जानते हुए तीन सौ यज्ञ सम्पूर्ण करवाने वाले ऋषियों का अपमान कर दिया है, साथ ही अपनी निर्दोष पत्नी को भी दण्डित कर रहे हैं। आप इन्द्र पुत्र अर्जुन के प्रपौत्र हैं। इस नाते इन्द्र अपने ही कुल की वधु से रमण नहीं कर सकता था, इसीलिए उसने रम्भा को आपकी पत्नी के रूप में यहाँ भेजा था। स्त्री (पत्नी) तो लक्ष्मी की भाँति होती है। उसका आदर किया जाना चाहिए।'– विश्वावसु के ऐसा समझाने पर जनमेजय को अपनी भूल का अनुभव हुआ। वह पछताता हुआ बोला–'ओह ! इस विषय में भविष्य वक्ता वेद व्यास जी ने मुझे पहले ही सावधान किया था। किन्तु मैंने उनकी बात न मानी। और ऋषियों तथा ब्राह्मणों का अनादर किया। मेरी इस भूल से अब इस यज्ञ का भूमंडल से लोप हो जाएगा। आह ! मुझको धिक्कार है। और ईर्ष्यालु इन्द्र को भी धिक्कार है।' तब विश्वावसु ने कहा, 'आप खिन्न न हों। इसमें न तो आप ही का कोई दोष है, न इन्द्र ही का। काल की गति ही महान है। वह जैसा चाहती है, मनुष्य से वैसा ही कराने के लिए बुद्धि

पलट देती है।'

सूत जी ने आगे कहा, 'इस प्रकार हे शौनक तुम्हारे द्वारा पूछे जाने पर मैंने इन बातों को पहले कह दिया। अब राजा जनमेजय और वैशम्पायन ऋषि की उस चर्चा को कहता हूँ, जिसे मैं प्रारम्भ से कह रहा था और वह बाणासुर के प्रसंग के बाद बीच ही में रह गई थी। जब बाणासुर और वरुण के पास रखी बाणासुर की गौओं का प्रसंग सुनाने के बाद वैशम्पायन जी ने जनमेजय से कहा कि और जो सुनना चाहते हो, कहो। तब जनमेजय ने नारायण के विषय में, उनके कार्यों के विषय में और भी जानने की इच्छा व्यक्त की थी। तब परम ज्ञानी वैशम्पायन जी ने इस प्रकार कहा था–

सनातन ब्रह्म, सनातन धर्म तथा कर्मफल

(विष्णु की महत्ता)

'हे राजन् ! तुमसे पहले बता ही चुका हूँ कि सतयुग आदि चार युगों और उनकी संध्याओं का काल कितना होता है। अब इन युगों के चार चरणों को कहता हूँ। सतयुग में युग के चारों चरण–तप, शौच, सत्य तथा दया होते हैं। अत यह चार चरणों वाला कहा गया है। त्रेता युग में धर्म के तीन ही चरण रह जाते हैं। द्वापर में

दो और कलियुग में एक ही चरण रह जाता है। एक चर्तुयुग (१२००० वर्ष) का एक 'महायुग' होता है। ७१ महायुगों का एक मन्वन्तर होता है। इस प्रकार ब्रह्मा के दिन-रात तक तुमसे सृष्टि की उत्पत्ति के प्रसंग में पहले कहे ही थे। और सृष्टि-प्रलय का क्रम भी कहा था। स्थूल व सूक्ष्म जगत् की उत्पत्ति। अहंकार, पंचमहाभूत आदि के संबंध में भी पहले कह आया हूँ। उन सृष्टि तथा प्रलय के कर्त्ता व कारण भगवान् नारायण को पूर्णता से जानने वाला कोई नहीं है। वे सनातन और सच्चिदानन्द हैं। जो उन्हें जान लेता है, वह उन्हीं का अंश हो जाता है। जिस प्रकार बूँद सागर में मिल कर सागर हो जाती है।'

'भूत, भविष्य, वर्तमान–तीनों काल, सत, रज, तम–तीनों गुण, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश–पाँचों महाभूत, बुद्धि सहित, मन सहित, समस्त इन्द्रियाँ, अहंकार आदि सब भाव, पृथ्वी और अंतरिक्ष सहित, सूर्य व नक्षत्रों सहित समूची सृष्टि, चर तथा चराचर जगत, समस्त प्राणी–और भी सब कुछ इन्हीं नारायण से उत्पन्न होकर इन्हीं में लीन हो जाते हैं। इस सृष्टि में जो कुछ भी है, और जो कुछ नहीं भी है–वह सब नारायण ही है। ब्रह्मा के रूप में रचना, विष्णु के रूप

में पालन तथा शिव के रूप में संहार या लय करने वाले वे एक नारायण ही हैं। संसार के सभी कार्य, सभी विषय, सभी रूप उन्हीं के हैं वे सृष्टि कर्त्ता होते हुए भी स्वयं सृष्टि हैं। सृष्टि के पालक होते हुए भी स्वयं सृष्टि हैं और सृष्टि के संहारक होते हुए भी स्वयं सृष्टि हैं। हे राजन् ! वे इस प्रकार से अपनी ही रचना, अपना ही पालन और अपना ही लय करते हैं। किन्तु सृष्टि में होते हुए भी, सृष्टि में रहते हुए भी, स्वयं सृष्टि होते हुए भी वे सृष्टि से परे हैं। कोई गुण, दोष, रूप, स्वभाव, आरोप उन्हें लिप्त नहीं करता। वे स्वयं सृष्टि में होते हुए भी सृष्टि से बाहर रहकर निर्लिप्त भाव से लीला करते रहते हैं। उन्हें समझा नहीं जा सकता।'

वे अज्ञेय, अपरिमेय, अप्रतिम, अद्वितीय, अनादि, अव्यक्त, अबोध, अविनाशी, अमर, अजर, अविकारी, अजन्मा, अक्षर, अलौकिक, अग्राह्य, अन्तर्यामी, अद्‌भुत, अनन्त, असीम, अरूप, अलभ्य तथा अदृश्य हैं। वे प्रभु, विभु, स्वयंभू, सनातन, सच्चिदानन्द, साकार, सगुण, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वरूप, सर्वेश, सत्य, सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ और सर्वगुण सम्पन्न हैं। वे निर्विकार, निर्लेप, निर्लिप्त, निर्गुण, निराकर, निस्पृह, निगम, निशंक, निर्भक, नवीन, नित्य तथा परमात्मा हैं। इन्हीं के विषय

में इसीलिए वेद 'नेती-नेती' (इतना ही नहीं-नहीं) कहते हैं।' वे परम कृपालु, दयालु तथा शरणागत वत्सल हैं। गुणों के भंडार हैं। उनके कार्य, गुण, विशेषताएँ कही ही नहीं जा सकतीं, क्योंकि जो कुछ है सब उनका है, जो नहीं भी है, वह भी उन्हीं का है। वे वर्णनातीत हैं। अग्राह्य हैं।'

'हे राजन् ! उन प्रभु नारायण को केवल योग द्वारा ही जाना जा सकता है। किन्तु कोई-कोई ही उन्हें जान पाता है। और जो कोई भी जान पाता है, वह स्वयम् नारायण हो जाता है। वेद, उपनिषद् शास्त्र, पुराण आदि सब योग को और नारायण के समझने के साधन हैं। अतः ज्ञानार्थी को इन्हें अवश्य पढ़ना या सुनना चाहिए। जल द्वारा समस्त जगत् के ढक जाने पर (प्रलय) अर्थात् लोक के एकार्णव हो जाने पर यही नारायण उस महार्णव के मध्य शेष शैय्या पर शयन करते हैं। फिर सृष्टि की इच्छा होने पर यही महानुभाव अपनी नाभि कमल से ब्रह्म को उत्पन्न करके सृष्टि का आदेश देते हैं। इस विषय में तुमसे महामुनी मार्कण्डेय का विलक्षण अनुभव कहता हूँ। प्रभु के वरदान से उनकी आयु हजारों वर्षों से भी अधिक है। वे पहले भगवान् की कुक्षी में ही जीर्ण हो गए थे। बाद में भगवान् के मुख से

प्रकट हुए। तब देवमाया के प्रभाव से वे स्वयं को न जान पाए।'

'मुख से निकलते ही एकार्णव (जलमग्नसृष्टि) में पहुँच कर वे अंधकार से ढके समुद्र को सब ओर देखकर भयभीत हो गए। तब उन्हें नारायण के दर्शन हुए। उन्हें देखकर वे महामुनी सोच में पड़ गए। 'यह कौन हैं ? यहाँ अकेला क्या कर रहा है ? यहाँ सब ओर अंधेरे से ढका समुद्र ही क्यों दिख रहा है ? आदि प्रश्नों से वे व्यथित हो गये। तब उन्होंने पूछा–'हे देव ! आप कौन हैं ? प्रभु ने तब उन्हें अपनी कुक्षी में प्रविष्ट कर लिया कि वह स्वयं देखे और जान लें। वहाँ उन्हें सैंकड़ों ब्राह्मणों को उनकी पूजा में तल्लीन देखा। एक लाख वर्षों तक कुक्षि में घूमने के बाद भी उन्हें कोई अन्त न मिला।'

'जब वे पुनः भगवान् के मुख से निकले तो उन्होंने वटवृक्ष पर सोता हुआ एक बालक देखा। फिर चारों ओर समुद्र देखकर भयभीत हो गए। तब भगवान् बोले–'मार्कण्डेय ! डरो मत। मेरे पास आओ। तुम बालक होने से थक गए हो और भयभीत हो गए हो।' तब मार्कण्डेय को बड़ा अचरज हुआ। उनकी हजारों लाखों वर्ष की आयु और तप का निरादर करते हुए

कौन उन्हें नाम से पुकार रहा है ? ऐसा विचार करने से उन्हें क्रोध हुआ। ब्रह्मा तक उन्हें 'दीर्घायु' कह कर बुलाते हैं, फिर नाम से बुलाने की धृष्टता कौन कर रहा है ? तब बालक के रूप में वह भगवान् पुनः बोले, पुत्र ! मैं तुम्हारा जनक, गुरु, पिता, पुराण पुरुष हृषिकेश हूँ। तुम्हारे पिता ऋषि अंगिरा ने मुझे तप से प्रसन्न कर तुमको प्राप्त किया था।' यह सुनकर मार्कण्डेय ने प्रणाम किया और कहा–'प्रभो मैं बहुत चकित हूँ। आपकी माया को तत्व से जानना चाहता हूँ।'

'तब भगवान् नारायण बोले–हे मार्कण्डेय ! तुमने मेरे मुख से निकलकर और कुक्षी में प्रवेश कर और फिर मुख से पुनः निकलकर जो कुछ भी देखा, वह सब मैं ही हूँ। जो कुछ नहीं भी देखा, वह भी मैं हूँ। जो कुछ आगे देखागे, वह भी मैं ही हूँगा। जो कुछ नहीं भी देखोगे, वह भी मैं ही हूँगा। इससे पूर्व भी जितना कुछ तुम देख चुके हो, वह मैं ही हूँ। और जो कुछ नहीं देख पाए, वो भी मैं ही हूँ। मैं नारायण हूँ। इस सृष्टि में जो कुछ है–सब मैं हूँ। जो कुछ नहीं है, वह भी मैं हूँ। तुम जो हो, वो भी वास्तव में मैं ही हूँ। किन्तु तुम अहं, अज्ञान और माया के कारण स्वयं को मुझसे अलग जान रहे हो। जब तुम्हारा अहं, अज्ञान और माया का

आवरण हट जाएगा। तब तुम मुझे तत्वतः जान सकोगे।'

'इस प्रकार हे राजन् ! परम ज्ञानी मार्कण्डेय जी भी उन नारायण का आंशिक दर्शन ही कर पाए। (औरों की तो बात ही क्या है) इससे अधिक उन सनातन ब्रह्म के विषय में मैं तुमसे और क्या कहूँ।' कहकर सूत जी मौन हो गए। 'फिर पुनः गम्भीरता पूर्वक बोले–'हे राजन् ! जो कुछ भी जगत में होता है। सब उन सनातन ब्रह्म द्वारा पूर्वनियोतित होता है। प्राणी अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल पाते हैं। वे प्रभो समदर्शी होने से सभी को उनकी पात्रता और योग्यता के अनुसार फल देते हैं। तप द्वारा अधिकारी बन जाने पर दैत्यों व असुरों को भी वरदान और उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। किन्तु दुष्कर्म या दुरुपयोग करने पर उनसे छीन भी ली जाती हैं। मनुष्य की बुद्धि उसी अनुसार कार्य करती है जैसे फल वह पूर्व कर्मों द्वारा निश्चित कर चुका होता है। इसमें ईश्वर को दोष देना मूर्खता है। समुद्र के पास अथाह जल होता है, किन्तु जिसके पास जितना बड़ा बर्तन हो, वह उतना ही जल लेजा पाता है। इसके लिए समुद्र को तो दोष नहीं दिया जा सकता। अतः मनुष्य को सद्कर्म ही करने चाहिएँ। अथवा कर्मों को उनके फलों सहित नारायण को समर्पित करते रहना चाहिए। या

फिर योगाग्नि द्वारा संचित कर्मफलों को जला डालना चाहिए। यही मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। यही सनातन धर्म है। हे राजन् ! हृदय से समर्पण करने वाले, सच्चे भक्त तथा सब कुछ छोड़कर शरण में आए हुए पर नारायण अवश्य ही कृपा करते हैं। यह उनके प्रमुख कर्मों में से एक है। वे करुणा सिंधु तो ऊपरी मन से (दिखावे के तौर पर) 'नाम' लेने वाले पर भी कुछ न कुछ कृपा अवश्य करते हैं। फिर जो उनका अनन्य भक्त है, उस पर कृपा क्यों न करेंगे।'

'संसार के सब प्राणी काल से प्रेरित होते हैं। काल व्यक्ति के पूर्व कर्मों से प्रेरित होता है। कर्म बुद्धि से प्रेरित होते हैं और बुद्धि काल से प्रेरित्त होती है। यही माया जाल है। जिसमें मनुष्य उलझकर स्वयं को कर्त्ता मान सुखी या दुखी होता है। किन्तु वास्तव में ये सब कुछ उस सनातन ब्रह्म अविनाशी, ईश्वर नारायण द्वारा ही प्रेरित होते हैं।'

विष्णु द्वारा इन्द्र को बन्दी बनाने वाले मधु का वध

१. (हयग्रीवावतार)

जनमेजय द्वारा आग्रह करने पर तब वैशम्पायन जी

ने नारायण श्री विष्णु के कुछ और चरित्रों का वर्णन करते हुए कहा एक बार मधु नामक अत्यंत शक्तिशाली दैत्य ने इन्द्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करने की इच्छा से उसे पराजित करके पाशों से बाँध कर पर्वतों में छिपा दिया। तब प्रह्लाद द्वारा विष्णु का गुणगान सुनकर वह दुर्बुद्धि विष्णु को ललकारता हुआ युद्ध के लिए आमंत्रित करने लगा। अन्य दानव भी मधु को अपना नेता मानकर उसके पीछे हो लिए। तब गंधर्व तथा किन्नर आदि देवताओं के पक्ष में एकत्रित होने लगे। विष्णु भगवान भी वहाँ आ गए। विष्णु को देखकर मधु ने उनकी गर्दन पर मुष्टि प्रहार किया। जिससे विष्णु विचलित हुए बिना ही खड़े रहे। तब विष्णु ने मधु की छाती पर मुष्टि प्रहार किया। जिससे मधु घुटनों के बल भूमि पर गिरकर मुँह से रक्त उगलने लगा। तब झपट कर खड़ा होता हुआ वह महाबली विष्णु से बाहुयुद्ध करने लगा। उस भयंकर युद्ध को देख ऋषि, सिद्ध आदि विभिन्न स्तोत्रों द्वारा विष्णु को मधु के वध के लिए उत्साहित करने लगे।'

'उन्होंने कहा–'एक रूप होते हुए भी आप अनेक रूप हैं। सृष्टिकर्ता तथा लयकर्त्ता हैं। सर्वशक्तिमान परमेश्वर हैं। आप ही देवों, दानवों तथा मानवों आदि

को पालते हैं। आप यज्ञकर्त्ताओं की पुष्टि को बढ़ाते हैं आप ही काल स्वरूप हैं आप ही प्रलय काल में उपस्थित होकर समूची सृष्टि को लील जाते हैं। आप ही वेदों की उत्पत्ति के स्थान हैं। सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, अग्नि आदि आप ही हैं। आप ही यम हैं आप ही ब्रह्मा और शिव हैं। आप ही वनस्पतियों, औषधियों, नदी, पर्वतों, सागरों, आकाश, भूमि, नक्षत्रों तथा सब चराचर जगत को उत्पन्न करने वाले हैं। आपके समान केवल आप ही हैं, कोई अन्य नहीं।' इस प्रकार प्रशंसित होकर भगवान् विष्णु ने 'हयग्रीव' नामक विशाल रूप धारण किया और मधुदैत्य का वहीं पर वध कर डाला। तब देवराज इन्द्र को स्वतंत्र किया और मधु तथा उसके साथी केटभ आदि दैत्यों से प्रजा की रक्षा की। यह नारायण का हयग्रीव या अश्वशीर्ष अवतार कहा जाता है। अवतार धारण कर सज्जनों की रक्षा व दुष्टों का नाश भी भगवान् विष्णु का एक प्रमुख कार्य है।'

देवताओं को शस्त्रास्त्र देना–वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे राजन्! देवताओं को शस्त्र-अस्त्र प्रदान करने वाले भी यही हरि विष्णु ही हैं। तप से संयुक्त हुए देवताओं ने विष्णु को देखने की इच्छा से यज्ञ किया था तब उस यज्ञ से १६ भुजाओं वाले शस्त्रास्त्रों से युक्त यज्ञ

पुरुष, पुराण पुरुष श्री विष्णु अत्यंत तेजस्वी, 'ब्रह्मदण्ड' नाम के आकार से प्रकट हुए। तलवार, ढाल, धनुष, शक्ति, तोमर, पाश, वज्र, खड्ग, शूल, त्रिशूल, मूसल, हल, चक्र, बाण, परश्वध, पट्टिश, दण्ड परशु, गदा आदि अनेक हथियारों को वे धारण किए हुए थे। तब इन्द्र ने वज्र को, बलराम-संकर्षण ने हल व मूसल को, रुद्र ने त्रिशूल तथा पिनाक नामक धनुष को, मृत्यु (यम) ने दण्ड को, वरुण ने पाश को, त्वष्टा ने परशु को, काल ने शक्ति को, कुबेर ने परश्वध को तथा अन्य देवताओं ने अन्य शस्त्र अस्त्रों को उनसे लिया। सुदर्शनचक्र, शार्ङ्गधनुष तथा कौमोद नामक गदा को विष्णु ने पद्म और शंख सहित अपनी ही भुजाओं में रखा। तब विष्णु ने दितिपुत्र दैत्यों की चतुरांगिणी सेना का संहार भी किया। इस प्रकार समय-२ पर देवताओं का हित करने के लिए, असुरों के नाश के लिए तथा पृथ्वी के कल्याण के लिए विभिन्न लीलाएँ करते हैं। अतः उन नारायण श्री विष्णु को 'लीलाधर' भी कहा जाता है।'

समुद्र मंथन में देवताओं की सहायता

२. (कूर्मावतार)

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'इसी प्रकार एक बार

समुद्र मंथन के समय विष्णु ने देवताओं को सहयोग दिया था। समुद्र में औषधियां डालकर मथने से सोमज जल-अमृत के प्राप्त होने की कामना से समुद्र मंथन का कार्यक्रम बनाया गया था। देवताओं का प्रभाव बढ़ाने के लिए अमृत की आवश्यकता थी। अमृत प्राप्ति का उपाय समुद्र मंथन था। किन्तु यह विकट कार्य अकेले देवताओं के वश का न था अतः बलशाली दानवों को भी इस महान कार्य के लिए समझा बुझाकर सम्मिलित कर लिया गया। यद्यपि दानव देवताओं के विरोधी थे, किन्तु अमृत, रत्न तथा सम्पदाओं की प्राप्ति के लोभ में वे तैयार हो गए। विष्णु ने ऐसा पहले ही तय कर लिया था कि अमृत प्राप्ति के बाद अमृत दानवों को न मिले। अतः देवताओं को भी दानवों के सहयोग से मंथन करने में कोई आपत्ति न हुई। यह निश्चय किया गया कि सागर मंथन के लिए अति विशाल और सुदृढ़ मथनी की आवश्यकता को मन्दराचल से पूर्ण किया जाएगा और मथनी को चलाने के लिए विशाल तथा सुदृढ़ रस्सी की आवश्यकता शेषनाग से पूर्ण की जाएगी। तब एक ओर से दानव और दूसरी ओर से देवता शेषनाग द्वारा मन्दराचल को घुमा कर सागर को मथेंगे। और विष्णु कूर्मावतार लेकर विशाल कछुए के रूप में

अपनी विशाल पीठ के आधार पर मंदार पर्वत को धारण करेंगे।'

'इस प्रकार उन लोगों ने १००० वर्षों तक समुद्र को मथा। तब दानव शेषनाग के फनों की ओर होने से उसकी, फुफकारों से निकलने वाली अग्नि से पीड़ित व श्रमित होते रहे। देवताओं को पूँछ की ओर रहने से तथा ईश्वर की कृपा से मेघों की छाया मिल जाने के कारण विशेष कष्ट न हुआ। उस मंथन द्वारा सर्वप्रथम सागर के गर्भ से कालकूट नामक एक महा भयानक विष निकला। जिससे पूरा भूमंडल संतप्त होने लगा, तब आशुतोष शिव ने लोक कल्याण के लिए उस विष को अपने कण्ठ में धारण किया और 'नीलकंठ' कहलाए। बाद में समुद्र से उच्चैश्रवा, ऐरावत, कौस्तुभमणि, धन्वन्तरी, वारुणी, लक्ष्मी, चन्द्रमा आदि १८ महारत्न निकले, जिन्हें दैत्यों तथा देवताओं ने आपस में बाँट लिया। अंत में सागर के गर्भ से अमृत निकला। तब वह अमृत दैत्यों द्वारा झपट लिया गया। विष्णु भगवान् ने तब 'मोहिनी' रूप धारण कर दैत्यों की मति को भ्रमित किया और अमृत कलश अपने अधिकार में ले लिया, अमृत वितरण का कार्य करते हुए मोहिनी रूपी विष्णु देवताओं को अमृत तथा दानवों को मदिरा पिलाने लगे। विष्णु के इस

छल को भाँपकर संकटा का पुत्र और दानवों का सेनापती महापराक्रमी राहू देवताओं की पंक्ति में गुप्त रूप से जा बैठा। और अमृत प्राप्त कर लिया। तब सूर्य और चन्द्र द्वारा पहचान लिये जाने पर विष्णु ने सुदर्शन चक्र से राहू का शीष काट दिया। हे राजन्! तब तक राहू अमृत पान कर चुका था। अतः वह सिर कट जाने पर भी मरा नहीं, किन्तु सुदर्शन चक्र के अमोघ होने के कारण उसका शीष उसके धड़ से जुड़ भी न पाया। तब उस महाअसुर का शीष (क्योंकि मुख द्वारा ही किसी को पहचाना जाता है) राहू कहा गया और धड़ केतु (क्योंकि मुख के बाद पताका पहचान का कारण बनती है।) कहा गया। आज भी राहू अपना प्रतिशोध लेने के लिए सूर्य और चन्द्रमा को अवसर मिलते ही ग्रस लेता है।'

'हे राजन्! इस प्रकार श्री विष्णु ने समुद्र मंथन में भी मोहिनी रूप द्वारा तथा कूर्मावतार द्वारा देवताओं की सहायता की थी। मंथन से निकले महारत्नों में कौस्तुभमणि तथा लक्ष्मी ने विष्णु का वरण किया था। दानवों ने मदिरा, वारुणी तथा उच्चैश्रवा नामक घोड़े को लिया था। देवताओं में इन्द्र ने ऐरावत नामक हाथी लिया था तथा समस्त देवताओं सहित अमृत का पान किया था

धन्वतरी मानवों के कल्याणार्थ आयुर्वेद के प्रवर्तक हुए। चन्द्रमा को शिव ने स्वयं अपने मस्तक पर धारण कर लिया था। क्योंकि कालकूट विष की ऊष्मा को शांत करने में चन्द्रमा की शीतल किरणें सहयोगिनी थीं। इसी प्रकार अन्य महारत्नों को भी दैत्यों तथा देवताओं ने परस्पर बाँट लिया था। हे राजन् ! राहू के अमृत सेवन कर लेते ही यदि विष्णु ने सुदर्शन द्वारा उसका शीष न काट लिया होता और इस प्रकार उसकी शक्ति को आधा न कर दिया होता तो राहू देवताओं और मानवों के लिए कभी हल न होने वाली महाविकट समस्या बन गया होता।'

विष्णु द्वारा अन्य प्रमुख अवतरण

वैशम्पायन जी ने कहा, हे राजन् ! विष्णु भगवान् ने अवसर आने पर और भी विभिन्न अवतारों द्वारा भूमंडल की, देवताओं की, भक्तों की, सज्जनों की, धर्म की तथा सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा की थी। दुष्टों, दुर्जनों, असुरों, दैत्यों, दानवों, राक्षसों तथा अधर्म व अत्याचार का नाश कर प्रजा के सम्मुख आदर्शों, मर्यादाओं और प्रेरणाओं की स्थापना की थी। उनमें से बहुत से यद्यपि तुम्हें पहले कह भी चुका हूँ। तो भी प्रसंगवश संक्षेप में

मैं सभी को कहूँगा। तुम ध्यान पूर्वक सुनो–

३. वामनावतार– तब वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'एक बार दैत्यों ने समस्त देवताओं आदि को पराजित कर त्रैलोक्य विजय किया। तब वे तप लीन हो गए। दैत्यों के महाराज बलिदान, पराक्रम तथा तप के लिए विख्यात थे। उन्होंने राजसूय यज्ञ किया। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य अपने पुत्र सहित उस यज्ञ को करा रहे थे। अन्य ऋषि, मुनी, सिद्ध, ब्राह्मण आदि भी उस महायज्ञ में उपस्थित थे। तब उचित अवसर देख त्रिलोकी से दैत्यों का साम्राज्य समाप्त करने के लिए विष्णु भगवान् वामन रूप में वहाँ पधारे। बलि से उन्होंने तीन पग भूमि दान में माँगी। तब प्रह्लाद का पौत्र बलि हँसते हुए बोला, 'अरे ब्राह्मण ! तुम स्वर्ण, रजत, रत्न, आभूषण, अश्व, गौ, गज, महल, धन, सम्पदा, राज्य आदि में से कुछ माँग लो, अथवा एकड़ों या योजनों के गणित से पृथ्वी दान माँग लो, या इस त्रिलोकी में अन्य जो कुछ भी तुम्हें प्रिय या कमनीय है वह माँग लो, मात्र तीन पग भूमि से क्या होगा ? तुम्हारा तो आकार भी छोटा है (बौने हो)–तीन पग भूमि में कितनी भूमि माप सकोगे ? तब वामन के रूप में विष्णु ने हँसते हुए कहा–'जानता हूँ दैत्यराज। आपके पराक्रम, तप, उदारता तथा महानता

के कारण कुछ भी दान में दे देना आपके लिए संभव है, किन्तु हे महाराज ! मुझे तो केवल तीन पग भूमि ही पर्याप्त है। मैं आपसे और कुछ नहीं चाहता।'

'बलि तब हँसते हुए– 'जैसा तुम चाहो, कहते हुए कमण्डल से जल हथेली पर डाल संकल्प करके दान देने को उत्सुक हुआ तो वामन रूप में विष्णु को पहचान लेने वाले परम विद्वान व महातेजस्वी शुक्राचार्य ने बलि के कान में कहा, 'हे राजन् ! तुम यह संकल्प मत लो अन्यथा त्रैलोक्य का राज्य खो बैठोगे। यह वामन नहीं छली विष्णु हैं। अवश्य ही यह कोई छल करेगा।' शुक्राचार्य द्वारा चेतावनी दिए जाने पर भी दानवीर बलि ने अपना निश्चय नहीं बदला। वह बोला– 'मैं याचक को खाली हाथ नहीं लौटा सकता गुरुदेव, भले ही वह मेरे प्राण ही क्यों न माँगता हो। दूसरे दान के लिए मना करने से मेरा यज्ञ भी भंग हो जाएगा। ऐसा कहकर वह महान बलि कमण्डल से जल को अपनी हथेली पर निकालने के लिए उद्धत हुआ, जिससे जल हाथ में लेकर संकल्प करके दान दे सके। तब शुक्राचार्य अति सूक्ष्म होकर गुप्त रूप से कमण्डल की नलकी में जा छिपे। जिससे जल बाहर न आने पाए और राजाबलि संकल्प न ले सके। किन्तु हे राजन् ! सर्वज्ञ विष्णु ने

वामन के रूप में शुक्राचार्य की यह करतूत जान ली और तिनके को कमंडल की नली में घुसाकर जल के आने का मार्ग खोल दिया।'

'उस तिनके के कारण शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। इधर बलि ने हाथ में जल लेकर वामन को तीन पग भूमिदान करने का संकल्प ले लिया। तब वामन ने अपना आकार अत्यंत ही विशाल बनाते हुए तीन पग में त्रिलोकी को नाप कर बलि को राज्य विहीन कर दिया और दैत्यों के साम्राज्य का अंत कर दिया। किन्तु बलि की दान वीरता से प्रसन्न होकर उन्होंने बलि को भूमि के भीतर (पाताल में) का राज्य दे दिया और कहा कि वह अपने बाँधवों व सजातियों के साथ पाताल में आनन्दपूर्वक राज्य करें। हे राजन् ! तब से दैत्य आदि पाताल में ही रहने लगे। इस प्रकार विष्णु ने त्रैलोक्य से दानवों का साम्राज्य समाप्त कर देवताओं को राज्य लौटाया। यह अवतार वामनावतार के नाम से जाना जाता है।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे राजन् ! विष्णु द्वारा विभिन्न अवसरों पर लिए गए और भी प्रमुख अवतारों को संक्षेप में कहता हूँ। दत्तचित्त होकर सुनो।'

४. पुष्करावतार – धर्मोदय राज्य के स्थापित हो

जाने के बाद देवता और मानव और भी सहयोगी हो गए। तब यज्ञ कर्मों में देवता स्वयं उपस्थित होकर अपना भाग ग्रहण करने लगे। एक बार जब बृहस्पति दक्ष का यज्ञ करवा रहे थे। तब शिव को यज्ञ में निमंत्रित न करने से शिव पत्नी सती स्वेच्छा से ही पिता के यज्ञ में उपस्थित हो गईं। अपने पति का वहाँ अनादर होता देख उन्होंने यज्ञकुण्ड में कूद कर अग्नि समाधी ले ली। तब पिनाक पाणि शंकर अपने गणों तथा अनुचरों नंदी, काल, वीरभद्र आदि के साथ यज्ञ का विध्वंस करने को उद्यत हो गए। प्रमथ गणों ने यज्ञशाला में तहलका मचा दिया। तब शिव के प्रचंड क्रोध को सहने के कारण वह महायज्ञ मृग का रूप धारण करके वहाँ से भागने का प्रयास करता हुआ शिव के बाण से घायल होकर ब्रह्मा की शरण में आया। ब्रह्मा ने कहा 'तुम इसी महामृग (मृगशिरा) के रूप में आकाश में चन्द्रमा व तारों के साथ रहोगे। तुम्हारे शरीर से बहता यह रुधिर आकाश में बनने वाला इन्द्रधनुष होगा।'

'इधर शंकर भगवान् का क्रोध ब्रह्मदण्ड के समान प्रलयंकारी होने लगा तो विष्णु भगवान् जगत् के विनाश को रोकने के लिए शार्ङ्गधनुष, सुदर्शनचक्र तथा कौमोदकी गदा के साथ विकराल चन्द्रप्रभा युक्त

खड्ग धारण कर शंकर को रोकने वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ शिव और विष्णु का महाभयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में विष्णु ने नन्दी को स्तम्भित कर दिया। शिव तथा विष्णु ने एक दूसरे को बाणों से बींध डाला। ऋषिगण, देवगण आदि भयभीत हो शिव तथा विष्णु की विभिन्न प्रकार से स्तुति करने लगे। तब कहीं जाकर बड़ी कठिनाई से वह युद्ध रोका जा सका। शिव को यह आभास हुआ कि क्रोध के आवेग में वे सम्पूर्ण सृष्टि का समय से पूर्व ही विनाश करने वाले थे। यदि विष्णु ने युद्ध करके उन्हें रोका न होता तो अनर्थ हो गया होता। विष्णु के अलावा कोई भी शिव की उग्रता व प्रचण्डता को सहता हुआ उन्हें युद्ध द्वारा रोक नहीं सकता था। अतः उन्होंने विष्णु को प्रणाम किया। दक्ष को दण्ड देने के लिए उसका शिरच्छेद किया जा चुका था। वह अहंकार के कारण सदैव मैं-मैं करता रहता था अतः बकरे का शीश उसके धड़ पर लगाकर उसे पुर्नजीवित किया। फिर वे महादेव कैलाश पर्वत को लौट गए। इसको विष्णु भगवान् का पुष्करावतार कहा जाता है। इसमें उन्होंने शिव से युद्ध करके सम्पूर्ण सृष्टि की उनके प्रकोप से रक्षा की थी।'

५. वराहावतार–'हे राजन् ! सृष्टि से पूर्व जब

यह सम्पूर्ण विश्व एक स्वर्णिम अण्डे के सदृश था। तब १००० वर्ष बाद ईश्वर ने उसके दो खण्ड कर ऊपर का आकाश व नीचे का पृथ्वी कर दिया। फिर उसका आठ प्रकार से भेदन किया और पृथ्वी को विभाजित कर दिया। अंडे के ऊपर जो सूराख किया था प्रभु ने वह परमगति का मार्ग और नीचे का सूराख रसातल हुआ। मेघ, दिशा, दिदिशा आदि भेद अण्डे के आठ प्रकार के भेदन से बने। किन्तु अण्डे को दो खण्ड करने पर उसके भीतर भरा द्रव्य पृथ्वी पर चारों ओर फैल गया उससे सम्पूर्ण पृथ्वी जलमग्न होकर रसातल की ओर जाने लगी। तब पृथ्वी ने निम्नप्रकार से नारायण की स्तुति की–

त्रिविक्रमायातिविक्रमायहानुसिंहाय चतुर्भुजायः।
श्रीशार्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तुतस्मै पुरुषोत्तामाय ॥
त्वयाऽऽत्मना धार्यते वे त्वया संह्रियते जगत्।
त्वं धारयति भूतानि भुवन त्वं विभर्षि च ॥
यत्वया धर्यते किंचित् तेजसा च बलेन च।
ततस्तव प्रसादेन मया पश्चान्तु धार्यते ॥
त्वया धृतं धारयामि नावृतं धारयाद्हम्।
न हि तद्धिधते रूपं यत्वया न तु धार्यते ॥
त्वमेव वीर नारायण युगे युगे।

मम भारावतरणं जगता हितकाम्य ॥
तदैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलं गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम् ॥
दानवैः पीडयमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ॥
तावन्भेऽस्ति भयंभूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
शरणागामि मनसत शतशोऽप्युपलक्षये ॥

अर्थात्– 'हे त्रिविक्रम ! हे महानरसिंह ! हे चतुर्भुज ! हे शार्ङ्गधनुष को धारण करने वाले। हे खड्ग, चक्र एवं गदा धारण करने वाले पुरुषोत्तम आपको नमस्कार है। आप ही जीवों और जगत् को धारण करने वाले तथा आप ही उनका लय करने वाले हैं। अपने तेज के कारण आप सबको धारण करने में समर्थ हूँ। मैं भी आपके प्रताप से ही सब प्राणियों को धारण करती हूँ। हे वीर नारायण ! युगों से आप मुझपर बढ़े हुए भार को हटाने के लिए अवतरित होते हैं। हे प्रभो ! दैत्यों और दानवों द्वारा पीड़ित होकर मैं आपकी शरण में आती हूँ। अब भी मैं आपके तेज से क्षीण होकर रसातल में धँसी जा रही हूँ। अतः मेरी रक्षा कीजिए। जब तक मैं आपकी शरण में नहीं आती तभी तक मुझे भय रहता है, किन्तु आपकी शरण में आते ही मैं भयमुक्त हो जाती हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करने पर विष्णु ने पृथ्वी को आश्वासन दिया और वाराह रूप धारण कर अपने दाँतों व शरीर की काँप से भूमि को ऊपर उठा दिया। यह अवतार वाराहावतार कहा जाता है। भूमि को धारण करने से विष्णु को भूधर–धराधर तथा उसका कल्याण करने से 'माधव' भी इसीलिए कहा जाता है।'

हिरण्याक्ष वध–'इसी वाराह रूप में श्री हरि ने देवताओं का भी एक हित किया था। हे राजन् ! तुमसे वह कथा भी कहता हूँ, सुनो। ऐसा कह कर वैशम्पायन जी कहने लगे– पृथ्वी का उद्धार होने के बाद उड़ने वाले पर्वतों ने हिरण्याक्ष आदि दैत्यों को बताया। देवताओं का आधिपत्य सब ओर स्थापित हो गया है। यह सुनकर महापराक्रमी दितिपुत्र हिरण्याक्ष (जो हिरण्यकशिपु का भाई था) सब दैत्यों सहित अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए तैयार हुआ। उसने बहुत बड़ी सेना के साथ इन्द्र पर धावा बोल दिया। इन्द्र ने हिरण्याक्ष से तथा देवताओं ने अन्य दैत्यों का जमकर सामना किया। भीषण युद्ध हुआ। कई दैत्य धराशायी हुए। कई देवता घायल हो गए। उस युद्ध में हिरण्याक्ष ने इन्द्र को स्तम्भित कर दिया और देवता पराजित हो गए। देवताओं के सहयोग के लिए भगवान् विष्णु वाराह रूप में तब

वहाँ आए।'

'वाराह के साथ हिरण्याक्ष का घोर युद्ध हुआ। विभिन्न भीषण शस्त्रास्त्रों के प्रयोग के बाद भी जब हिरण्याक्ष वाराहवतार से पार न पा सका तब महातेजस्विनी शक्ति का विष्णु (वाराह) के वक्ष पर प्रहार किया, किन्तु उन्होंने हुँकार मात्र से ही उस शक्ति को निस्तेज कर दिया। अन्ततः वह महाबली हिरण्याक्ष वाराह रूपी विष्णु के हाथों सुदर्शन चक्र से मार डाला गया। तब समस्त देवताओं व ऋषियों ने वाराह भगवान् की स्तुति की। इस प्रकार विष्णु ने वाराह रूप में ही हिरण्याक्ष का वध कर देवताओं को खोया राज्य पुनः दिला दिया। नेता को मरते देख शेष दैत्य भाग खड़े हुए थे।– इस घटना के बाद इन्द्र ने मैनाक पर्वत को छोड़ अन्य सभी पर्वतों के पंख वज्र से काट डाले थे। तभी से पर्वत एक ही स्थान पर अचल हो गए। अन्यथा पहले वे पंख होने के कारण एक स्थान से अन्य स्थानों पर चले जाया करते थे। वाराह चरित का सुनना या पढ़ना तुरंत ही विजय दिलाने वाला कहा जाता है।'

६. नरसिंहावतार– 'हिरण्याक्ष के भाई हिरण्यकशिपु ने सतयुग में साढ़े सोलह हजार वर्षों तक जल में ही रहकर महान तप किया था और ब्रह्मा को प्रसन्न

हिरण्यकशिपु का वध करते प्रभु नरसिंह

करके अमरत्व का वर माँगा था। ब्रह्मा ने कहा था– 'जो उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है। अतः अमरत्व का वर नहीं दिया जा सकता। क्योंकि यह ईश्वरीय विधान के विरुद्ध है।' तब हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से इस प्रकार का वर माँगा था– 'न तो मेरी मृत्यु घर में हो, न बाहर। न मैं पृथ्वी पर मरूँ, न ही जल या आकाश में। न शस्त्र से मरूँ, न अस्त्र से। न दिन में मारा जा सकूँ, न रात में। न देवता से मरूँ, न मनुष्य अथवा पशु से, न शुष्क पदार्थ से मारा जा सकूँ, न गीले से ही।

जो एक ही प्रहार से मेरी सेना सहित मुझे मार सके उसी के हाथों मुझे मृत्यु प्राप्त हो। समस्त देवताओं की शक्तियाँ तथा अधिकार मुझे प्राप्त हो जाएँ।' –ब्रह्मा से ऐसा वर प्राप्त कर लेने के बाद अपने भाई हिरण्याक्ष के वध के कारण विष्णु से द्वेष रखने वाला वह हिरण्यकशिपु स्वयं को अमर समझने लगा। अहंकार की चरम सीमा यह थी कि वह दंभी स्वयं को भगवान् समझने लगा और प्रजा को भी ऐसा ही मानने के लिए बाध्य करने लगा था।'

'ईश्वर की लीला देखो कि उसी का पुत्र उसका विरोधी होकर विष्णु का परमभक्त हो गया। अत्याचारी हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र को भी क्षमा न किया, उसे विभिन्न यातनाएँ, कष्ट व भय देकर विष्णु के विरुद्ध करना चाहा, किन्तु उसकी आस्था व विश्वास को तोड़ न पाया। जब हिरण्यकशिपु का पापों का घड़ा भर गया तब स्तम्भ से नरसिंह के रूप में विष्णु प्रकट हुए। उनकी गर्जना मात्र से ही भय कंपित होकर हिरण्यकशिपु की सेना भाग खड़ी हुई। तब हिरण्यकशिपु को संध्या के समय अपनी गोद में रखकर घर की दहलीज पर अपने नखों द्वारा एक ही प्रहार से मार डाला। इस प्रकार ब्रह्मा का वरदान भी नहीं टूटा, क्योंकि नरसिंह स्तम्भ से

उत्पन्न हुए थे। न अंडे से न गर्भ से। वे न तो मनुष्य थे, न पशु और न ही देवता। उनकी गोद न धरती थी, न आकाश। घर की दहलीज न अंदर थी, न बाहर। साँझ का समय, न दिन का था, न रात। नाखूनों के द्वारा, न तो शस्त्र से, न अस्त्र से, तथा एक ही प्रहार से नरसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार डाला था।'

'इस प्रकार हे राजन् ! हिरण्यकशिपु का वध करके उस अत्याचारी से भगवान् विष्णु ने प्रजा के साथ-साथ अपने भक्त सज्जन प्रह्लाद की भी रक्षा की। उनका यह रूप नरसिंह अवतार के रूप में जाना गया। हिरण्यकशिपु के वध के बाद भी नरसिंह का क्रोध शांत न हुआ तो समस्त देवताओं तथा ऋषियों आदि ने उनकी स्तुति की। किन्तु उनका क्रोध तब भी शाँत नहीं हुआ। अंत में प्रह्लाद द्वारा स्तुति किए जाने पर भगवान् नरसिंह शांत हुए। तब प्रह्लाद को आर्शीवाद देकर वे वापस वैकुण्ठ को लौट गए।'

७. मत्स्यावतार – 'मत्स्य का रूप धारण कर प्रलय के समय सम्पूर्ण जलमग्न पृथ्वी पर नवीन सृष्टि के आरम्भ के लिए आवश्यक सामग्री, बीजों, वीर्यों आदि द्वारा भरी मनु की नौका को मनु सहित विष्णु भगवान् ने ही सुरक्षा दी थी। महा मत्स्य का वह रूप मत्स्यावतार

के नाम से और अनेक पुराणों में आया है।'

८. रामावतार—भगवान् राम के रूप में महापराक्रमी, काल को भी वश में कर लेने वाले, परम अहंकारी और शिवभक्त दशानन रावण, जो त्रैलोक्य विजयी था—को उसके भ्राता कुम्भकर्ण, खर, दूषण, अहिरावण-पातालरावण तथा इन्द्रजीत पुत्र मेघनाद, अक्षयकुमार आदि को सवंश मारकर अधर्म को समाप्त कर, ऋषियों की रक्षा कर, पृथ्वी को अभय विष्णु ने ही दिया था। तब ताड़का, अकम्पन, प्रहस्त, कबन्ध आदि अन्य दैत्यों का वध भी किया था। इसे राम अवतार कहा जाता है।'

९. परशुरामावतार—'जमदग्नि पुत्र परशुराम के रूप में श्री विष्णु ने सहस्त्रबाहु आदि उश्रृंखल क्षत्रियों का २१ बार समूल नाश किया था। भीष्म और कर्ण जैसे योद्धाओं को युद्ध कला तथा धनुर्विधा सिखाई थी। वे महवीर्यवान, महाक्रोधी, महापराक्रमी, महायोद्धा, महातेजस्वी, महावीर, महानधनुर्धर तथा महान तपस्वी के रूप में जाने गए थे। पिता की आज्ञा मान अपनी माता का वध कर देने का, पितृभक्ति का अदभुत उदाहरण उन कठोर हृदय वाले परशुराम ने ही समाज के सम्मुख रखा था।'

१०. कृष्णावतार–'श्रीकृष्ण के रूप में हुए उनके अवतार और उनके द्वारा पृथ्वी पर कीं गई लीलाओं का वर्णन मैंने तुमसे किया ही है। योग और भोग का अनूठा संगम एक मात्र इसी कृष्णावतार में ही मिलता है।'

११. दत्तात्रेयावतार–'वेदों, वेदांगों तथा आत्मज्ञान के प्रसार एवं पुर्नत्थान के लिए, यज्ञादि वैदिक कर्मों की पुर्नस्थापना के लिए विष्णु का दत्तात्रेय नामक अवतार भी हुंआ था। तब वे अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के पुत्र हुए थे और ब्रह्मा तथा शिव का अंश भी उनमें सम्मिलित था।'

१२. व्यासावतार–'वेदों के विभाजन के लिए, पुराणों की रचनाओं के लिए, धर्म व ज्ञान के प्रचार तथा प्रसार के लिए श्रीविष्णु का व्यास के रूप में अवतार होना भी माना जाता है।'

१३. बुद्धावतार–'शून्य की उपासना का मार्ग संसार के सम्मुख तब लाने के लिए जब संसार धर्म पाखण्ड से परिपूर्ण हो जाएगा। अहिंसा के प्रचार व प्रसार के लिए तब बुद्धावतार का होना भी कई पुराणों में कहा गया है।'

१४. कल्कि अवतार–कल्कि के रूप में कलियुग के अंत में दुष्टों के विनाश तथा सज्जनों की रक्षा के

लिए विष्णु का एक अवतार और होना भी समस्त पुराणों में कहा गया है।'

श्रीकृष्ण की कैलाश-यात्रा

राजा जनमेजय द्वारा पूछे जाने पर फिर महामुनी वैशम्पायन जी ने कृष्ण जी की कैलाश यात्रा का वर्णन किया। वे बोले, 'हे राजन् ! जैसा मैंने परम ज्ञानी कृष्ण द्वैपायन व्यास जी से इस विषय में सुना, वैसा तुमसे कहता हूँ, आनन्दपूर्वक सुनो।'

एक बार गृहस्थाश्रम में रुक्मणी देवी ने कृष्ण से अत्यंत श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करने की इच्छा की। तब श्री कृष्ण बोले, 'मैं इस प्रकार का पुत्र प्रदान करने के लिए पहले शंकर के प्रति तप करूँगा। क्योंकि हे सुश्रोणी ! 'पुन्' नामक नरक से त्राण दिलाने वाले को 'पुत्र' कहते हैं। आज्ञाकारी और सद्गुणी पुत्र प्राप्त होना विश्व की तीन बड़ी उपलब्धियों में से एक माना जाता है। कुपुत्र पूरे वंश का पिता सहित नाश करता है। अतः कुपुत्र उत्पन्न करने से माता का बाँझ होना ही श्रेष्ठ है। मैं सद्पुत्र की प्राप्ति के लिए महादेव को प्रसन्न करूंगा।' इस प्रकार कह कर कृष्ण पुण्यात्माओं की भूमि बदरी वन में तप करने चले गये। वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षों

तक तप किया। उसी स्थान पर विष्णु ने पहले भी तप करके स्वयं को नर-नारायण रूप में विभक्त किया था, और इसी स्थान पर वृत्रासुर वध के पश्चात् ब्रह्महत्या दोष के प्रायश्चित् स्वरूप इन्द्र ने भी दस हजार वर्षों तक तप किया था। त्रेतायुग में रावण के संहार के बाद ब्रह्महत्या के पाप के शमन के लिए ही श्रीराम ने भी वहाँ घोर तप किया था। अतः वह तपोमय भूमि शीघ्र ही तप करने पर फल देने में सहायक होती है।'

घन्टाकर्ण पिशाच की मुक्ति—'हे राजन्! तप पूर्ण होने पर वहाँ कुत्तों के साथ उनका पालन करने वाले, अपने अंगों पर अंतरड़ियों को लपेटे हुए रुधिर से सने मुख के साथ वहाँ दो पिशाच उपस्थित हुए। उन्होंने कृष्ण से कहा, 'हे जनार्दन मैं घन्टाकर्ण नामक पिशाच हूँ, और यह मेरा सहयोगी है। पिशाच होते हुए भी हमारी शिव में बड़ी आस्था है। अपने कर्मों को हम त्रिपुरारी को ही समर्पित कर देते हैं। अतः हमारे पाप कर्मों के बाद भी भगवान् शिव ने हमें दर्शन दिए थे।' मैं विष्णु का नाम सुनना भी पसंद नहीं करता था अतः अपने कानों में मैंने घन्टे बाँध लिए थे, जिससे विष्णु का नाम भी मेरे कानों में न पड़ पाए। मेरे द्वारा मुक्ति का वर

माँगने पर शिव ने कहा, 'तुम बदरी वन में विष्णु का ही तप करो। जब विष्णु स्वयं श्री कृष्ण के रूप में इस वन में तप करने आएँगे तब वही तुम्हें और तुम्हारे इस सहयोगी को मुक्ति प्रदान करेंगे। हे प्रभो तब से हम आप ही के द्वादशाक्षरी मंत्र– 'ॐ नमोः भगवते वासुदेवाय' का यहाँ जाप कर रहे थे। आप के दर्शनों से आज हमारा तप सफल हुआ। प्रभो अपने चक्र द्वारा हमारी इस विकृत, मलिन, तामसिक, पापी काया को नष्ट करके हमें मोक्ष दीजिए।' तब कृष्ण ने उन दोनों महारथियों को मुक्ति प्रदान की।'

'तब कृष्ण जी बदरी वन से कैलाश पहुँचे। उस स्थान पर पहले भी विष्णु रूप से अनन्तकाल तक तप करके शिव से उन्होंने सुदर्शन नामक अमोघ चक्र प्राप्त किया था। (वैसे शिव और विष्णु एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान अभिन्न हैं, किन्तु विधानानुसार पालन तथा व्यवस्था का उत्तरदायित्व विष्णु वहन करते हैं और विनाश तथा विध्वंस का शिव। इसीलिए जब विष्णु ने कोई महायुद्ध करके विनाशकार्य अपने हाथों में लिया है, तब मर्यादा वश पहले शिव को पूजन द्वारा प्रसन्न कर विनाश की अनुमति ली है। जैसे– राम के रूप में रावण से युद्ध करने से पूर्व रामेश्वरम् की

स्थापना और कृष्ण के रूप में विल्वोदकेश्वर की स्थापना आदि। इसी प्रकार सुदर्शन परम संहारक और अमोघ अस्त्र है इसलिए सर्वेश्वर होते हुए भी मर्यादा पालन के लिए उस चक्र को विष्णु ने शिव से ही प्राप्त किया।– इस तर्क द्वारा इस प्रसंग के औचित्य को समझना चाहिए अन्यथा मतिभ्रम (कन्फ्यूजन-गलतफहमी-) अथवा अश्रद्धा या अविश्वास उत्पन्न हो सकते हैं– जो पाठकों के लिए शुभ नहीं होंगे।)।

कृष्ण को शिवदर्शन –'उसी स्थान पर हे राजन्! शिव उमा के साथ प्रणय में लीन रहते हैं। उसी स्थान से गंगा का मूल उद्‌गम होता है और उसी स्थान पर कुबेर, भृंगी एवं अन्य ऋषियों द्वारा शिव शंकर पूजे जाते हैं। यहीं शम्भु ने ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर काट डाला था। यहीं पर हंसों से परिपूर्ण मान सरोवर है। –वहीं विष्णु ने कृष्ण के रूप में १२ वर्षों तक केवल शाक ही खाकर फाल्गुन मास से आरंभ किया गया हवन शिव के लिए किया। उस समय गरुड़ सेवा भाव से कृष्ण के हवन के लिए काष्ठ लाकर देते रहे। तब शंकर ने अपने वृषभ नंदी पर आरूढ़ होकर उनको दर्शन दिए। तब कृष्ण ने शिव की स्तोत्र द्वारा स्तुति की। स्तोत्र से प्रसन्न शिव ने वर माँगने के लिए कहा। तब कृष्ण ने अति उत्तम,

सद्गुणी एवं सर्वगुण सम्पन्न पुत्र माँगा। तब भगवान् शंकर बोले–हे जनार्दन ! इन्द्र द्वारा मेरा तप खंडित करने के लिए भेजे गए कामदेव को एक बार मैंने अपनी क्रोधाग्नि से भस्म कर दिया था। बाद में मुझे आभास हुआ कि उसका दोष नहीं था, अतः तभी से मेरे हृदय में उसके लिए दया रहती है। मैंने उसकी पत्नी रति को भी पुनःपति प्राप्त कर लेने का आश्वासन दिया था। अब हे माधव ! मुझे उस कामदेव के पुनर्जन्म का उचित अवसर जान पड़ता है। अतः हे केशव वही कामदेव तुम्हें पुत्र बनकर प्रद्युम्न नाम से प्राप्त होगा, और अपने गुणों, पराक्रम तथा सद्कर्मों से तुम्हें और यदुकुल को गौरवांन्वित करेगा।'

योगेश्वर कृष्ण को वर देते भगवान् शिव

'हे राजन् ! वर देने के पश्चात् भगवान् शिव ने स्वयं श्री कृष्ण की (उनके विष्णु रूप को प्रणाम करते हुए) स्तुति की। वह शिव द्वारा कहा गया, विष्णु स्तोत्र नित्य पाठ करने से विष्णु का सालोक्य प्राप्त होता है। तथा कुछ भी प्राप्त करना कठिन नहीं होता। क्योंकि भगवान शंकर द्वारा कहे गए उस स्तोत्र में ऐसी ही शक्ति है। (पुस्तक के अंत में इन स्तोत्रों को पाठकों के लाभार्थ दे रहे हैं। पाठक इन्हें वहाँ से पढ़ सकते हैं)।'

पराक्रमी पौण्ड्रक की कथा

पौण्ड्रक का अभिमान—वैशम्पायन जी ने आगे कहा—'हे राजन् ! उसी समय में पौण्ड्रक नामक महापराक्रमी और महाबलशाली असुर राजा हुआ था। वह वृष्णिवंशियों का परम शत्रु और कृष्ण से बहुत द्वेष करने वाला था, क्योंकि समस्त राजाओं को जीत लेने के बाद भी वह कृष्ण के संरक्षण के कारण यदुवंशियों को नहीं जीत पाया था। एक दिन अपने अधिनस्थ राजाओं की सभा बुलाकर वह अभिमानी इस प्रकार बोला, 'मैंने सम्पूर्ण पृथ्वी को उनके बलवान शासकों के साथ जीता है। परन्तु कृष्ण का आश्रय लेकर वृष्णिवंशी गर्वोन्मत्त होकर मुझे सम्मान नहीं देते। कृष्ण भी अपने

सुदर्शन चक्र के बल पर अकड़ा रहता है। अतः मैं अपने मित्र नरकासुर की सहायता से उस ग्वाले कृष्ण को मार डालना चाहता हूँ। क्योंकि त्रासुदेव कृष्ण वास्तव में मैं हूँ। मैं ही शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करता हूँ। वह पाखण्डी तो मेरा ही स्वांग भर के (डुप्लीकेट) कृष्ण बन बैठा है। अतः आप सब मुझे ही वास्तविक (ओरीजनल) वासुदेव समझें। उस दुष्ट को मैं शीघ्र ही दण्ड दूँगा। यह सुनकर कृष्ण से ईर्ष्या रखने वाले बहुत से राजा पौण्ड्रक की बात मान उसकी जयजयकार करने लगे। और जो कृष्ण के तेज को जानते थे उन सबने मौन होकर सिर झुका लिया।'

'देवर्षि नारद तो सूचनाओं के प्रसारण तथा लगाई बुझाई के कार्य में दक्ष हैं ही। युद्ध देखने में उनको बहुत आनन्द आता है। अतः वे उचित अवसर जान कर पौण्ड्रक की सभा में पहुँचे। पौण्ड्रक ने उनका उचित सत्कार किया। फिर वह नारद से बोला, 'हे देवर्षि ! आपकी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में निबोध गति है। आप तो जानते ही हैं कि मैं ही वासुदेव हूँ। कृष्ण बहरूपिया है। वह मेरी ही नकल किया करता है। सम्पूर्ण पृथ्वी की विजय रक्षा और पालन करने वाला मैं अजेय पौण्ड्रक ही वासुदेव हूँ। मैं द्वारिका पर चढ़ाई करके मेरी नकल

करने वाले उस कपटी ग्वाले को मार डालूँगा। उसकी पुरी को लूटकर उजाड़ दूँगा। यह सूचना आप इन्द्र के साथ-साथ सभी को दे दें। शीघ्र ही मैं उस धूर्त को मेरे नाम और रूप का दुरुपयोग करने के अपराध में मार डालूँगा। यदि वह कृष्ण समझता है कि मेरी भांति सिर में मयूर पंख ठूँस कर वह मेरे समान बन सकता है तो यह उस की भूल है। यह बात आप उस ग्वाले को भी बता दें।'

' नारद उस अभिमानी के ऐसे दर्पपूर्ण वचन सुनकर बोले– 'राजन् ! मुझे तुम्हारे पराक्रम में संदेह नहीं। किन्तु समूची सृष्टि में एक ही वासुदेव कृष्ण हैं। उनकी या उनके पराक्रम की अथवा उनके नाम की भी समता कोई नहीं कर सकता। तुम्हारे कह देने मात्र से तुम कृष्ण नहीं हो जाते। कौआ हंस का पंख लगा लेने से हंस नहीं बन जाता। श्रीकृष्ण को जब यह समाचार ज्ञात होगा तो वे निस्संदेह तुम्हें प्राण दण्ड देंगे। यदि तुम्हारा अंत निकट न आ गया हो तो तुम ऐसी बात कभी न कहते। राजन् ! देवता जिसका नाश करना चाहते हैं, उसके पीछे डण्डा लेकर नहीं भागते। केवल उसकी बुद्धि पलट देते हैं। तुम्हारी बुद्धि भी विपरीत हो चुकी है। अतः तुम्हारा विनाश काल बस आने ही वाला है। यह

मैं तुमसे परम सत्य कह रहा हूँ।' ऐसा कहकर नारद उस अभिमानी पौण्ड्रक की सभा से चले गए।'

'हे जनमेजय ! चतुर नारद ने यह समाचार अतिरंजना के साथ श्रीकृष्ण तक बद्री वन में ही पहुँचा दिया। पौण्ड्रक के विचारों और उसकी करतूतों को जान लेने के बाद कृष्ण ने नारद से कहा, ' आप निश्चिंत रहिए देवर्षि। मैं कल ही उस पौण्ड्रक के अहंकार का खंडन कर दूँगा।' इस प्रकार आश्वासन से संतुष्ट होकर नारद लौट गए।'

द्वारिका पर आक्रमण—वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे राजन् ! इधर पौण्ड्रक भी नारद जी का उत्तर सुनकर अत्यंत कुपित होकर, अहंकार से फूल कर आठ हजार रथों, दस हजार हाथियों और अर्बुद संख्या में पैदलों की सेना सहित, रात्री ही में मशालों के साथ द्वारिका नगरी की ओर कूच कर गया। द्वारिका को घेर कर उस रणोन्मत्त अभिमानी ने रणभेरी बजा दी। तब युद्ध घोषणा को सुनते ही यादव वीर अल्प समय में ही शस्त्र अस्त्रों से सुसज्जित होकर—बलराम, सात्यकि, हार्दिक्य, निशठ, उद्धव आदि श्रेष्ठ योद्धाओं के नेतृत्व में रण में आ डटे। (कृष्ण तब बद्रीवन में थे अतः वे इस सेना में सम्मिलित नहीं हो सकते थे।) । फिर तो वहाँ

महान युद्ध छिड़ गया।'

'उस रण में महावीर सात्यकि प्रतापी पौण्ड्रक के बाणों से आहत होकर क्षण भर को मूर्छित हो गया। फिर चेतित होकर उसने पौण्ड्रक के सारथी, घोड़ों और रथ को नष्ट कर दिया और पौण्ड्रक की भी छाती में बाण मार कर घायल किया। तब पौण्ड्रक ने अत्यंत कुपित होकर सात्यकि को साठ बाणों से और प्रति उत्तर में सात्यकि ने उसे सत्तर बाणों से घायल किया। तब एक दूसरे के द्वारा धनुषों को काट दिए जाने पर वे दोनों भूमि पर आकर लात घूँसों से ही लड़ने लगे। इस प्रकार वह महाअभिमानी पौण्ड्रक महावीर सात्यकि से उलझा हुआ साँड से उलझे हुए साँड की भाँति शोभा पाने लगा।'

'इधर निषादों के राजा महान धनुर्धर एकलव्य से महाबली बलराम उलझे हुए थे। बलराम ने दस बाणों से उसे घायल कर, अन्य दस बाणों से उसके धनुष को काट दिया। दस बाणों से सारथी को मारा और तीस बाणों से उसके रथ को तोड़ दिया। भल्ल नामक एक ही बाण से उसके रथ की ध्वजा भी काट डाली। तब दस ताल वृक्षों जितना दृढ़ और विशाल धनुष को उठाकर एकलव्य ने बलराम को अपनी बाण वर्षा से

आहत किया। महापराक्रमी बलराम ने तब क्रुद्ध होकर एकलव्य के उस दिव्य धनुष को भी मुठिया के पास से काट डाला। सर्प के समान भयंकर दस बाणों से अपने दिव्य धनुष को भंग हुआ देख एकलव्य ने अत्यंत क्रोध के साथ निशित नामक खड्ग बलराम पर फेंका, जिसे बलराम ने मार्ग में ही अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया। तब सिंह के समान गरजते हुए बलराम ने निषादों की सेना पर वो कहर बरसाया कि रात्रि में ही माँस भक्षी पिशाच निषादों की सेना के शवों के लोथड़ों में से अंतड़ियाँ खींच-खींचकर खाने लगे और उन्हें फाड़कर नसों से उनका रक्त चूसने लगे।'

श्रीकृष्ण से पौण्ड्रक का युद्ध – 'हे राजन्! प्रातःकाल जब कृष्ण द्वारिका चले, तो मार्ग ही में रण का कोलाहल सुन कर वे समझ गए कि द्वारिका पर पौण्ड्रक चढ़ आया है। तब उन्होंने वहीं से पंचजन्य शंख का नाद किया। उस घोष को सुनते ही वृष्णिवंशियों का उत्साह चौगुना हो गया। वे समझ गए कि कृष्ण द्वारिका पहुँचने ही वाले हैं। कुछ ही क्षणों में उन्होंने गरुड़ पर विराजित श्रीकृष्ण को वहाँ पहुँचते हुए देखा। कृष्ण ने तब गरुड़ को स्वर्ग वापस चले जाने का आदेश देकर, अपने सारथी दारुक से अपना रथ मँगवाया। श्रीकृष्ण

अपने रथ पर सवार होकर मैदान में उतरे। तब पौण्ड्रक कृष्ण को युद्ध में आया हुआ देखकर सात्यकि को छोड़ कृष्ण से युद्ध करने की इच्छा से मूर्खता पूर्ण गर्व से भरा उसी प्रकार खिंचा चला आया, जैसे पतंगा अपने अन्तकाल में दीपशिखा के प्रकाश से आकर्षित होकर उसकी ओर खिंचा चला जाता है।'

'तब कृष्ण के सम्मुख वह अभिमानी बढ़ चढ़कर बोलने लगा। इस पर कृष्ण ने मुस्कुरा कर कहा, 'हे राजेन्द्र! जिह्वा द्वारा तो स्त्रियाँ युद्ध किया करती हैं। पुरुष भुजाओं से युद्ध करते हैं। अतः यदि वीर हो तो युद्ध करो। युद्ध स्वतः ही सब कुछ स्पष्ट कर देगा, तुम्हें कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। तब पौण्ड्रक क्रुद्ध होकर कृष्ण पर अति तीव्र गति से बाणवर्षा करने लगा। उसने दस बाण कृष्ण को और पच्चीस बाण दारुक को मारे। दस बाण रथ के घोड़ों को मारे। तब श्रीकृष्ण ने शार्ङ्गधनुष पर तीक्ष्ण बाण चढ़ाए। चार बाणों से पौण्ड्रक के रथ के चारों घोड़े। एक बाण से सारथी और एक बाण से रथ की ध्वजा काट गिराई। दो बाणों से रथ के दोनों पहियों को तिलतिल करके उड़ा दिया। पौण्ड्रक पर तीर न चलाकर तब वे हँसते हुए खड़े हो गए।'

पौण्ड्रक का वध—'अपने इतने बाणों द्वारा भी कृष्ण का उनके रथ, घोड़े व सारथी सहित कुछ भी न बिगड़ा देख और कृष्ण के थोड़े ही बाणों से इतना चमत्कार देख पौण्ड्रक चिढ़ गया। तब वह निशित नामक खड्ग लेकर कृष्ण पर झपटा। कृष्ण ने एक ही उत्तर बाण से उसका खड्ग छिन्न-भिन्न कर दिया। तब पौण्ड्रक ने 'महाघोर' परिघ से कृष्ण पर आक्रमण किया पर कृष्ण ने एक ही बाण से उस खड्ग के भी दो टुकड़े कर दिए। इस प्रकार कृष्ण ने पौण्ड्रक को बहुत देर तक 'खिलाया' फिर अपने सुदर्शन द्वारा पौण्ड्रक का वध कर दिया। तब सब यादव कृष्ण की जय-जयकार करने लगे। उधर एकलव्य को बलराम जी ने युद्ध में त्रस्त और घायल कर दिया। तब एक लव्य अपनी प्राण रक्षा के लिए समुद्र की ओर भागा। बलराम जी ने अपनी भयंकर गदा लेकर उसका पाँच योजन तक पीछा किया। तब प्राण न बचते देख एक लव्य समुद्र में गोता मारकर अदृश्य हो गया (और दूसरे द्वीप में जा कर रहने लगा)। बलराम तब वापस लौट आए। फिर द्वारिका में कृष्ण ने बलराम आदि के साथ प्रवेश करके रुक्मणी व सत्यभामा आदि को अपने शिवजी के प्रति तप और वरदान में कामदेव को पुत्र रूप में प्राप्त होने

का समाचार देकर प्रसन्न किया।'

हंस और डिम्भक का वृत्तान्त

जनमेजय द्वारा जिज्ञासा व्यक्त किए जाने पर तब वैशम्पायन जी ने हंस और डिम्भक का वृत्तान्त भी सुनाया। जो इस प्रकार है– 'शाल्व देश का राजा ब्रह्मदत्त था। उसकी दो सुंदर रानियाँ थीं, किन्तु दोनों ही से कोई संतान न थी। मित्रसह नाम का एक वेदान्ती ब्राह्मण राजा का मित्र था, किन्तु संयोग से वह भी संतान हीन था। संतान प्राप्ति के उद्देश्य से ब्रह्मदत्त ने रानियों के साथ दस वर्ष तक शिवजी के प्रति तप किया। और मित्रसह ने वैष्णव योग किया। इस प्रकार शिव के वरदान से ब्रह्मदत्त को दोनों रानियों से एक-एक संतान– हंस और डिम्भक प्राप्त हुईं। मित्रसह को विष्णु की कृपा से जार्नादन नामक संतान हुई। हंस राजा का ज्येष्ठ पुत्र था। तीनों बालकों ने साथ-साथ शिक्षा पाई। शस्त्र-अस्त्र संचालन, घुड़ासवारी, वेद-वेदांग आदि में एक साथ निपुणता पाई। हंस और डिम्भक महादेव की कृपा से महाबली और तेजस्वी थे। जनार्दन भी कृष्ण ही की भाँति परम तेजस्वी और बलवान था। तीनों कुमारों में अपने पिताओं की भांति ही अभिन्न मित्रता हो गई।'

हंस व डिम्भक की वर प्राप्ति—बाद में उन्होंने तप करने का निश्चय किया। हिमालय पर जाकर बल और अस्त्र विद्या में सर्वश्रेष्ठ हो जाने के उद्देश्य से हंस और डिम्भक केवल वायु और जल भक्षण करते हुए। शिवजी के प्रति तप करने लगे। उन्होंने पाँच हजार वर्षों तक निम्न स्तोत्र से शिवाराधना की—

नमस्ते देवदेवति शंकरेति दिवानिशम् ।
हर सर्व शिवानन्द नीलग्रीव उमापते ॥
वृषभध्वज विरुपाक्ष अर्यक्ष जगतीपते ।
भक्तप्रिय गिरिशेष वामदेव शिवाच्युत ॥
सद्योजात महादेव देवदेव गुहाशय ।
भूतभावे देवेश प्रणवात् मन्सदाशिव ॥
इत्यादिनामभिनित्यं स्तुवन्ता शंकरं भवम् ।
हृदि कृत्वा विरुपाक्षं तपस्तेपतुरंजसा ॥

अर्थात्– हे देवताओं के भी देवता शंकर आपको दिन रात प्रणाम करता हूँ। हे हर, शर्व, शिवानन्द, नीलकण्ठ, उमा के स्वामी महादेव ! हे वृषभध्वज, विरुपाक्ष, हर्यक्ष, जगत् के नाथ ! हे भक्तप्रिय, गिरीश, वामदेव, अच्युत्, शिव ! स्वयम्भुव (स्वयं उत्पन्न होने वाले), महादेव, देवाधिदेव, गुह्याशय ! हे भूतभावन, देवताओं के भी पूज्यनीय, प्रणव की आत्मा, सदाशिव

इत्यादि नामों से आपकी नित्य स्तुति करता हूँ। कल्याण करो। विरुपाक्ष की तपस्या में हृदय से निरंतर लीन रहता हूँ। मुझ पर कृपा की दृष्टि करो, मैं प्रणाम करता हूँ।

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'इस प्रकार शिव के प्रकट होकर वर माँगने के लिए कहने पर उन दोनों भाइयों ने कहा, 'हे चन्द्रमौली ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें दो वर दो पहला तो यह कि हम–देवता, असुरों, यक्ष, गंधर्वों तथा दानवों द्वारा जीते न जा सकें। और जब भी हम युद्ध को जाएँ आपके दो भूतगण हमारी सहायता को साथ रहें। दूसरा यह कि हमारे पास रौद्रास्त्रों का संग्रह हो जाए। समस्त दिव्य अस्त्र तथा महेश्वर, रौद्र एवं ब्रह्मशिर नामक महाअस्त्र भी हमारे पास रहें। दिव्य अभेद्य कवच, धनुष तथा फरसा भी रहे।' तब आशुतोष ने कहा, 'ऐवमस्तु। कुण्डोदर और विरुपाक्ष नामक भूतेशगण तुम्हारी सहायता को रण में भी रहेंगे।' उधर जनार्दन ने भी विष्णु की उपासना की और ब्रह्म तत्व में अत्यंत प्रवीणता प्राप्त कर ली। बाद में वे तीनों घर को लौट आए और माता-पिता का आर्शीवाद लेकर, विवाह किया। तब यज्ञ आदि करते हुए अपनी पत्नियों के साथ वे तीनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।'

दुर्वासा ऋषि का अपमान –'एक बार हे

राजन् ! वे तीनों मित्र वन में शिकार के लिए निकले। शिकार करते हुए वे सिद्धों और मुनियों द्वारा सेवित पुष्कर नामक तालाब पर जा पहुँचे। तब श्रमित होने के कारण उन्होंने वहाँ विश्राम किया और अपनी प्यास बुझाई। फिर निकट ही एक आश्रम को देखकर वे तीनों पैदल ही वहाँ चल पड़े। वह कश्यप ऋषि का आश्रम था। कश्यप अन्य मुनियों के साथ वहाँ वैष्णव नामक यज्ञ कर रहे थे। उन सबसे मिलकर वे समीप ही स्थित दुर्वासा ऋषि के आश्रम पर पहुँचे। दुर्वासा उस समय लाल कोपीन धारण करके बैठे हुए थे। तुम जानते ही हो दुर्वासा महाक्रोधी, प्रचण्ड तेज और उग्रवीर्य वाले ऋषि हैं। उनकी क्रोधाग्नि तीनों लोकों को भस्म कर देने में समर्थ हैं, अतः कुपितावस्था में देवता भी उनकी ओर देखने का साहस नहीं कर सकते। ऐसे परम तेजस्वी उन दुर्वासा को कषाय वस्त्रों के लाल कोपीन में देखकर हंस और डिम्भक उनका अपमान करते हुए हँसने लगे।'

वे बोले, 'समस्त आश्रमों में श्रेष्ठ गृहस्थाश्रम को छोड़कर यहाँ एकांत में विचित्र वेशधारण किए तप का ढोंग करने वाला यह कौन पाखंडी बैठा है ? गृहस्थों का जीवन माता की भाँति सदैव सबका पोषण करने वाला और धर्मपूर्ण होता है। अन्य किसी भी आश्रम में लोक

व्यवहार, परोपकार तथा अतिथि सत्कार आदि की वैसी सुविधा, प्रबन्ध व मर्यादाएँ नहीं होतीं। अन्य सभी आश्रम तो मात्र अपने स्वार्थ की सिद्धि (शक्ति संचय, विद्यासंचय तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए) का ही विधान होता है। अतः निश्चय ही गृहस्थ समस्त आश्रमों में सर्वोत्तम है। फिर यह कौन मूर्ख ऐसे उत्तम आश्रम का त्याग कर संन्यासी बना यहाँ आश्रम बना कर लोगों को ठग रहा है ? और किसके ध्यान में लीन होने का ढोंग कर रहा है ?' ऐसा कहते हुए अपने दुर्भाग्य के वशीभूत हुए वे दोनों जनार्दन द्वारा रोके जाने के बाद भी जनार्दन को भी साथ लेकर दुर्वासा के शिष्यों के पास जा पहुँचे, और शिष्यों से बोले–

'यह कौन महामूर्ख तुम्हारा गुरु बना बैठा है ? इसे स्वयं किसी योग्य गुरु से शिक्षा नहीं मिली, ऐसा लगता है। इसी लिए यह विचित्र वेश धारण कर यहाँ पाखण्ड कर रहा है और तुम सब को ठग रहा है। आज हम तुम्हारे इस ढोंगी गुरु सहित तुम सबको गृहस्थाश्रम में भेजकर ही जाएँगे। क्योंकि राजा होने के नाते हमारा कर्त्तव्य है कि व्यवस्था करें। –तब सभी शिष्यों ने उन दोनों भाइयों के अनिष्ट की आशंका से काँपते हुए अपने महाक्रोधी आचार्य दुर्वासा की ओर भयभीत

होकर देखा। वे अपने गुरु का क्रोध जानते थे। अभी किसी भी क्षण दुर्वासा की कोपदृष्टि उन दोनों भाइयों को भस्म का ढेर बना देने वाली थी। तभी जनार्दन दुर्वासा को प्रणाम करता हुआ हंस और डिम्भक से बोला–

'मित्रो ! इस लोक और परलोक दोनों के लिए भयकारक–ऐसे वचन मत कहो। मैंने तुमको पहले भी मना किया था। अब फिर कहता हूँ। ये कालदण्ड की भाँति भयंकर तेज वाले महर्षि दुर्वासा हैं। जो अपने बाँधवों तथा कुल सहित जीवित रहने की इच्छा रखता हो उसे दुर्वासा जी को भी क्रुद्ध न करना चाहिए। अतः तुरंत इनसे क्षमा माँग लो, अन्यथा इसी क्षण अपनी आयु और सौभाग्य को नष्ट हुआ समझो। मित्र होने के नाते हित की बात कहना मेरा कर्त्तव्य था। सो मैंने कही। अब आगे जैसी तुम लोगों की इच्छा। लेकिन तुम लोग नष्ट हो गए तो मैं भी सिर पटक-पटक कर यहीं प्राण दे दूँगा। अकेला वापस नहीं जाऊँगा। अतः भली प्रकार विचार लो। (अपने नहीं तो मेरे जीवन को बचाने के लिए ही दुर्वासा से क्षमा माँग कर लौट चलो)' हे राजन् ! किन्तु अपने दुर्भाग्य द्वारा प्रेरित वे दोनों भाई अपने मित्र की बात पर हँसने लगे और दुर्वासा के

साथ-साथ अपने उस श्रेष्ठ बुद्धि वाले मित्र जनार्दन का भी उपहास करने लगे। तब उन महातेजस्वी प्रचण्ड क्रोधावेग वाले उग्र स्वभाव के महर्षि दुर्वासा को क्रोध आ गया।'

दुर्वासा का क्रोधित होना -'दुर्वासा के नेत्र अंगारों की भांति लाल हो गए और उनके निःश्वास से शेषनाग की भाँति फुँफकार ध्वनि आने लगी। उन्होंने कहा, 'अरे मूर्खो ! तुम्हारे इस अक्षम्य अपराध के लिए तुम्हें इसी क्षण यमलोक भेज देता। किन्तु तुम्हारा यह सज्जन मित्र तुम्हारे कारण व्यर्थ ही कष्ट पाएगा और अपने प्राण त्याग देगा। अतः इस जनार्दन पर दया भाव होने के कारण मैं तुम दोनों को कोई दण्ड स्वयं नहीं दे रहा हूँ। किन्तु तुम्हें इसका दण्ड स्वयं यादेश्वर कृष्ण देंगे, यह निश्चित है। तुम्हारे इस जघन्य अपराध के परिणामतः तुम्हारे बंधु मगधनरेश जरासंध से भी तुम्हारा विरोध हो जाएगा। वह भी तुम्हारा साथ नहीं देगा।' फिर वे जनार्दन से बोले, 'और हे ब्राह्मण श्रेष्ण तुम्हारी विष्णु के प्रति भक्ति और दृढ़ होगी। भगवान् के चतुर्भुज रूप का दर्शन करके तुम अवश्य मोक्ष को प्राप्त होओगे। अब अपने इस दोनों उद्दण्ड मित्रों को यहाँ से ले जाओ। तुम्हारे कारण मैं अपने स्वभाव के विपरीत

होकर इन दोनों को स्वयं ही तत्काल दण्ड नहीं दिया है। किन्तु यदि ये और अभद्रता करेंगे तो मुझे अपने क्रोध पर संयम करना असंभव हो जाएगा। क्योंकि क्रोध यदि उस व्यक्ति को न जला दे जिसके कारण उत्पन्न हुआ है, तो क्रोधकर्त्ता को ही जलाने लगता है। अतः हे ब्राह्मण तुम तुरंत ही इन दोनों को यहाँ से ले जाओ।' इतना कहकर दुर्वासा ऋषि नेत्र बंद करके बैठ गए और अपने असह्य क्रोध को स्वयं ही सहन करने लगे (मनोबल से उसे वश में करने लगे।)।'

'हे राजन् ! वे दोनों भाई ऐसा सुनकर भी भयभीत न हुए और आश्रम में तोड़फोड़ करने को उद्धत हो गए। क्योंकि वे अपने दुर्भाग्य द्वारा प्रेरित थे और दुर्वासा के क्रोध को जानते न थे। उनकी बुद्धि विपरीत हो चली थी। तब उनके अनिष्ट की आशंका से प्रेरित होकर, अपनी सौगंध आदि देकर किसी प्रकार उनका वह सज्जन मित्र जनार्दन उन्हें बलपूर्वक आश्रम से वापस ले गया। इस प्रकार वे दुर्वासा के भीषण प्रकोप से बच गए।'

दुर्वासा ऋषि का द्वारिका जाना— 'दुर्वासा तब अपने शिष्यों सहित ही कुपितावस्था में द्वारिका चले गए। श्रीकृष्ण अन्य युदवंशियों के साथ सभा में बैठे हुए

थे। दुर्वासा के क्रोध में भभकते मुख को देखकर द्वारपाल की भी उन्हें रोकने की हिम्मत न हुई। वे धड़धड़ाते हुए सभा में जा पहुँचे। तब उनका वह रूप देख कर समस्त यदुवंशी सहम कर खड़े हो गए और सोचने लगे कि यह महाक्रोधी दुर्वासा इस समय क्या करेंगे ? और कृष्ण उनको किस प्रकार शांत करेंगे ? हे राजन् ! कृष्ण दुर्वासा को देखते ही उठ खड़े हुए। उन्होंने आगे बढ़कर उनके चरण स्पर्श किए और अपने आसन पर बैठने का आमंत्रण देते हुए कहा, 'हे महामुने ! सौभाग्य वश ही आज आपके दर्शन हो गए, किन्तु हे तपोश्रेष्ठ ! आपने स्वयं क्यों कष्ट किया। सेवक को आज्ञा देकर वहीं बुला लिया होता। आप कृपया इस आसन को गौरवांवित कीजिए और मुझको आदेश दीजिए। मैं आपका क्या प्रिय कर सकता हूँ ?'

'कृष्ण के इस प्रकार मधुर वचनों द्वारा सत्कार किए जाने पर दुर्वासा का क्रोध कुछ शाँत हुआ। उन्होंने आसन ग्रहण किया, किन्तु कृष्ण शिष्टता दिखाते हुए हाथ बाँधे खड़े रहे। तब दुर्वासा बोले–'हे यदुश्रेष्ठ ! तुम्हारे राजा व क्षत्रिय होने का क्या लाभ यदि तुम्हारे होते हुए ब्राह्मणों और ऋषियों का अपमान होता रहे। यदि प्रजा की रक्षा, सुविधा तथा अधिकार किसी के

द्वारा बाधित होते हों तो राजा को उसे दण्डित करके सुव्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए। आज दो अहंकारी क्षत्रिय मूर्खों द्वारा मैं अपने शिष्यों के सम्मुख अपमानित हुआ हूँ। और हे यादवेन्द्र आपके शासन का सम्मान करते हुए (कानून-न्याय और दण्ड व्यवस्था को अपने हाथ में न लेते हुए) मैंने समर्थ होते हुए भी स्वयं उनको दंडित नहीं किया है। किन्तु यदि आप भी उनके प्रति उदारता दिखाएँगे तो अराजकता उत्पन्न हो जाएगी। सुचारु राज्य के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था अनिवार्य होती है।'

'तब नीतिकुशल कृष्ण ने विनम्रता पूर्वक कहा- 'हे ऋषियों में श्रेष्ठ दुर्वासा जी। मेरे राज्य में इस प्रकार की उद्दण्डता हुई और आपका अनादर हुआ इस त्रुटि के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। हे भगवान् ! आप स्वयं ही अपना अनादर करने वाले इन्द्र को भी दण्ड देने का सामर्थ्य रखते हैं, तथापि मेरे यशवर्धन तथा कर्त्तव्य पालन का अवसर देने के लिए मुझे आदेश दे रहे हैं, इसके लिए मैं आप का हृदय से आभारी हूँ। आप कृपया मुझसे उन उद्दण्डों के नाम कहिए-वे स्वयं साक्षात् यम ही क्यों न हों, आपका अपमान करने के अपराध स्वरूप मैं स्वयं उन्हें निर्दयता पूर्वक मार डालूँगा। हे ऋषे ! आप अपने

असह्य क्रोध को शाँत कीजिए और अपना इच्छित कार्य बस हुआ ही समझिए।' इस प्रकार के वचनों को सुन कर दुर्वासा जी का क्रोध बहुत शाँत हो गया। तब उन्होंने कहा, 'हे यदुकुल भूषण ! वे दोनों शिव द्वारा वरदान पाए हुए महाबली हंस और डिम्भक नामक दो भाई हैं, जो शल्व वंशीय ब्रह्मदत्त के पुत्र हैं। दोनों अति उद्दण्ड, असभ्य और उश्रृंखल हैं। तब श्रीकृष्ण ने कहा, 'हे महर्षि ! वे दोनों किसी के भी द्वारा वरदान पाए हुए क्यों न हों, उन्होंने आपका अपमान करके अपने मृत्यु आदेश पर स्वयं ही हस्ताक्षर कर लिए हैं। वे अवश्य ही मेरे द्वारा शीघ्र ही मार डाले जाएँगे और हे तपोधन ! आपको जो न्याय के लिए स्वयं मेरे पास आने का कष्ट करना पड़ा है। उसके लिए मुझ प्रमादी को क्षमा कीजिए।'

'दुर्वासा ऋषि तब हँसते हुए बोले, 'हे माधव ! तुम अत्यंत ही चतुर, नीतिज्ञ और मर्यादाओं का पालन करने वाले हो। सर्वेश्वर होते हुए भी मर्यादावश मेरे चरणों में स्थित होकर मुझसे बार-बार क्षमा याचना करते हो। तुम्हारे यही गुण तो तुम्हें समस्त देवताओं से ऊँचा उठाते हैं। हे लीलाधर ! आप कौन हैं–क्या यह मैं नहीं जानता। अब बार-बार मुझसे क्षमा माँग कर मुझे लज्जित न करें और दुष्टों के विनाश का वह कार्य पूर्ण करें, जिसके

लिए आप पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं। कहकर दुर्वासा जी वापस लौट गए।'

समस्त सहयोगियों सहित हंस व डिम्भक वध

हंस डिम्भक द्वारा राजसूय की तैयारी – वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'हे नृपश्रेष्ठ ! उधर हंस और डिम्भक ने अपने पिता ब्रह्मदत्त को राजसूय यज्ञ करने का सुझाव दिया। शिव से वरदान पाए दो महाबली पुत्रों के होते उस महायज्ञ में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं हो सकता, ऐसा विचार कर चक्रवर्ती सम्राट बनने की इच्छा से ब्रह्मदत्त ने वह सुझाव मान लिया। तब जनार्दन ने दोनों मित्रों को सुझाव दिया– 'हे मित्रो ! इस यज्ञ को करने के विषय में पुनर्विचार कर लो क्योंकि गदायुद्ध के परमआचार्य महाबली जरासंध, धनुर्विद्या में निपुर्ण महारथी रुक्मी, गाण्डीवधारी धनुर्विद्या के विशेषज्ञ अर्जुन, महाबलशाली गदाधारी भीम, शूलयुद्ध में अत्यंतदक्ष युधिष्ठिर, कुशल तलवारबाज नकुल व सहदेव, गदायुद्ध में प्रवीण महाबली दुर्योधन, परशुराम के शिष्य और महारथियों को भी युद्ध में लज्जित करने वाले महाप्रतापी भीष्म, धनुर्विद्या के परम आचार्य

द्रोण, कुटिल रणनीतिज्ञ योद्धा शकुनि, महायोद्धा शिशुपाल, दन्तवक्र, अक्रूर, सात्यकि, कृतवर्मा आदि महावीरों के अलावा महाभयंकर मूसल और हल से ही युद्ध करने में दक्ष और गदायुद्ध के परमपारंगत आचार्य अतिबल शाली बलराम तथा इन सबसे अकेले ही रण में निपट पाने में समर्थ तेजस्वी श्रीकृष्ण आदि महावीरों के रहते हुए यह यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः पुनर्विचार कर लो।'

द्वारिका में हंस द्वारा दूत भेजना—'तब हंस और डिम्भक ने कहा, 'अरे मित्र ! तुम चिन्ता मत करो। इनमें से कोई भी शिव के वरदान के कारण हमारे सामने ठहरने में समर्थ नहीं है। रही बात कृष्ण और बलराम की तो उन्हें तो हमारे बाँधव जरासंध ने ही मथुरा से भागने पर विवश कर दिया था। तब से वो द्वारिका में समुद्र से रक्षा पाकर छिपे रहते हैं। अतः इस विषय में तुम भय न करो। और सर्वप्रथम उस भगोड़े कृष्ण के पास ही जाकर यज्ञ के लिए कर के रूप में सभी पदार्थों को हमारी ओर से माँगो। तब तक हम अपनी विशाल सेना को युद्ध के लिए तैयार करते हैं तथा इस महायज्ञ के लिए शेष प्रबन्ध करते हैं।' इस प्रकार मित्रों के ना मानने पर और द्वारिका जाकर कृष्ण के दर्शन का सुनहरा

अवसर हाथ में आया देख वह विद्वान ब्राह्मण जनार्दन अपने मित्रों की ओर से दूत बनकर द्वारिका चला गया।'

'द्वारिका में कृष्ण द्वारा उचित सत्कार पाकर जनार्दन उनके दर्शनों से धन्य हुआ। तब उसने संकोच पूर्वक कहा कि वह हंस और डिम्भक का दूत बनकर उनका संदेश लेकर आया है। कृष्ण ने उसका संकोच देखकर कहा, 'हे विप्र ! तुम जो कुछ भी संदेश लाए हो वह कहने योग्य हो, अथवा नहीं–तुम निर्भय होकर कहो। तुम दूत होने के कारण अवध्य हो। और इस सभा में अपने राजा का मुख अथवा प्रतिनिधि हो, अतः प्राणभय से या शिष्टता वश कुछ भी छिपाने की चेष्टा न करो। जैसा भी तुम्हारे राजा ने कहने को कहा हो, वैसा ही कहो। तुम्हारा कोई अहित नहीं होगा।' इस प्रकार कृष्ण से अभयदान पाकर उस जनार्दन ने संकोच को त्यागकर कृष्ण को हंस व डिम्भक का संदेश दिया। वो बोला– 'प्रभो ! मेरे राजा ने राजसूय यज्ञ का निश्चय किया है, अतः उस यज्ञ के लिए आप लोगों से कर लेने भेजा है। और कहलाया है कि यदि आपने शीघ्र ही ऐसा न किया तो अप्रिय परिणामों के लिए आप स्वयं उत्तरदायी होंगे।'– यह सुनकर बलराम आदि सभी यदुवंशी महावीर क्रोधित हो उठे। तब कृष्ण ने उनको शाँत करते हुए

परिहास पूर्वक कहा, 'अरे ! इन हंस और डिम्भक का अद्‌भुत साहस तो देखो। वो अपने यज्ञ के लिए मुझसे कर माँगते हैं। और ना देने पर अप्रिय परिणाम उत्पन्न करने की भी धमकी देते हैं। फिर कृष्ण हँसने लगे। उन्हें हँसते देख सभी यदुवंशी हँस और डिम्भक का उपहास उड़ाते हुए तालियाँ बजा बजा कर हँसने लगे और जनार्दन लज्जित हो गया।'

'तब श्रीकृष्ण ने जनार्दन से कहा, 'हे विप्र ! अपने राजा को कहना कि मैं युद्ध में तीक्ष्ण बाणों द्वारा कर दूँगा। यदि वह कर लेने का इच्छुक हो तो युद्ध का स्थान तयकर वहाँ आ जाए। दुर्वासा जी का अपमान करके उन दोनों ने काल को तो आमंत्रित कर ही लिया था। अब तो मानो महा विषधर भुजंग की बाँबी में ही हाथ डाल लिया है। शिव के वरदान के कारण ढीठ और उश्रृंखल हो गए हंस और डिम्भक को कह देना कि वे युद्ध में मेरे द्वारा अवश्य ही मारे जायेंगे, भले ही उनकी रक्षा के लिए स्वयं महाकाल शिव ही रणक्षेत्र में क्यों न आ जाएँ। बल्कि मित्र होने के कारण तुम्हें ऐसा कहने में संकोच होगा। अतः मैं सात्यकि को साथ भेजे देता हूँ। वे स्वयं तुम्हारे मित्रों को यह संदेश दे देंगे। मैं जानता हूँ कि उन अनाचारियों के मित्र होते हुए भी तुम सज्जन

और मेरे प्रति आदर रखने वाले हो, अतः तुम्हारा कल्याण होगा। किन्तु अपने मित्रों को क्षमादान देने के सम्बन्ध में मुझसे प्रार्थना न करना। उनकी मृत्यु तो दुर्वासा जी का अपमान करते ही निश्चित हो गई थी।' इस प्रकार कृष्ण ने जनार्दन को समझा कर सात्यकि के साथ भेज दिया। जनार्दन तब समझ गया कि उसके मित्रों का अंतकाल बस आ ही पहुँचा है। किन्तु वह दुखी होने के अलावा कर भी क्या सकता था ? उनके कार्य ही ऐसे थे।'

सात्यकि द्वारा हँस को चेतावनी—हँस तथा डिम्भक ने कुशलक्षेम पूछने के बाद सात्यकि से कहा, 'आप तो कृष्ण के दाएँ हाथ कहे जाते हैं। बताइए कृष्ण ने हमारे संदेश पर विचार करके क्या निर्णय लिया ? तब सात्यकि ने कृष्ण का संदेश ज्यों का त्यों सुनाने के बाद कहा, 'इच्छा तो यह है कि कृष्ण से कर माँगने की उद्दण्डता का दण्ड तुम्हारी जिह्वा को काटकर मैं अभी दे दूँ। किन्तु दूत की मर्यादाओं में बँधा होने से विवश हूँ। पुष्कर, प्रयाग अथवा मथुरा—जहाँ तुम्हारी इच्छा हो रण के लिए स्थान निश्चित करके मुझे सूचित करो। श्रीकृष्ण द्वारा वहीं पर रण में तुम दोनों का मस्तक काट कर गिराया जाएगा। बलराम, अक्रूर, उद्धव, कृतवर्मा तथा

सुद्रंष्ट व उग्रसेन जैसे महावीरों के साथ मैं सात्यकि भी तुम से अब वहीं मिलूँगा। शंकर ने तुमको वरदान दिया है। वे वरदान देकर बैठे हैं, बैठे ही रहेंगे और तुम दोनों मार डाले जाओगे। यह सत्य है।'

'तब हंस व डिम्भक क्रुद्ध होकर बोले, 'अरे दुष्ट ! हम भी तुम्हारे दूत होने के कारण ही मर्यादाबद्ध हैं अन्यथा अभी तुम्हें प्राणदण्ड देते। कृष्ण, बलराम आदि महावीरों के साथ तुम भले ही यमराज को भी युद्ध में सहायता के लिए ले आना। हमें कोई अंतर नहीं पड़ने वाला। तुम ग्वाले आज हम राजाओं को कर देने से मना कर रहे हो। युद्ध में कृष्ण के कंठ में हाथ डालकर कर निकाल लेंगे। कल पुष्कर क्षेत्र में अपने सहयोगियों सहित चले आना और घर पर अंतिम संस्कारों के प्रबन्ध करते आना। कृष्ण सहित तुम सब यदुवंशियों को हम युद्ध में इतिहास की बात बना देंगे। अब यहाँ से शीघ्र ही चले जाओ, अन्यथा दूत होने के बाद भी यहीं मार डाले जाओगे।' –तब सात्यकि ने भी दूत होने के कारण अधिक विवाद में न पड़ते हुए कहा, 'कौन कितने पानी में है कल पुष्कर क्षेत्र में ज्ञात हो जाएगा। तब यहाँ की इच्छा वहाँ पूरी करने का प्रयास करना। देखना यह है कि जिह्वा ही की भाँति रण में अस्त्र-शस्त्र

भी कुशलता पूर्वक चला सकते हो या नहीं।' कहकर सात्यकि निर्भीक सिंह की भाँति उनकी सभा से चले गए। और द्वारिका लौट कर कृष्ण को सारा समाचार दिया। तब कृष्ण ने पुष्कर क्षेत्र में सेनाओं को कूच करने के लिए तैयार होने का आदेश दिया। इधर सात्यकि के लौट जाने के बाद एक बार फिर जनार्दन ने डिम्भक और हंस को समझाने का प्रयास किया कि वे रण की इच्छा छोड़ कृष्ण की शरणागत हो जाएँ, पर वे दोनों जनार्दन का उपहास उड़ाते हुए अड़े रहे।'

पुष्कर में युद्ध –'हे राजन्! अगले ही दिन दोनों पक्षों की सेना पुष्कर नामक स्थान पर व्यूह रचना कर परस्पर उलझ गईं। तलवारों के टकराने, धनुषों की टंकार और गदाओं के ठनकने के साथ-साथ शंख नादों, घोड़ों की हिनहिनाहटों, हाथियों की चिंघाड़ों, रथों की गड़गड़ाहटों, मरने वालों के आर्त्तनाद तथा मारने वालों के सिंहनादों से उस क्षेत्र का समूचा वातावरण व्याप्त हो गया। आकाश धूल और बाणों से भर गया। पृथ्वी लोथड़ों और लाशों से पट गई और खून के नाले बहने लगे। डिम्भक की दस अक्षोहिणी सेना के अलावा शिव द्वारा वरदानिक भूतेश कुण्डोदर और विरुपाक्ष भी महाभयंकर त्रिशूल को धारण किए उनके

साथ थे। इसके अलावा युद्ध में इन्द्र को भी बुरी तरह परास्त कर देने वाला महाअसुर विचक्र भी हंस व डिम्भक का मित्र होने के नाते उनके साथ था। इसी प्रकार ८८ हजार सैनिकों के साथ हंस का एक और मित्र महाबलवान दैत्य हिडिम्ब भी उनके साथ था। ब्रह्मशाप के कारण महाबली जरासंध ने इस युद्ध में भाग नहीं लिया था। इस प्रकार पुष्कर क्षेत्र में देवासुर संग्राम की भाँति महाभयंकर संग्राम छिड़ गया था। उस युद्ध में ८७,००० हाथी, ४०,००० घोड़े, सारथियों सहित एक लाख रथ तथा तीस करोड़ पैदल सैनिक मार डाले गए थे।'

'उस युद्ध में कौन-कौन किस-किस से कैसे लड़ा उसका संक्षिप्त वर्णन भी करता हूँ सुनो –

कृष्ण और विचक्र का युद्ध – उस युद्ध में श्रीकृष्ण महापराक्रमी असुर विचक्र से भिड़े और प्रथम किश्त में बलराम हंस के साथ, सात्यकि डिम्भक के साथ तथा वसुदेव, उग्रसेन व कृतवर्मा भयानक दैत्य हिडिम्ब के साथ भिड़े। अक्रूर आदि श्रेष्ठ यदुवंशी अपनी सेनाओं ... हंस व डिम्भक के सेनापतियों और सेनाओं से ... गए। इस प्रकार वहाँ भीषण नर संहार होने लगा।'

विचक्र वध – 'कृष्ण ने विचक्र को ७३ बाणों से

बींधा। विचक्र ने भी कान तक खींच कर छोड़े गए अपने तीक्ष्ण बाणों से कृष्ण के हृदय तथा वक्ष को घायल किया। एक अति कठोर बाण को हृदय पर खाकर कृष्ण के मुख से पतली सी रुधिर रेखा फूट आई। तब कृष्ण ने क्षुरप्र नामक बाण से विचक्र के रथ की ध्वजा को काट गिराया। तीन बाणों से उसके सारथी और चार से उसके बलवान घोड़ों को मार डाला और सुतीक्ष्ण नामक बाण से उसका धनुष काट कर उसे रथ व अस्त्र से विहीन कर दिया। तब विचक्र ने कुपित होकर अपनी पराक्रमशालिनी दुःसह घोर गदा को कृष्ण के मस्तक पर फेंक मारा। कृष्ण गदा से आहत हुए, तभी विचक्र ने एक शिला उठाकर कृष्ण पर फेंकी। तब तक संभल चुके कृष्ण ने शिला को मार्ग ही में पकड़कर पुनः विचक्र पर दे मारा। विचक्र लड़खड़ा कर गिरा। तुरंत ही संभल कर एक महावृक्ष को उखाड़ कर उसने कृष्ण को मारना चाहा, किन्तु कृष्ण ने वृक्ष को छीनकर विचक्र की उसके द्वारा पिटाई की। तब विचक्र मूर्छित हो गया। कृष्ण ने शंखनाद किया तो विचक्र चेतन्य हुआ। अपने रथ की ओर भागकर वहाँ से महा तेजस्वी परिघ निकाल कर अपशब्द कहते हुए कृष्ण पर फेंका, कृष्ण ने अपने रथ से

शार्ङ्ग धनुष उठाकर बाण द्वारा उस परिघ को मार्ग में ही चूर्ण करके बिखेर दिया।'

'इस प्रकार विचक्र को बहुत खिलाने के बाद श्रीकृष्ण ने उसकी मृत्यु की इच्छा से आग्नेयास्त्र को अभिमंत्रित कर उस दुर्जेय विचक्र पर छोड़ दिया। विचक्र उस अस्त्र के प्रभाव से लाख और मोम से निर्मित भवन की भाँति धू-धू करके जलने लगा। विचक्र को नष्ट हुआ जान उसके दैत्य सैनिक प्राण रक्षा के लिए समुद्र की ओर भागे और आजतक लौट कर नहीं आए (या तो डूब मरे या समुद्री जलचरों द्वारा खालिए गए, या प्राणों के भय से अब तक वहीं छिपे हुए हैं)।

बलराम और हंस का युद्ध– 'बलराम का हंस के साथ घोर युद्ध हुआ। बलराम ने हंस को दस बाणों से और हंस ने बलराम को पाँच बाणों से बींधा। इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे को लहूलुहान करते हुए भीषण बाण वर्षा करने लगे। तब बलराम ने एक अत्यंत तीव्र बाण से हंस के मस्तक को बेधा। हंस उस प्रबल बाण से मूर्छित हो गया, किन्तु वरदान के प्रभाव से शीघ्र ही चेतन्य होकर उसने उत्तर में बलराम को दस तीक्ष्ण बाणों से घायल कर दिया। बलराम के मुख से रुधिर वमन होने लगा। मर्म पर आघात लगने पर भी हंस को

जीवित और शक्ति सम्पन्न देख उन्हें आश्चर्य हुआ। फिर अति क्रुद्ध होते हुए उन्होंने अविरल बाण वर्षा द्वारा हंस को ढक दिया। बलराम के बाणों से हंस के घोड़े, रथ, सारथी, तथा ध्वजा क्षतिग्रस्त हो गए, तब हंस ने भी कुपित होकर बलराम की ध्वजा को काट डाला, उनके घोड़ों और सारथी को मार डाला। बलराम तब रथ और धनुष छोड़ गदा लेकर उस पर टूट पड़े। गदा के प्रहार से उन्होंने उसके रथ को घोड़ों व सारथी सहित चूर्ण कर दिया। तब विरथ हुआ हंस भी गदा लेकर सामने आ डटा।'

'दो पर्वतों के टकराने के समान दोनों की भयंकर गदाएँ टकराने लगीं। उनके भीषण शब्दों से वह क्षेत्र दहल गया। तब उस महाभयानक युद्ध को देखने के लिए यक्ष, किन्नर आदि आकाश में एकत्रित होकर विस्मय करने लगे। बलराम का गदा कौशल अद्वितीय था, किन्तु हंस भी कम न था। फिर वरदान के प्रभाव से वह बलराम से जमकर लोहा ले रहा था। वे दोनों उछल-उछल कर विभिन्न पैतरों को बदलते हुए एक-दूसरे पर अति भीषण वार कर रहे थे। और एक दूसरे के प्रहारों को अपनी गदाओं पर रोक रहे थे। जो प्रहार चूके जाने पर उन्हें लग भी जाता था। बलराम अपने बल से

और हंस शिव के वरदान के बल पर उन्हें झेल जाते थे। मर्म पर आघात होने से भी उन दोनों के प्राण नहीं निकलते थे।'

सात्यकि और डिम्भक का युद्ध –'अब डिम्भक और सात्यकि के युद्ध का वर्णन भी सुनो। उस समय के खड्ग युद्ध के विशेषज्ञ छः वीरों (दुशासन का पुत्र, सोमदत्त का पुत्र, सात्यकि, डिम्भक, नकुल तथा अभिमन्यु) में सात्यकि तथा डिम्भक का विशेष स्थान था। दोनों उच्च कोटि के तलवार बाज थे। फिर भी पहले वे धनुष से लड़े। सात्यकि ने दस बाणों से और डिम्बक ने पांच हजार बाणों से एक दूसरे को बींधा। किन्तु सात्यकि ने प्रायः उसके समस्त बाण विफल करके पुनः उसे शक्तिशाली सात बाणों से बींधा। तब सात्यकि को डिम्भक ने दो हजार बाण और मारे, जिनमें तीन ही सात्यकि को लग सके, शेष बाणों को उस महावीर ने विफल कर दिया। इस प्रकार सात्यकि डिम्भक के बाण संचालन की गति पर और डिम्भक सात्यकि के सुरक्षा कौशल पर विस्मय करने लगे। तब डिम्भक ने सात्यकि के हाथों में अधिक देर धनुष रहने ना देना उचित समझकर अर्ध चन्द्राकार बाण से सात्यकि का धनुष काट दिया। और फिर क्षुख्र नामक एक ही

बाण से सात्यकि को आहत कर मुख से रक्त उगलने को विवश कर दिया। तब सात्यकि ने दूसरा धनुष उठाकर डिम्भक के धनुष को काट दिया। इस प्रकार डिम्भक द्वारा हर बार नया धनुष उठाने पर सात्यकि ने उसके एक सौ दस धनुषों को काटा। तब धनुषों के समाप्त हो जाने पर सात्यकि ने सिंह गर्जना की।'

'डिम्भक तब निर्णायक युद्ध की इच्छा से अपना खड्‌ग उठाकर सात्यकि पर लपका। सात्यकि ने भी तब धनुष त्यागकर खड्‌ग धारण किया और डिम्भक से उलझ गया। इस प्रकार खड्‌ग युद्ध के दो विशेषज्ञ अपने खड्‌गों को विद्युत की भांति चमका कर परस्पर टकराते हुए चिंगारियाँ उड़ाने लगे। तब समस्त सेना रण करना भूल उन दोनों का युद्ध देखकर प्रशंसा से इस प्रकार कहने लगी। अहो ! इन्हीं दोनों महावीरों का रण कौशल दर्शनीय है। हम तो व्यर्थ ही उछलकूद कर रहे हैं।'

हिडिम्ब का वध – 'वासुदेव और उग्रसेन वृद्ध होते हुए भी अति उत्साह और वीरता सहित हिडिम्ब दैत्य से लड़े। महावीर कृतवर्मा का सहयोग उनका बल बढ़ाए हुए था। किन्तु कृतवर्मा को अक्रूर आदि की सहायता के लिए मोर्चा बदलना पड़ा। तब वसुदेव और उग्रसेन की वृद्धावस्था के कारण महाबली हिडिम्ब आतंकपूर्ण

कार्य करता हुआ उन पर हावी हो गया। वह वसुदेव और उग्रसेन के बाणों की चोट खाकर और भी विकराल हो गया था। तब प्रतापी बलराम ने अपने से युद्ध करते हुए हंस को कृष्ण के सुपुर्द किया और स्वयं हिडिम्ब के सम्मुख जा पहुँचे। एक प्रबल मुष्टि के प्रहार से हिडिम्ब के मुख से रक्त निकालते हुए वह बोले, 'अरे ! उन वृद्धों से क्या लड़ता है। मैं तेरे योग्य हूं, मुझ पर पराक्रम दिखा।' तब हिडिम्ब क्रोध में फुँकारता हुआ बलराम पर झपटा। दोनों में लात घूंसों से भयंकर युद्ध हुआ। किन्तु महाबली बलराम के आगे उस राक्षस की एक न चली। वसुदेव तथा उग्रसेन के बाणों से पहले ही घायल हुआ वह महाकाय दैत्य शीघ्र ही बलराम द्वारा पीट-पीट कर मार डाला गया। बलराम ने गीले आटे की भांति लात घूंसों से उसके विकराल शरीर को गूँथ कर रख दिया था। अंत में बलराम ने उस के शव को उठाकर ढाई कोस दूर हवा में धुमाकर फेंक दिया। तब उसकी सेना के बचेखुचे दैत्य बलराम से आतंकित होकर विभिन्न दिशाओं में भाग निकले।'

'हे राजन् ! तब तक सूर्य ढल चुका था और चन्द्रमा का उदय हो रहा था अतः युद्ध के नियमों के अनुसार रात्रि हो जाने से युद्ध रोक दिया गया। इस प्रकार हंस

को कृष्ण के सम्मुख आए हुए होने पर भी एक दिन का जीवन और मिल गया। सात्यकि और डिम्भक का युद्ध भी अनिर्णीत ही रह गया। तथापि युदवंशी उस युद्ध में हावी रहे थे।'

हंस का वध और डिम्भक का मरण– 'हंस और डिम्भक ने अपनी सेनाओं सहित रात्रि में ही मोर्चा बदल लिया और पुष्कर क्षेत्र को छोड़कर गोवर्धन पर्वत पर चले गए। प्रातः होते-होते कृष्ण भी अन्य युदवंशियों सहित वहीं जा पहुँचे। तब हंस और डिम्भक को उनकी बची खुची सेना सहित यादवों ने घेर लिया। उनके प्राण संकट में देखकर शिव के गण भूतेश कुण्डोदर और विरुपाक्ष तब रण में उतरे। श्रीकृष्ण उन दोनों के साथ युद्ध करने लगे और शेष यादव हंस और डिम्भक के साथ।'

'वसुदेव ने सात, सारण ने २५, कंक ने दस, उग्रसेन ने ७३, विराट ने ३०, सात्यकि ने ८०, विपृथु ने ७० तथा उद्धव ने १० बाणों से हंस व डिम्भक को घायल किया। उन दोनों ने भी प्रत्येक को २०-२० बाणों से घायल किया। कृतवर्मा, अक्रूर व बलराम उन दोनों की सेनाओं पर पिल पड़े। इस प्रकार गोवर्धन पर्वत पर यमुना के समीप एक बार फिर रण छिड़ गया। सभी

वीर तीरों से आहत हुए रक्तिम शरीरों के साथ पलाश के पुष्पों की भाँति शोभायमान होने लगे।'

कुण्डोदर तथा विरूपाक्ष की पराजय – 'दोनों भूतेश अपने-अपने भयंकर त्रिशूलों के साथ कृष्ण से उलझे हुए थे। उन तीनों में भीषण युद्ध हुआ। कृष्ण ने उन दोनों को और उन दोनों ने कृष्ण को घायल किया। तब श्रीकृष्ण ने बारी-बारी से उन दोनों को उठाकर हवा में घुमाते हुए, खिलौनों की भांति कैलाश पर्वत पर फेंक दिया। वे दोनों कृष्ण के इस अद्‌भुत कर्म पर विस्मय करते हुए उन्हें शिव के समान ही पराक्रमी, तेजस्वी, शक्तिसम्पन्न तथा वीर्यवान् समझकर कैलाश से ही प्रणाम करने लगे और फिर भय तथा आदर के कारण पुनः रणक्षेत्र में लौट कर नहीं आए।'

'तब कृष्ण हंस से और बलराम डिम्भक से जा उलझे। उन चारों में अत्यंत घमासान युद्ध हुआ। और वे एक-दूसरे को विभिन्न प्रकार से आहत करने लगे। हंस द्वारा शाल के स्तम्भ के आकार का एक बाण अपने ललाट पर खाकर कृष्ण कुपित हो गए तब उन्होंने दारुक के स्थान पर सात्यकि को अपना सारथी बनाया और अभिमंत्रित किए हुए आग्नेयास्त्र से हंस को निशाना बनाया। हंस ने वरुणास्त्र से उसे रोका और वायवास्त्र से

कृष्ण को निशाना बनाया। तब कृष्ण ने महेन्द्रास्त्र से उसे रोका और माहेश्वरास्त्र हंस पर चलाया। हंस ने रौद्रास्त्र से उसका निवारण किया। इस प्रकार उन दोनों में गंधर्वास्त्र, राक्षसास्त्र, पैशाचास्त्र, याम्यास्त्र, असुरास्त्र, कौबेरास्त्र आदि अनेक दिव्यास्त्रों का आदान-प्रदान हुआ। तब हंस ने ब्रह्मास्त्र/ब्रह्मशिरास्त्र चलाया जिसे कृष्ण ने वैष्णवास्त्र से निष्क्रिय कर दिया। पुनः दूसरा वैष्णवास्त्र धनुष पर चढ़ाया तो शिव द्वारा दिए समस्त दिव्यास्त्रों के समाप्त हो जाने पर उस भयंकर अस्त्र को देखकर घबराकर यमुना में कालीय ह्रद (जहाँ कालिया नाग का कृष्ण ने मंथन किया था) में कूद पड़ा। तब कृष्ण ने भी वहाँ कूद कर उसे एक प्रचण्ड लात मारी और बाहर निकल आए।'

'हे राजन् ! कुछ लोग कहते हैं कि कृष्णजी की लात खाकर हंस मर गया। कुछ कहते हैं पाताल में चला गया, कुछ कहते हैं सर्पों ने खा लिया। किन्तु आज तक वह लौट कर नहीं आया है। यह सत्य है। डिम्भक ने जब अपने भाई का यह अन्त देखा तो वह बलराम से युद्ध करना छोड़ यमुना की ओर भागा। और कालिय ह्रद में प्रविष्ट हो गया। तब भाई के वहाँ से न मिलने पर पुनः बाहर आकर व्याकुलता पूर्वक कृष्ण से पूछा, 'मेरा

भाई कहाँ गया ?' कृष्ण ने हंस कर कहा, 'जाओ यमुना से पूछो।' तब वे पुनः ह्रद में जा घुसा। किन्तु असफल होकर बाहर निकल आया। तब भाई के दुख में अपनी जीभ पकड़ कर कण्ठ से उखाड़ डिम्भक ने आत्म हत्याकर ली। इस प्रकार वे दोनों भाई नष्ट हो गए।'

नन्द, यशोदा आदि से मिलकर कृष्ण का द्वारिका लौटना

वैशम्पायन जी आगे बोले, 'हे कौरण्य ! जब नन्द और यशोदा आदि को यह समाचार ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण और बलराम गोवर्धन पर्वत पर पधारे हुए हैं, तो वे मक्खन, दही, मठ्ठा, खीर आदि के साथ वहाँ पहुँचे। उनके साथ समस्त गोप और गोपिकाएँ भी कृष्ण के दर्शनों की इच्छा से वहाँ आ गए। कृष्ण ने बलराम सहित माता यशोदा और नन्द बाबा को प्रणाम किया, फिर माता की गोद में बैठकर बड़े प्रेम से माखन मिश्री आदि खाए और ग्वालों व गोपिकाओं से उनकी कुशलक्षेम पूछी। तब उन सबने इस प्रकार कहा, 'हे कान्हा ! तुम्हारे चले जाने के बाद सब कुछ कुशल होते हुए भी मानो उजाड़ हो गया है। हमारा मन, हमारा आनन्द, हमारा उत्साह, हमारा सुख तो हे कन्हैया तुम्हारे ही साथ चला

गया था। हम तो तब से केवल श्वास लेने के कारण ही जीवित हैं, अन्यथा जीवन का कोई और लक्षण (खुशी, उमंग, उत्साह आदि) शेष नहीं रह गया है। अब तुम्हारे आने के समाचार को सुनकर मानो हमारे निष्प्राण शरीर फिर से जी उठे हैं। तुम्हें जी भर कर देख लिया है, तो आगे और जीते रहने के लिए सहारा मिल गया है।' इस प्रकार के ममता पूर्ण वचनों से रोते हुए उन सबने कृष्ण से अपना दुख कहा। तब कृष्ण ने बहुत प्रकार से सांत्वना देकर उन सबको शाँत किया और सभी से भावभीनी विदाई ली।'

'समर में विजयी होकर महान असुरों तथा दुष्ट राजाओं का वध करने के उपलक्ष्य में यशोदा माता ने दोनों भाइयों की आरती उतारी। नन्दबाबा ने उनके सिरों को सूँघकर आशीष दिया और समस्त गोप-गोपिकाओं ने उनकी जय-जयकार की। इस प्रकार सम्मान और प्रेम प्राप्त कर सजल नेत्रों से विदाई लेकर कृष्ण बलराम तथा अन्य यदुवंशियों के साथ द्वारिका पुरी में वापस लौट आए।' इस प्रकार जो जो तुमने पूछा था सब मैंने तुम्हें सुना दिया।'

महाभारत की कथा श्रवण का फल

जनमेजय बोले– 'प्रभो आपने कृपाकर मुझे महाभारत और उसका खिल भाग– कृष्ण भगवान का सम्पूर्ण चरित्र सुनाया कृपया इसके विधान और फल के विषय में भी मुझसे कहिए।'

तब वैशम्पायन जी ने कहा, 'हे राजन् ! देवगण लीला के निमित्त इस पृथ्वी पर मानव रूप में अवतरित हुए थे और महाभारत की लीला करके लौट गए। रुद्र गण, साध्यगण, विश्वदेव, आदित्य, अश्विनीकुमार, लोकपाल, गुह्यक, महर्षि, गंधर्व, नाग, शेषनाग, यम, धर्म, अधर्म, वायु, इन्द्र, विद्याधर, यक्ष, सिद्धगण, स्वयम्भुव, काव्यायन, पर्वत, सागर, गंगा आदि नदियाँ, वसु, अप्सराएँ, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु आदि तथा इनके अलावा भी बहुत से स्थावर तथा जंगम देवता, दानव स्वयं भगवान् विष्णु सहित इस महाभारत में दिखाई पड़ते हैं।' उनके यश का गान तथा कर्मों का कीर्तन इस महाभारत कथा को पढ़ने से होता है। अतः महाभारत के अध्ययन या श्रवण से घोर पातकी मनुष्य भी पापों से मुक्त हो जाता है। यही इस कथा का सबसे उत्तम प्रभाव है। इसके अलावा नीतिज्ञान, रण, कूट

तथा राजनीति आदि के साथ-२ जीवन के आदर्शों के विषय में तो सीखने को मिलता ही है। नारायण के विभिन्न नामों को लेने का प्रभाव भी स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।'

'महाभारत के प्रथम पर्व का श्रवण या अध्ययन करके कामनानुसार ब्राह्मणों को तृप्त करने वाला अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है। दूसरे पर्व का श्रवण या अध्ययन करने से अतिरात्र व्रत का फल प्राप्त होता है। तीसरे पर्व को सुनने या पढ़ने पर द्वादशाह यज्ञ का फल प्राप्त होता है। चौथे पर्व से वाजपेय यज्ञ, पाँचवें से वाजपेय से दूना, छठे पर्व से चौगुना तथा सातवें से छठे का तिगुना फल प्राप्त होता है। आठवें पर्व के अध्ययन या श्रवण से राजसूय यज्ञ के समान फल प्राप्त होता है। नवें पर्व से अश्वमेघ यज्ञ के समान और दसवें पर्व से अश्वमेघ का दुगुना फल प्राप्त होता है। किन्तु इसको श्रद्धापूर्वक श्रवण करना चाहिए। कथावाचक तथा ब्राह्मणों को भी योग्यतानुसार अधिकाधिक दान देकर प्रसन्न करना चाहिए। तथा भोजन वस्त्र आदि द्वारा तृप्त करना चाहिए। और हे राजन् ! महाभारत के खिल भाग हरिवंश का तो एक श्लोक भी सुन लेने से विष्णु की कृपा प्राप्त होने लगती है। फिर श्रद्धापूर्वक पूरा पुराण सुन लेने पर तो भला क्या संभव नहीं होगा।'

जैसा कि कहा गया है–

यत्र विष्णुकथा दिव्या श्रुतवश्च सनातनाः ।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥
एतत्पवित्रं परमेतद्धर्मनिदर्शनम् ।
एतत्सर्वगुणोंपेतं श्रोतव्यं भूमिमिच्छता ॥
क्रियतेऽसारसंसारे वाञ्छितस्यककारणम् ।
हरिवंशस्य श्रवणमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥
अश्वमेघसहस्त्रेण वाजपेय शतैस्तथा ।
यत्फलं प्राप्यते पुम्भितद्धरेवंशपारणात् ॥
अजर अमरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं ।
सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमन्यन्तसूक्ष्यम् ॥
त्रिभुवनगु रूमीशं त्वां प्रपन्नोऽस्मि विष्णो ।
सर्वस्तस्तु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ॥
सर्वेषां वाञ्छिता अर्था भवन्त्वस्य च पाराणात् ॥

वैशम्पायन जी के इस प्रकार कहने के बाद महाराज जनमेजय कहने लगे–'हे प्रभो ! आपने कृपापूर्वक मुझसे वह सब कहा, जो-जो भी मैंने आपसे पूछा। किन्तु हे प्रभो षट्पुर में रहने वाले निकुम्भ आदि दैत्यों के वध के वर्णन के समय शिव द्वारा त्रिपुर दहन की बात आई थी। कृपया मुझे त्रिपुरासुर वध के विषय में भी बताएँ ।'

त्रिपुरासुर-वध

तब वैशम्पायन जी बोले- 'हे राजन्! प्राचीन काल में त्रिपुर नामक एक महान असुर हुआ था। सूर्यनाभ तथा चन्द्रनाभ नामक दो महाअसुरों के साथ मिलकर उसने आकाश में देवलोक तथा पितृलोक जाने वाले मार्गों को काटकर कई सौ योजन विस्तार वाले तीन पुरों का निर्माण किया। वे तीनों स्वेच्छा से आकाश में विचरण करने में समर्थ थे। अतः उन्होंने पुर निर्माण के लिए आकाश को चुना और देवताओं के मार्ग का अतिक्रमण कर लिया। भव्य अट्टालिकाओं, श्रेष्ठ मणियों तथा बहुमूल्य रत्नों के साथ उत्तम कलाकारी से निर्मित वे तीनों पुर गंधर्व नगर से शोभा में कम न थे। किन्तु जितने वे सुंदर और सुशोभित थे उतने ही अभेद्य और सुदृढ़ भी। उनमें एक पुर स्वर्ण से दूसरा रजत से और तीसरा लोहे से निर्मित था। इन पुरों को वहन करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी तथा सुदृढ़ पंख वाले अति तीव्रगामी, शक्तिशाली अश्व वायु से भी तीव्र वेग से चलते थे। इस प्रकार वे तीनों पुर एक के ऊपर एक सदैव आकाश में भ्रमण किया करते थे। यूँ समझो कि कई सौ योजन प्रमाण वाले वे पुर वास्तव में महाविशाल

रथों की भांति थे, जिनमें सम्पूर्ण नगर बसा हुआ था और वे आकाश की परिक्रमा करते रहते थे। देवता लोग देवयान मार्ग तथा पितृयान मार्ग का इन पुरों द्वारा अतिक्रमण किए जाने से अत्यंत खिन्न थे।'

'किन्तु वे विवश थे। क्योंकि उन तीनों असुरों ने ब्रह्मा से शिव के अतिरिक्त अन्य सभी देवताओं आदि से अवध्यता का वरदान प्राप्त किया हुआ था। और शिव भी केवल उसी अवस्था में उनको मार सकते थे। जब एक सीध में आए उनके तीनों पुरों को एक ही बाण से दग्ध कर डालते। अनेक वर्षों के बाद क्षण भर को वे तीनों पुर एक सीध में होते थे। अतः उन असुरों के मारे जाने की सम्भावना ना के बराबर थी। इस प्रकार तप द्वारा वरदान पाकर वे महाबली, महापराक्रमी महाअसुर और भी उद्दण्ड और अभिमानी हो गए थे। देवताओं को वे अपने पैरों की जूती समझने लगे थे। तब भला ऋषियों और मनुष्यों की तो गणना ही क्या थी।' देवता लोग रक्षा के लिए ब्रह्मा की शरण में गए तब ब्रह्मा ने बताया कि महावीर्य शिव के अतिरिक्त और कोई उन असुरों को समर में पराजित कर मार नहीं सकता, अतः वे शिव की शरण में जाएँ।'

'तब वे देवगण बाघम्बर धारण करके बैठे हुए

भगवान् शिव के पास कैलाश पर पहुँचे और शिव को स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करने के बाद उन तीनों दैत्यों को मारकर देवताओं की रक्षा के लिए निवेदन किया। इस पर शिव ने उन्हें आश्वासन दिया और अपना पिनाक धनुष तथा त्रिशूल धारण कर युद्ध को चले गए। और अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा त्रिपुर में रहने वाले असुरों को नष्ट करने लगे। देवताओं ने भी शिव का साथ पाकर उत्साहित होते हुए असुरों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। त्रिपुर के असुर भी अपने भयंकर अस्त्रों के साथ देवताओं से युद्ध करने लगे। समस्त आकाश, बाणों, तोमरों, पट्टिशों, परिघों कटंकयुक्त गदाओं, परशुओं, खड्गों, शूलों तथा अन्य शस्त्र-अस्त्रों से पट गया। तभी सूर्यास्त हो जाने से असुरों का पराक्रम और बढ़ गया। (रात्रि में राक्षसों का बल और प्रभाव बढ़ जाते हैं) और देवताओं का अंधकार में युद्ध कर पाना कुछ कठिन होने लगा। इस प्रकार उस युद्ध में असुरों का पलड़ा भारी हो गया। तथा देवता लोग त्रस्त होने लगे। तब असुरों ने अत्यंत भारी अस्त्रों का प्रयोग किया और शिलाओं की वर्षा की।'

'हे राजन् ! इस प्रकार शिलाओं और गुरुतम अस्त्रों के प्रयोग से इन्द्र आदि देवता व्यथित हो गए और शिव

का रथ भी संकट में पड़ गया। (क्योंकि अभी तीनों पुर एक सीध में नहीं आए थे, अतः असुरों का पराक्रम बढ़ा हुआ था।) और पृथ्वी पर गिरने लगा, जिससे भूमि व पर्वत आदि काँप उठे। समुद्र क्षुब्ध हो गए और दसों दिशाएँ भयानक लगने लगीं। तब विष्णु जी ने वृषभ का रूप धारण किया और अपने सींगों पर रोककर शिव के रथ को ऊपर उठाने लगे। उसी समय तीनों पुर एक सीध में आए, तब पहले ही से सतर्क हुए शिव ने अग्निमय बाण को ब्रह्मास्त्रमंत्र से अभिमंत्रित करके, सत्य, ब्रह्मयोग व उग्रतप से संयुक्त कर तीनों प्रकार की शक्तियों अ+उ+म=ॐ अर्थात् ज्ञान, क्रिया व संकल्पशक्ति से जागृत कर त्रिपुर की ओर छोड़ दिया। तब वे तीनों अभेद्य पुर अपने स्वामियों सहित जलकर भस्म होते हुए भूमि पर आ गिरे। बचे खुचे राक्षसों ने भागकर षट्पुर में शरण ली। इस प्रकार त्रिपुरासुरों का अंत हुआ। तब समस्त देवगण शिव की स्तुति करने लगे और शिव भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे। तभी से शिव का नाम त्रिपुरारी, त्रिपुरांतक तथा त्रिपुरदमन हुआ।'

'इस प्रकार हे श्रेष्ठ राजा जनमेजय ! जो तुमने त्रिपुर दहन और त्रिपुरासुरों के शिव द्वारा वध किए जाने का

और वहाँ से निकुम्भ आदि राक्षसों के भागकर षट्पुर में शरण लेने का वृतान्त मुझसे जानना चाहा था। वह भी मैंने तुमसे कह दिया। अब हरिवंश पुराण को विशेष रूप से युगों एवं मन्वन्तरों के वर्णन सहित पुनः सारगर्भित रूप में कहता हूँ, ताकि तुम भली प्रकार स्मरण रखते हुए कल्याण को प्राप्त हो सको। पूर्ण एकाग्रता से सुनो–

हरिवंश कथा का उपसंहार

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'इसमें प्रथम सर्ग आदि सर्ग है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति की प्रक्रिया का क्रमशः वर्णन किया गया है। द्वितीय सर्ग भूत सर्ग है। जिसमें युगों तथा मन्वन्तरों आदि का कालावधी सहित वर्णन है। फिर बेनु पुत्र राजा पृथु का चरित्र कहा गया है। तत्पश्चात मनुओं का कीर्तन और वैवस्वत मनु की उत्पंत्ति का वर्णन है। फिर गालव की उत्पत्ति और इक्ष्वाकु वंश का वर्णन है। तब पितृकल्प की व्याख्या के बाद चन्द्रमा और बुध की उत्पत्ति का वर्णन है। फिर अमावसु के वंश का वर्णन तथा इन्द्र के स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पुनः स्वर्ग को प्राप्त कर लेने की कथा है। तब क्षत्रवृद्ध की संततियों को कहा गया है और राजा

दिवोदास व त्रिशंकु की कथा कही गई है। हे राजन् ! इसके बाद ययाति के चरित्र को उसके वंशजों सहित कहकर पुरुवंश का वृत्तांत कहा है। श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य एवं श्यमंतक मणि की कथा और संक्षेप में विष्णु के प्रभुत्व अवतारों का वर्णन किया गया है। फिर तारकामय संग्राम, ब्रह्मलोक पश्चात् की योगनिद्रा और विष्णु एवं ब्रह्मा के विषय में वर्णन किया गया है। फिर पृथ्वी और देवताओं के अवतारों के साथ नारद के वाक्य तथा स्वप्नगर्भ विधि का वर्णन है। फिर आर्यास्त्व तथा कृष्णावतारों को कहा है।'

'हे राजन् ! कृष्ण का गोव्रज में जाना, शकटासुर का वध, पूतनावध, यमलार्जुन उद्धार, बकासुर वध आदि का वर्णन है। फिर कृष्ण के वृन्दावन जाकर कालिय नाग के मंथन, धेनुकासुर का वध, प्रलम्बासुर वध, तथा गोवर्धन पर्वत धारण कर इन्द्र का अभिमान भंग करने की कथाएँ हैं। तब गोपियों के साथ कृष्ण की रासलीला और अरिष्ट असुर के वध की कथाएँ हैं। अक्रूर द्वारा वृन्दावन जाना, कृष्ण का अपने वास्तविक रूप में अक्रूर को दर्शन देना। केशीवध, अंधक के वाक्य, तथा धनुष तोड़ने की कथाएँ हैं। फिर कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर तथा मुष्टिक आदि के वध के बाद कंस

वध को कहा गया है। उग्रसेन का राज्याभिषेक, राम बलराम का गुरुकुल जाना तथा पंचजन नामक असुर के वध के बाद यमराज से गुरु पुत्र वापस लाने की कथाएँ हैं। तब जरासंध द्वारा मथुरा को घेरे जाने और फिर उसके वापस लौट जाने की कथाऐं हैं। परशुराम दर्शन, विकद्रू से वार्ता, गोमन्त पर्वत पर चढ़ना तथा जरासंध की अन्य कार्यवाहियों का वर्णन है।'

'गोमन्त पर्वत दाह, करवीर पुर में श्रृंगाल का वध, बलराम द्वारा यमुना का आकर्षण, मथुरा को त्यागकर द्वारिका जाना और कालयवन के वध का वर्णन इसके बाद किया गया है। फिर द्वारिका पुरी के निर्माण तथा रुक्मणी हरण व रूक्मी को पराजित करने की कथाएँ हैं। इसके बाद महापराक्रमी बलराम जी के चरित्रों का वर्णन है। फिर नरकासुर वध और पारिजात हरण और इन्द्र से कृष्ण के युद्ध की कथा है। कृष्ण द्वारा शिव की स्तुति तथा वृष्णिवंश का वर्णन उनके बाद किया गया है। षट्पुर का वर्णन, निकुम्भवध आदि का वर्णन होने के बाद भानु की पुत्री भानुमती का अपहरण तथा शम्बरासुर के वध के साथ वासुदेव महात्म्य का वर्णन है। इसमें प्रद्युम्न तथा मायावती का विवाह और रुक्मी के वध के वर्णन के साथ बाणासुर की पुत्री ऊषा और

अनिरुद्ध से विवाह के साथ-साथ बाणासुर के वध का भी वर्णन है। फिर जनमेजय तुम्हारी संतती और कलियुग का वर्णन करके भविष्य वर्णन कहा गया है। तब भगवान् विष्णु के प्रमुख अवतारों का वर्णन करते हुए कृष्ण की कैलाश यात्रा तथा पुत्र प्राप्ति के लिए शिव के प्रति तप करने का वर्णन भी है। हे राजन् कृष्ण का कैलाश जाकर शिव के प्रति तप करने का यह जो प्रसंग है यह आस्था रहित, अश्रद्धालुओं तथा अधार्मिक प्रवृत्तों के लोगों को नहीं सुनाना चाहिए। हे राजन् ! फिर पौण्ड्रक के वध का तथा हंस और डिम्भक के वध का वर्णन हुआ है। इसके बाद तुम्हारे कहने पर त्रिपुरदहन की कथा को कहा गया है।'

'हे राजन् ! इन प्रमुख आख्यानों के साथ लिपट कर चलने वाले अन्य प्रसंग तथा उपकथाएँ भी बीच-बीच में कही गई हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुराण कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा विष्णु लोक की प्राप्ति कराने वाला कहा गया है। अंत में तुमसे विष्णु के नाभिकमल के वृत्तान्त को तनिक विस्तार से कहता हूँ। जिससे तुम सृष्टि के उद्गम के विषय में किसी प्रकार की उलझन में न रहो। सुनो।'

विष्णु के नाभिकमल का वृत्तांत

'हे महाराज ! एकार्णव में शयन करते हुए नारायण आपव रूप में तप करने लगे तब तप के प्रभाव से उनके तेज व बल में अत्यधिक वृद्धि होने से नारायण को सृष्टि रचना का विचार हुआ और उन्होंने–क्रमश: आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी इन पाँच महाभूतों की उत्पत्ति की। फिर ब्रह्मा को उत्पन्न करके वेदों की रचना की। तब ब्रह्मा को सृष्टि के आगे निर्माण करने का कार्य सौंपकर स्वयं महार्णव में निश्‍िंचतता पूर्वक शयन करने लगे। कालांतर में श्री नारायण की नाभि से सूर्य के समान तेजस्वी एवं स्वयं के आलोक से प्रकाशित, एक हजार पंखुड़ियों (दलों) वाले एक दिव्य कमल की उत्पत्ति हुई। वह अत्यंत मनभावन सुगंध वाला, सुंदर, शोभायुक्त, पुष्ट, प्रौजल तथा स्वच्छ एवं निर्मल था।–तब उस कमल के शीर्ष पर आसन बनाकर श्रीहरि ने ब्रह्मा को वहाँ स्थापित किया। सम्पूर्ण पार्थिव गुणों से युक्त उस कमल का विस्तार अनेक योजन था।'

वैशम्पायन जी ने आगे कहा, 'उस कमल के केसरांकुर (कणिकाएँ)–हिमालय, सुमेरु, कैलाश, गन्धमादन, विन्ध्य, उदय तथा अस्त आदि पर्वतों के रूप में थे जो

सदा सिद्धों, महात्माओं, ऋषियों तथा मुनियों द्वारा सेवित रहते हैं। इन पर्वतों के मध्य का भाग ही कर्मस्थली और यज्ञभूमि जम्बूद्वीप कहा जाता है। इस कमल के केसर इसके भीतर के खनिज आदि ही हैं। क्योंकि यह कमल वास्तव में हमारी पृथ्वी ही का रूप है। कमल के नीचे के पत्र ही पाताल लोक है–जहाँ सर्पों और दैत्यों का निवास है। उससे भी नीचे 'उदक' नामक स्थान नरक समझना चाहिए। जहाँ महान पातकियों को दण्ड स्वरूप ले जाया जाता है। इस कमल का सबसे ऊपरी भाग स्वर्ग समझो। जहाँ संचित पुण्यकर्मों का फल भोगने के लिए देवता वास करते हैं। इस कमल के आस-पास चारों ओर जो जलराशि व्याप्त है–उसे इस पृथ्वी को घेरने वाले समुद्र समझना चाहिए। इस प्रकार श्री विष्णु के नाभिकमल का स्वरूप तथा रहस्य मैंने तुमको समझा दिया है।'

हरिवंश पुराण सुनने का फल

राजा जनमेजय ने यह सुनकर वैशम्पायन जी को धन्यवाद दिया और कहा, 'हे महामुने ! कृपया इस हरिवंश पुराण को सुनने पर दी जाने वाली दक्षिणा आदि तथा इसके श्रवण प्रभाव के फलों को भी मुझसे

विस्तार पूर्वक कहिए। श्रीकृष्ण के विभिन्न चरित्रों का विस्तृत वर्णन करने वाले इस तेजस्वी पुराण को पढ़ने अथवा सुनने अथवा लिखने से भी मनुष्य को जो-जो शुभफल प्राप्त होते हैं–कृपा करके मुझसे यह सब भी विस्तार पूर्वक कहिए।'

तब वैशम्पायन जी ने स्नेह पूर्वक इस प्रकार कहा–'हे राजन्! हरिवंश पुराण के सुनने, पढ़ने अथवा लिखने से मन द्वारा सोचे गए, मुख द्वारा बोले गए और शरीर/कर्मों द्वारा किए गए सम्पूर्ण पाप ठीक उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से हिम पिघल जाता है। अठारह पुराणों को सुनने से जो फल प्राप्त होता है, वह अकेले इस महापुराण को सुनने से ही प्राप्त हो जाता है। हरिवंश पुराण का जो श्रद्धा सहित एक श्लोक का भी पाठ करता है, उसे विष्णु की कृपा प्राप्त होने लगती है। फिर पूरे पुराण का पाठ करने पर तो कुछ भी प्राप्त होना असंभव नहीं रह जाता। कलियुग में जम्बू द्वीप में इस चमत्कारिक प्रभाव के बाद भी इस पुराण को सुनने या पढ़ने वाले अति दुर्लभ होंगे, क्योंकि कलियुग का प्रभाव ही ऐसा है कि मानव श्रेष्ठ व कल्याणकारी कार्यों को छोड़कर निन्दित, भ्रष्ट और पतित कार्यों में रुचि लेंगे। हे राजन् ! सद्ग्रन्थों का

अध्ययन करने की बजाए अश्लील, हिंसक और उत्तेजक साहित्य को ही लोग पसंद करेंगे।'

'पुत्र की इच्छा रखने वाले दम्पत्तियों को, विशेष रूप से स्त्रियों को इस पुराण को अवश्य ही विधिपूर्वक सुनना चाहिए। श्रद्धा पूर्वक इस पुराण का संतान गोपाल स्तोत्र के साथ विधिपूर्वक पढ़ना तथा अनुष्ठान करना बाँझ स्त्री को भी श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करने में सक्षम है। अध्यात्मिक लाभ, परलोक को सुधारने, मोक्ष पाने तथा अन्य समस्त प्रकार की मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए भी इस पुराण का विधिवत् पाठ करना चाहिए। तथा पुराण श्रवण करने के पश्चात् वाचक को स्वर्ण जड़ित सींगों वाली कपिला गाय नवीन वस्त्र उढ़ाकर बछड़े सहित दान करनी चाहिए। हाथों और कानों का स्वर्णाभूषण (अँगूठी, कुण्डल आदि) विशेष रूप से वक्ता को देना चाहिए अथवा भूमि का दान करना चाहिए। क्योंकि भूमिदान से श्रेष्ठ कोई दान नहीं होता (यदि ऐसा करने की सामर्थ्य नहीं तो योग्यता के अनुसार अधिक से अधिक दान देना चाहिए)।'

'हे राजन् ! हरिवंश पुराण पूरा सुनने या पढ़ने से मनुष्य के समस्त पाप नष्ट होते हैं और उसकी ग्यारह पीढ़ियों के पूर्वजों का उद्धार होता है। पुराण सुनने के

बाद श्रोता को मंत्र जाप करना चाहिए। (विष्णु के द्वादशाक्षरी मंत्र–'ॐ नमोः भगवते वासुदेवाय' का) जाप के दशमांश का हवन, हवन के दशमांश का तर्पण और तर्पण के दशमांश का दान करना चाहिए। इस प्रकार जो कुछ भी तुमने मुझसे पूछा था वह सब मैंने तुमसे कहा। हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। स्मरण मात्र से ही पवित्र कर देने वाले इस महापुराण को तुम्हारे माध्यम से अन्य प्रजा भी पढ़कर लाभांवित हो सकेगी। इस महान कार्य के लिए हे नृपोत्तम जनमेजय तुम सदा आदर सहित स्मरण किये जाओगे।'

॥श्री कृष्णार्पणमस्तु॥

हरिवंश पुराण समाप्त

स्तुति व स्तोत्र खण्ड

पुराण में कहे गए प्रमुख स्तोत्र (अर्थ सहित) :

पाठकों के कल्याणार्थ पुराण में आए प्रमुख, महत्वपूर्ण तथा शुभ फलदाई स्तोत्रों को हम यहाँ दे रहे हैं। पाठक इनका आवश्यकता, रुचि तथा इच्छानुसार पाठ करके अवश्य ही लाभांवित होंगे।- ऐसा हमारा विश्वास है।

शिव स्तोत्र (पुत्रदायक)

१. कृष्ण द्वारा शंकर की स्तुति :

नमस्ते शितिकण्ठाय नीलग्रीवाय वेध से ।
नमस्ते शोचिषे अस्तु नमस्ते उपवासिने ॥(१)
नमस्ते मीढुषे अस्तु नमस्ते गदिने हरे ।
नमस्ते विश्वतनवे वृषाय बृबरूपिणे ॥(२)
अमूर्ताय च देवाय नमस्तेऽस्तु पिनाकिने ।
नमः कुणजाय कूपाय शिवाय शिवरूपिणे ॥(३)
नमस्तुष्टाय तुण्डाय नमस्तुटितुटाय च ।
नमः शिवाय शान्ताय गिरिशाय च ते नमः ॥(४)
नमो हराय हिप्राय नमो हरि हराय च ।
नमोऽघोराय घोराय घोराघोरर्प्रियाय च ॥ (५)

नमोऽघंटाय घण्टाय नमो घटिघटाय च ।
नमः शिवाय शन्ताय गिरिशाय च ते नमः ॥ (६)
नमो विरूप रूपाय पुराय पुरहारिणे ।
नम अद्याय बीजाय शुचयेऽष्टस्वरूपिणे ॥ (७)
नमः पिनाकहस्ताय नमः शूलासिधारिणे ।
नमः खट्वाङ्गहस्ताय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ (८)
नमस्ते देवदेवाय नम आकाशमूर्तये ।
हराय हरिरूपाय नमस्ते तिग्मतेजसे ॥ (९)
भक्तप्रियाय भक्ताय भक्तानां वरदायिने ।
नमोऽभ्रमूर्तये देव जगन्मूर्तिधराय च ॥ (१०)
नमश्चन्द्राय देवाय सूर्याय च नमो नमः ।
नमः प्रधानदेवाय भूतानां पतये नमः ॥ (११)
करालाय च मुण्डाय विकृताय कपर्दिने ।
अजाय च नमस्तुभ्यं भूतभावनभावन ॥ (१२)
नमोऽस्तु हरिकेशाय पिंगलाय नमो नमः ।
नमस्तेऽभी षुहस्ताय भीरूभीरूहराय च ॥ (१३)
हराय भीति रूपाय घोराणां भी तिदायिने ।
नमो दक्षमखध्नाय भगनेत्रापहारिणे ॥ (१४)
उमापते नमस्तुभ्यं कैलाशनिलयाय च ।
आदिदेवाय देवाय भवाय भवरूपिणे ॥ (१५)

नमः कपाल हस्ताय नमोऽजमथनाय च ।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्र्यक्षाय च शिवाय च ॥(१६)
वरदाय वरेण्याय नमस्ते चन्द्रशेखर ।
नम इध्माय हविषे ध्रुवाय च कृशाय च ॥(१७)
नमस्ते शक्ति युक्ताय नागपाशप्रियाय च ।
विरूपाय सुरूपाय भद्रपानप्रियाय च ॥(१८)
श्मशानरतये नित्यं जयशब्दप्रियाय च ।
खरप्रियाय खर्वाय खराय खररूपिणे ॥(१९)
भद्रप्रियाय भद्राय भद्ररूपधराय च ।
विरूपाय सुरूपाय महाघोराय ते नमः ॥(२०)
घण्टाय घण्टभूषाय घण्टभूषण भूषिणे ।
तीव्राय तीव्ररूपाय तीव्ररूपप्रियाय च ॥(२१)
नग्नाय नग्नरूपाय नग्नरूप प्रियाय च ।
भूतावास नमस्तुभ्यं सर्वावास नमोनमः ॥(२२)
नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक ।
नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः ॥(२३)
का नु वाक्स्तुतिरूपा ते कोनु स्तोतुं प्रशक्नुयात् ।
कस्य वा स्फुरते जिह्वा स्तुतौ स्तुतिमतां वर ॥(२४)
क्षमस्व भगवन देव भक्तोऽहं त्राहि मां हर ।
सर्वात्मन् सर्वभूतेश त्राहि मां सततं हर ॥(२५)

रक्ष देव जगन्नाथ लोकान् सर्वात्मना हर ।
त्राहि भक्तान् सदा देव भक्तप्रिय सदा हर ॥ (२६)

प्रसंग व फल—घण्टाकर्ण को मोक्ष देने के बाद पुत्र प्राप्ति का वरदान लेने के लिए श्रीकृष्ण ने शिवजी की इस स्तोत्र से आराधना की थी। तब शिव ने उनको कामदेव को पुत्र रूप में पाने का वर दिया था।

अतः यह पुत्र लाभ कराने वाला स्तोत्र है। इसका अर्थ इस प्रकार है।

'जिनके कण्ठ में हलाहल विष है अतः जो नीलकण्ठ कहे जाते हैं। जगत् के सृष्टा, दीप्तिमान तथा उपवास व्रत में तत्पर रहने वाले उन महादेव जी को नमस्कार है। हर ! आप सेचन समर्थ हैं आपको प्रणाम है। आप गदाधर हैं आपको प्रणाम है। पूरा विश्व ही आपका शरीर है, आपको नमस्कार है। आप वृषभ रूप धारण करने वाले धर्म हैं, आपंको नमस्कार है। आप अमूर्त रूप, पिनाक धनुष को धारण करने वाले हैं, आपको प्रणाम है। आप कुण्ज, कूपवासी, करुणास्वरूप शिव हैं, आपको प्रणाम है। आप संतुष्ट रहने वाले सुख स्वरूप, दुष्टों की हिंसा करने वाले हैं, आपको नमस्कार है। आप पर्वत पर शयन करने वाले शांत स्वरूप शिव हैं, आपका अभिनन्दन है। आप—हर, हिप्र तथा हरिह

स्वरूप हैं आपको प्रणाम है, प्रणाम है। आप अघोर, तथा घोर हैं। घोराघोर प्रिय हैं, आपको प्रणाम है। आप घण्टारहित, घण्टायुक्त तथा घटिघट (घटने वाले को भी घटने वाले यदि सृष्टा के भी सृष्टा) हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप पर्वत पर शयन करने वाले शांतस्वरूप शिव हैं, आपको नमस्कार है। नमस्कार है। आप विष्णु रूप धारण करने वाले, क्षेत्र स्वरूप व त्रिपुरों के नाथक हैं। आपको प्रणाम है। आप सबके आदि बीज, परमपवित्र, अष्टमूर्तिधारी हैं, आपको नमस्कार है। हे पिनाक पाणि, शूल व खंग धारी आपको नमस्कार है। आप खड्वांग धारी हैं, आपको नमस्कार है। हे गजासुर के चर्म को वस्त्र रूप से ओढ़ने वाले आप को प्रणाम है। हे देवाधिदेव, आकाश स्वरूप, हरिरूपधारी भगवान् हर आपको नमस्कार है। प्रचण्ड तेज वाले सूर्य के समान आपको प्रणाम है। आप भक्तों के प्रिय, श्री हरि के भक्त, भक्तों को वर देने वाले देव हैं। मेघ स्वरूप, विश्वरूप धारी हैं। आपको नमस्कार है।'

'आप ही सूर्य और चन्द्र हैं, आपको प्रणाम है। आप प्रधानदेवता तथा सम्पूर्ण भूतों के ईश्वर हैं आपको बारम्बार नमस्कार है। हे विकराल रूपधारी, सिर मुँड़ाये

संन्यासी, विकृतरूप तथा जटाजूट धारी, भूतभावन, हे अजन्मा ! आप को नमस्कार है। सूर्य की किरणें ही आपके केश हैं। आपको प्रणाम है। आपके अंगों की कांति पिंगल वर्णीय है। आपको बारम्बार नमस्कार है। आप ही मुझं श्रीकृष्ण के रूप में अर्जुन के सारथी बनकर हाथ में चाबुक लिए रहते हैं। आप भीरू से भीरू तथा हर (महासंहारकर्त्ता) हैं आपको प्रणाम है। आप भीति स्वरूप हर व भयंकर दैत्यों को भी भयभीत कर देने वाले हैं। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने वाले तथा भग देवता के नेत्र का हरण करने वाले हैं, आपको प्रणाम है। हे उमापते ! हे कैलाशवासी ! हे आदिदेव ! हे देवमय ! हे जगत्स्वरूप और हे भव नाम से प्रसिद्ध आपको मेरा प्रणाम है। हे हाथों में कपाल धारण करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। आपने ब्रह्मा के सिर को मथ डाला—आपको मेरा नमस्कार है। तीन नेत्र होने से आप त्रयम्बक तथा त्र्यक्ष कहे जाते हैं। आप भगवान् शिव को मेरा अभिवादन है। हे चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करने वाले ! हे वरदायक एवं वरण किए जाने योग्य देवता आपको प्रणाम है। आप ही समिधा, हविष्य, ध्रुव, तथा कृशरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप शक्ति से संयुक्त, नागरपाश को पसंद करने वाले,

विरूप और सुंदर दोनों रूपों को धारण करने वाले तथा मंगलकारी रसों (भाँग आदि) के पान प्रेमी हैं, आपको नमस्कार है।'

'हे श्मशान में ही रमने वाले ! जय जयकार शब्द को सुनना पसंद करने वाले, खर नामक दैत्य आपको प्रिय था। आपका स्वरूप नाटा (खर्व) है। आप तीव्र तथा कर्कश स्वभाव वाले (खर) हैं। खर (राक्षस–गधा) आप ही का रूप है। आपको प्रणाम है। माँगलिक वस्तुएं आपको प्रिय हैं। आप स्वयं भी मंगलमय हैं। तथा मंगलमय वाले हैं। विरूप, सुंदर रूप वाले तथा महाभयंकर हैं। आपको नमस्कार है। आप घन्टा रूप हैं। घन्टों से विभूषित हैं। घन्टायुक्त भूषणों को धारण करते हैं। आप तीव्र हैं। तीव्र रूपधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप नग्न हैं, नग्नरूपधारी हैं तथा नग्न रूप वाले आपको विशेष प्रिय हैं। आप समग्र भूतों के आवास स्थान हैं आपको प्रणाम है। हे सबके आश्रय भूत महेश्वर आपको प्रणाम है। आपको प्रणाम है। आप सर्वात्मा को प्रणाम है। ऐश्वर्य प्रदान करने वाले रुद्रदेव ! आपको प्रणाम है। हे वामदेव ! आपको प्रणाम है। हे महादेव ! आपको प्रणाम है। भला कौन सी वाणी आपकी स्तुति के अनुरूप होगी। (आपकी महिमा

बखान से परे है) ? कौन आपकी स्तुति कर सकता है ? स्तुति किए जाने वालों में श्रेष्ठ महेश्वर ! किसकी जिह्वा आपकी स्तुति कर सकने में समर्थ है ? हे महादेव ! प्रभो ! मेरा अपराध क्षमा कीजिए। हे हर ! मैं आपका भक्त हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिए। हे सर्वात्मा ! हे सर्वभूतेश्वर ! हे हर ! आप निरंतर मेरा संरक्षण कीजिए। हे जगन्नाथ ! हे देव ! हे हर ! आप सब लोकों की सब प्रकार से सुरक्षा करें। सदा अपने भक्तों से प्रेम करने वाले हर ! भक्तजनों की सदा रक्षा कीजिए।'

श्रीकृष्ण द्वारा यह स्तुति शिव के लिए की गई थी। फिर शिव द्वारा कृष्ण की स्तुति भी की गई और इन दोनों ही स्तुतियों से पूर्व ऋषियों आदि के द्वारा कृष्ण और शिव की एक साथ स्तुति भी की गई थी। हम कृष्ण द्वारा की गई शिव की स्तुति के साथ उन दोनों स्तुतियों को भी पाठकों के लाभार्थ आगे दे रहे हैं। पाठक इनसे लाभ ग्रहण करें।'

२. विष्णु स्तोत्र (पुत्रदायक)

शंकर द्वारा विष्णु की स्तुति :

यत्तत् कारणमाहुस्तत् सांख्याः प्रकृति संज्ञकम् ।
ततो महान् समुत्पन्नः प्रकृतिर्यस्य कारणम् ॥ (१)

त्रिधा भूतं जगद्योनिं प्रधानं कारणात्मकम् ।
सत्त्वं रजस्तमो विष्णों जगदण्डं जनार्दन ॥(२)
तस्य कारणमाहुस्त्वां सांख्यप्रकृतिसंज्ञकम् ।
तद्रूपेण भवान् विष्णो परिणम्याधितिष्ठति ॥(३)
तस्मात्तु महतो घोरादंडकारो महानभूत् ।
स त्वमादौ जगन्नाथ परिणामस्तथा हिसः ॥(४)
अहंकारात् प्रभो देव कारणानि महान्ति च ।
तन्मात्राणि तथा पञ्च भूतानि प्रभवन्त्युत ॥(५)
तानि त्वामाहुरीशानं भूतानीह जगत्पते ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पंचमम् ॥(६)
चक्षुर्घ्राणिं तथा स्पर्शो रसनं श्रोत्रमेव च ।
मनः षष्ठं तथा देव प्रेरकं तत्र तत्र ह ॥(७)
कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि वागादीनि जनार्दन ।
त्वमेव तानि सर्वाणि करोषि नियतात्मवान् ॥(८)
स्वेषु स्वेषु जगन्नाथ विषयेषु तथा हरे ।
निवेशयसि देवेश योग्यामिन्द्रियपद्धतिम् ॥(९)
यदा त्वं रजसा युक्त स्तदा भूतानि सृष्टवान् ।
यदा च सत्त्वयुक्तोऽसि तदा पाता जगत्त्रयम् ॥(१०)
यदा त्वं तमसाऽऽकृष्टस्तदा संहरसे जगत् ।
त्रिभिरेव गुणैर्युक्तः सृष्टिरक्षाविनाशने ॥(११)

वर्तसे त्रिविधां भूति मादाय नियतात्मवान् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नियोजयसि माधव ॥(१२)
प्राणिनामुदर्भागार्थमन्तः स्थित्वा जगद्गुरो ।
तस्मात् सर्वत्र भूतेषु वर्तते सर्वभोगवान् ॥(१३)
ब्रह्मा त्वं सृष्टिकाले तु स्थितौ विष्णुरसि प्रभो ।
संहारे रुद्रनामासि त्रिधामा त्वमसि प्रभो ॥(१४)
भूमि रापोऽनलो वायुः रवं मनो बुद्धिरेव च ।
एताः प्रकृतयो देवभिन्नाः सर्वत्र ते हरे ॥(१५)
सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
सहस्त्रधारः साहस्त्री सहस्त्रात्मा दिवस्वतिः ॥(१६)
भूमिं सर्वामिमां प्राप्य सप्तद्वीपां ससागराम् ।
अणुः सर्वत्रगो भूत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गु लम् ॥(१७)
त्वमेवेदं जगत् सर्वं यद् भूतं यद् भविष्यति ।
त्वत्तो विराट् प्रादुर भूत् सम्राट चैव जनार्दन ॥(१८)
तव वक्त्राज्जगन्नाथ ब्राह्मणो लोकरक्षकः ।
प्रादुरासीत् पुराणात्मन् षट्कर्मनिरतः सदा ॥(१९)
राजन्यस्तु तथा बाह्लोरासीत् संरक्षणे रतः ।
ऊर्वोर्वैश्यस्तथा विष्णो पादच्छूद्र उदाहृतः ॥(२०)
एवं वर्णा जगन्नाथ तव देहाज्जनार्दन ।
मनसस्तव देवेश चन्द्रमाः समपद्यत् ॥(२१)

सुखकृत सर्वभूतानां शीतांशुरमितप्रभः ।
अक्ष्णोः सूर्यः समतुत्पन्नः सर्वप्राणिविलोचनः ॥(२२)
यस्य भासा जगत् सर्वे भासते भानुमानसौ ।
मुखादिन्द्रश्च अग्नि श्च प्राणाद् वायुरजायत ॥(२३)
नाभेरभूदन्तरिक्षं तवदेव जनार्दन ।
द्यौरासीत् तु महाघोरा शिरसस्तव गोपते ॥(२४)
पद्भ्यायं भूमिः समुत्पन्ना दिशः श्रोत्राज्जगत्पते ।
एवं सृष्टा जगत् सर्वे व्याप्य सर्वे व्यवस्थितः ॥ (२५)
व्याप्य सर्वानिमाँल्लोकान् स्थितः सर्वत्र केशव ।
ततश्च विष्णु नामासि धातोर्व्याप्तेश्च दर्शनात् ॥ (२६)
नारा आपः समाख्यातास्तासाभयनमादितः ।
यतस्त्वं भूतभव्येश तन्नारायण शब्दितः ॥(२७)
हरसि प्राणिनो देवततो हरिरिति स्मृतः ।
शंकरोऽसि सदा देव ततः शंकरतां गतः ॥(२८)
बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च तस्माद् ब्रह्मेति शब्दितः ।
मधुरिन्द्रियनामेति ततो मधुनिषूदनः ॥(२९)
हृषीकाणीन्द्रि याण्याहुस्तेषामीशो यतो भवान् ।
हृषीकेशस्ततो विष्णो ख्यातो देवेषु केशव ॥(३०)
क इति ब्रह्मणो नाम ईशोऽहं सर्वदेहिनाम् ।
आवां तवाङ्गसम्भूतौ तस्मात् केशवनामवान् ॥(३१)

मा विद्या च हरे प्रोक्ता तस्या ईशोयतो भवान् ।
तस्मान्माधवनामासि धवः स्वामीति शब्दितः ॥(३२)
गौरेषा तु यतो वाणी तां च वेद यतो भवान् ।
गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभिः कथ्यते भवान् ॥(३३)
त्रिरिव्येव त्रयो वेदाः कीर्तिता मुनिसत्तमैः ।
क्रमते तांस्तथा सर्वोस्त्रिविक्रम इति श्रुतः ॥(३४)
अणुर्वामननामासि यतस्त्वं वामनारणयया ।
मननान्मुनिरेवासि यमनाद् यतिरूच्यसे ॥(३५)
तपश्चरसि यस्मात् त्वं तपस्वीति च शब्दितः ।
वसन्ति त्वयि भूतानि भूतावासस्ततो हरे ॥(३६)
ईशस्त्वं सर्व भूतानामीश्वरोऽसि ततो हरे ।
प्रणवः सर्ववेदानां गायत्री धन्दसां प्रभो ॥(३७)
अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः ।
रुद्राणामहमेवासि वसूनां पावको भवान् ॥(३८)
अश्वत्थो वृक्षजातीनां ब्रह्मा लोकगुरुर्भवान् ।
मेरुस्त्वं पर्वतेन्द्राणां देवर्षीणां च नारदः ॥(३९)
दानवानां भवान् दैत्यः प्रह्लादो भक्तवत्सलः ।
सर्पाणामेव सर्वेषां भवान् वासुकि संज्ञितः ॥(४०)
गुह्यकानां च सर्वेषां भवान्धनद एव च ।
वरुणो यादसां राजा गंगा त्रिपथभाग् भवान् ॥(४१)

आदिस्त्वं सर्वभूतानां मध्यमन्तस्तथा भवान् ।
त्वत्तः समभवद् विश्वं त्वयि सर्वं प्रलीयते ॥(४२)
अहं त्वं सर्वगो देव त्वमेवाहं जनार्दन ।
आवयोरन्तरं नास्ति शब्दैरर्थैर्जगत्पते ॥(४३)
नामानि तव गोविन्द यानि लोके महान्ति च ।
तान्येव मम नामानि नात्र कार्या विचारणा ॥(४४)
त्वदुपासा जगन्नाथ सैवास्ति ममगोपते ।
यश्च त्वां द्वेष्टि देवेश स मां द्वेष्टि न संशयः ॥(४५)
त्वद्विस्तारो यतो देव अहं भूतपतिस्ततः ।
न तदस्तिविना देव यत् ते विरहितं हरे ॥(४६)
यदासीद् वर्ततेयच्च यच्च भावि जगत्पते ।
सर्वं त्वमेव देवेश विना किंचित्त्वया न हि ॥(४७)
स्तुवन्ति देवाः सततं भवन्तं स्वैर्गुणैः प्रभो ।
ऋक्च त्वं यजुरेवासि सामासि सततं प्रभो ॥(४८)
किमुच्यते मया देव सर्वं त्वं भूतभावन ।
नमः सर्वात्मना देव विष्णो माधव केशव ॥(४९)
नमस्करोमि सर्वात्मन् नमस्तेऽस्तु सदाहरे ।
नमः पुष्करनाभाय वन्दे त्वामहमीश्वर ॥(५०)

अर्थ—सांख्य शास्त्र के ज्ञाता जिस प्रकृति कहे जाने जाने वाले कारण तत्त्व को कहते हैं, उससे मह तत्व उत्पन्न हुआ, जिसका उपादान कारण प्रकृति है। सर्वत्र

व्याप्त रहने वाले जनार्दन ! कारण स्वरूप जो प्रधान-प्रकृति है वही इस जगत् की योनि है। जो तीन भेद वाली है। (सत, रज, तम)। इसी त्रिगुणमयी प्रकृति से ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है। इसका कारण भूत जो प्रकृति है—वह आपका ही स्वरूप है। हे विष्णो ! उसके रूप में आप ही परिणाम को प्राप्त होकर उसके अधिष्ठाता बने रहते हैं। उस घोर मह तत्व से समष्टिभूत अहंकार उत्पन्न हुआ। हे जगन्नाथ ! आदिकाल में प्रकट होने वाला वह अहंकार तत्व भी आप ही हैं। अहंकार तन्मात्र से हे प्रभो महान कारण उत्पन्न हुए जिनसे पंच महाभूत प्रकट हुए। वे भी आप ही का स्वरूप है। वे पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि कहे जाते हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ (चक्षु, नासिका, त्वचा, रसना व कान) और छठी ज्ञानेन्द्रीय मन जो इन्हें विषयों की ओर प्रेरित करता है। और पाँचों कर्मोन्द्रियाँ आप ही द्वारा व्यवाह में आती व संयमित होती हैं। आप ही इनके मार्ग की स्थापना करते हैं। रजोगुण से युक्त होकर सृष्टि, सत्त्वगुण से युक्त होकर पालन और तमोगुण से आकृष्ट होकर जगत् का संहार भी आप ही करते हैं। इस प्रकार आप तीनों गुणों से युक्त अपनी त्रिविध शक्ति को साथ रखते हुए, सृष्टि, रक्षा व संहार कार्य में सदैव ही संलग्न रहते हैं।

(तथापि आप इन तीनों गुणों से परे हैं।)।'

'हे जगत्गुरु माधव ! आप ही अन्तःकरण में स्थित होकर इन्द्रियों को उपभोग के लिए उनके विषयों में लगाते हैं। अतः आप ही समस्त भूतों में सर्वभोग सम्पन्न हैं। सृष्टि काल में आप ब्रह्मा, रक्षा व पालन के समय विष्णु तथा विध्वंस के समय रुद्र नाम वाले होते हैं। इस प्रकार आप तीन धामों वाले हैं। हे हरि ! पाँचों महाभूत मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ आपकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ हैं। आप सहस्त्रों मस्तकों वाले विराट पुरुष हैं। आपके सहस्त्रों नेत्र, भुजाएँ तथा पैर हैं। आपकी सभी वस्तुएँ (अंग) सहस्त्रों में ही आप सहस्त्र रूपा हैं। आप ही स्वर्गाधीश इन्द्र हैं। सात द्वीप और सात समुन्द्र वाली इस पृथ्वी को व्याप्त करके आप सूक्ष्म व विभु होकर इस ब्रह्माण्ड से दस अंगुल ऊपर उठे हुए हैं। जो हैं, जो हुआ है, और जो होने वाला है—वो सब आप हैं। आपसे ही जनार्दन विराट और स्वराट-सम्राट की उत्पत्ति हुई हैं। हे पुराणों के आत्मा! हे जगत् के नाथ ! आपके मुख से यजन-याजन आदि छः कर्मों में सदा तत्पर रहने वाला लोक रक्षक ब्राह्मण प्रकट हुआ है। आपकी भुजाओं (और वक्ष से) से रक्षा कर्म में रत रहने वाले क्षत्रिय, जाँघों (और उदर से) से वैश्य तथा पैरों से शूद्र

की उत्पत्ति कही गई है। इस प्रकार हे विष्णो चारों वर्ण आप ही से प्रकट हुए हैं।'

'आपके मन से सुखकारी, शीतरश्मि व कांतिमान चंद्र तथा नेत्रों से समस्त प्राणियों के नेत्र स्वरूप सूर्य उत्पन्न हुए हैं। जो सारे जग को प्रकाशित करते हैं। आपके मुख से ही इन्द्र और अग्नि की उत्पत्ति तथा प्राण से वायुदेव का प्राकट्य हुआ है। हे देव ! हे जनार्दन आपकी नाभि से अन्तरिक्ष तथा मस्तक से महाघोर द्युलोक का आविर्भाव हुआ है। हे जगदीश! आपके पैरों से पृथ्वी, कानों से दिशायें उत्पन्न हुई हैं। अतः समस्त जगत् के सृष्टा, आप सर्वत्र व्याप्त होते हुए स्थित हैं। हे केशव ! आप विभु एवं व्यापक हैं। इसलिए 'विष्' धातु के व्यापितरूप अर्थ का दर्शन होने से आपको 'विष्णु' कहा जाता है। तीनों कालों के स्वामी ! जल को 'नार' कहते हैं। नार में आदिकाल से ही आप अयन (आश्रय लेना) करते हैं। अतः 'नारायण' कहलाते हैं। आप प्राणियों के पाप ताप का हरण करते हैं। हे देव अतः 'हरि' कहे जाते हैं। आप सदैव सबका 'शम्' (कल्याण) करने वाले होने से 'शंकर' भी कहे जाते हैं। (यानि मैं शंकर भी वास्तव में आप ही हूँ)।'

'बृहत् तथा वर्धन शील होने से 'ब्रह्मा' कहे जाते हैं।

(यानि ब्रह्मा भी आप ही हैं), इन्द्रियों को मधु कहते हैं। (मधु एक दैत्य का भी नाम था) उनका दमन करने वाले होने से 'मधुसूदन' कहे जाते हैं। हे केशव ! हे विष्णो ! इन्द्रियों को 'हृषीक' भी कहा जाता है। उनके स्वामी तथा प्रेरक होने से आपका एक नाम 'हृषीकेश' भी है। 'क- नाम ब्रह्मा का है और मैं (शिव) समस्त देहधारियों का 'ईश' हूँ। हम दोनों आप ही से उत्पन्न हुए हैं, अतः आपको 'केशव' भी कहा जाता है। हे हरे ! 'मा- विद्या को कहते हैं। आप उसके 'धव' (स्वामी) हैं। अतः आपको 'माधव' भी कहते हैं। (आपकी ही की शरणागत तथा कृपापात्री होकर पृथ्वी 'माधवी' कही गई थी)। हे देव ! गौ वाणी को कहते हैं (गौ-इन्द्रियों को भी कहते हैं। गौ-गाय को भी कहते हैं) आप इनको जानने वाले होने से 'गोविन्द' (तथा इनका पालन करने वाले होने से 'गोपाल') भी कहे जाते हैं। तीनों वेदों (तीनों लोकों तथा तीनों ऐष्णाओं व तीनों गुणों के साथ तीनों शक्तियों) के लिए 'त्रि' कहा जाता है। आप इनको क्रान्त (व्याप्त) करके स्थित हैं। अतः आप 'त्रिविक्रम' भी कहे जाते हैं। (तीन पदों से तीनों लोकों को क्रान्त कर देने से वामनावतार को त्रिविक्रम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त तीनों कालों में भी

हरिण्यापते हैं। अतः त्रिविक्रम नाम ठीक ही है।' सूक्ष्म-लघु होने से 'वामन' मननकर्त्ता होने से 'मुनि' तथा यमों का पालन करने वाले होने से आप 'यति' भी कहे जाते हैं।'

'तपस्वी' नाम तप के कारण तथा समस्त भूतों में निवास करने के कारण 'भूतावास' नाम भी आप ही का है। सम्पूर्ण भूतों के ईश होने से 'ईश्वर' या 'भूतेश' भी आप कहे जाते हैं। हरे ! आप वेदों में 'प्रणव', छन्दों में 'गायत्री', अक्षरों में 'अंकार' तथा वर्णों में रहने वाले 'स्फोट' (अर्थशक्ति) आप ही हैं। वसुओं में आप 'पावक' तथा रुद्रों में आप शंकर हैं। वृक्षों में 'अश्वत्थ', गुरुओं में 'ब्रह्मा', पर्वतों में 'मेरु', देवर्षियों में 'नारद', दानवों में 'प्रह्लाद', सर्पों में 'वासुकि', यक्षों-गुह्यकों में 'कुबेर' भी आप ही हैं। आप जल ज़न्तुओं के राजा वरुण तथा नदियों में त्रिपथ गामिनी 'गंगा' हैं। समस्त भूतों के आदि, मध्य तथा अंत आप हैं। आपसे ही विश्व का प्रादुर्भाव हुआ है। आप ही में सम्पूर्ण जगत् लीन हो जाता है। जनार्दन ! मैं ही आप हूँ और आप ही मैं हो। हे जगदीश्वर शब्द और अर्थ से भी हम दोनों में कोई अंतर नहीं है। हे गोविन्द ! लोक में जिन नामों से आपको पुकारा जाता है, उन्हीं नामों से मुझे भी पुकारा जाता है। हे गोपते ! आपकी उपासना ही मेरी भी

उपासना है। आपका द्वेषी मेरा ही द्वेषी है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। आपका ही विस्तार मैं हूँ। अतः मैं भी 'भूतेश' कहा जाता हूँ। ऐसा कुछ इस सृष्टि में नहीं जो आपके बिना या आपसे रहित हो। भूत, वर्तमान, भविष्य सब आप हैं। आपसे रहित कुछ नहीं है। देवता आप ही के गुणों का बखान करते हैं, आप ही तीनों वेद हैं। भूतभावन ! अधिक क्या कहूँ ? आप ही सब कुछ हैं। आपको सब प्रकार से नमस्कार है।'

'हे सर्वात्मन् ! मैं आपका अभिवादन करता हूँ। हरे ! आपको सदा नमस्कार है। आप 'पद्मनाभ' हैं। आपको प्रणाम है। हे ईश्वर ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ।'

३. विष्णु स्तोत्र-२ (पापनाशक)

शंकर द्वारा विष्णु की दूसरी स्तुति :

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमते ।
यस्य भासा जगत् सर्वेभासते नित्यमच्युत ॥(१)
नमो भगवते देव नित्यं सूर्यात्मने नमः ।
यः शीतयति शीतांशुर्लोकान् सर्वानिमान् विभुः ॥(२)
नमस्ते विष्णवे देव नित्यं सोमात्मने नमः ।
यः प्रजाः प्रीणयत्ये को विश्वात्मा भूतभावनः ॥(३)

नमः सर्वात्मने देव नमो वागात्मने हरे ।
यो दधार करेणासौ कुशचीरादि यत् सदा ॥ (४)
दधार वेदान् सर्वांश्च तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ।
सर्वान् संहरते यस्तु संहारे विश्वदृक् सदा ॥ (५)
क्रोधात्मासि विरुपोऽसि तुभ्यं रुद्रात्मने नमः ।
सृष्टौ सृष्टा समस्तानां प्राणिनां प्राणदायिने ॥ (६)
अजाय विष्णवे तुभ्यं सृष्ट्रे वि श्वसृजे नमः ।
आदौ प्रकृतिमूलाय भूतानां प्रभवाय च ॥ (७)
नमस्ते देवदेवेश प्रधानाय नमो नमः ।
पृथिव्यां गन्धरूपेण संस्थितः प्राणिनां हरे ॥ (८)
दृढाय दृढरूपाय तुभ्यं गन्धात्मने नमः ।
अपां रसाय सर्वत्र प्राणिनां सुखहेतवे ॥ (९)
नमस्ते विश्वरूपाय रसाय च नमो नमः ।
तेजसा भास्करो यस्तु घृणिर्जन्तुहितः सदा ॥ (१०)
तस्मै देव जगन्नाथ नमो भास्कररूपिणे ।
वांयोः स्पर्शगुणो यत्र शीतोष्ण सुखदुःखदः ॥ (११)
नमस्ते वायुरूपाय नमः स्पर्शात्मने हरे ।
आकशेऽवस्थितः शब्दः सर्वश्रोत्रनिवेशनः ॥ (१२)
नमस्ते भगवन् विष्णो तुभ्यं सर्वात्मने नमः ।
यो दधार जगत् सर्वे मायामानुषदेहवान् ॥ (१३)

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ मायिनेऽमायदायिने ।
नम आद्याय बीजाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ (१४)
अचिन्त्याय सुचिन्त्याय तस्मै चिन्त्यात्मने नमः ।
हराय हरिरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मदायिने ॥ (१५)
नमो ब्रह्मविदे तुभ्यं ब्रह्मब्रह्मात्मने नमः ।
नमः सहस्त्रशिरसे सहस्त्रकिरणाय च ॥ (१६)
नमः सहस्त्रवक्त्राय सहस्त्रनयनाय च ।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्त्रे नमो नमः ॥ (१७)
विश्ववक्त्रे नमो नित्यं भूतावास नमो नमः ।
इन्द्रियायेन्द्ररूपाय विषयाय सदा हरे ॥ (१८)
नमोऽश्वशिरसे तुभ्यं वेदाभरणरूपिणे ।
अग्नयेऽग्निपते तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥ (१९)
सूर्याय सूर्य पुत्राय तेजसां पतये नमः ।
नमः सौमाय सौम्याय नमः शीतात्मने हरे ॥ (२०)
नमो वषट्कृते तुभ्यं स्वाहास्वधास्वरूपिणे ।
नमो यज्ञाय इज्याय हविषे हव्यसंस्कृते ॥ (२१)
नमः स्त्रुवाय पात्राय यज्ञाङ्गाय पराय च ।
नमः प्रणवदेहाय क्षरायाप्यक्षराय च ॥ (२२)
वेदाय वेदरूपाय शस्त्रिणे शस्त्ररूपिणे ।
गदिने खड्गिने तुभ्यं शङ्गिने चक्रिणे नमः ॥ (२३)

शूलिने चर्मिणे नित्यं वरदाय नमो नमः ।
बुद्धिप्रियाय बुद्धाय प्रबुद्धाय सुखाय च ॥(२४)
हरये विष्णवे तुभ्यं नमः सर्वात्मनेगुरो ।
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वकर्त्रे नमो नमः ॥(२५)
नमः स्वभावशुद्धाय नमस्ते यज्ञशूकर ।
नमो विष्णो नमो विष्णो नमो विष्णो नमो हरे ॥(२६)
नमस्ते वासुदेवाय वासुदेवाय धीमते ।
नमः कृष्णाय कृष्णाय सर्वावास नमो नमः ।
नमो भूयो नमस्तेऽस्तु पाहि लोकान् जनार्दन ॥(२७)

अर्थ– 'परमबुद्धिमान भगवान् वासुदेव को नमस्कार है। हे अच्युत् ! जिनके प्रकाश से सारा जगत् प्रकाशित होता है– उन सूर्य स्वरूप आप भगवान् को नित्य और बार-बार नमस्कार है। अपनी शीतकिरणों से सम्पूर्ण लोकों को शीतलता देने वाले जो चन्द्र प्रभु हैं–वो आप ही हैं हरि ! आपको नमस्कार है। नमस्कार है। जो एकमात्र विश्वात्मा भूतभावन भगवान् सब प्रजा को तृप्त करते हैं– वो आप ही हैं। हे वाणी स्वरूप आपको बारंबार नमस्कार है। अपने हाथ में चीर, कुश अदि जो सदा धारण करते और सम्पूर्ण वेदों को भी धारण करते हैं–उन ब्रह्मा स्वरूप आपको प्रणाम है। संहार काल में समस्त लोकों का संहार करने वाले जो विश्वद्रष्टा

हैं–वो आप ही हैं। आप को क्रोधरूप, विकराल रूप तथा रुद्र स्वरूप हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवेश ! आदि में मूल प्रकृति रूप आप प्रधान स्वरूप हैं। आप ही गुणों में क्षोभ होने से पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं। आपको प्रणाम है। प्राणियों के पापों को हरने वाले हरि। पृथ्वी में आप ही गंध रूप से स्थित हैं। आप दृढ़, रूपधारी तथा गंध स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है।'

'प्राणियों को सुख देने के लिए सदा जल में रस रूप से निवास करने वाले विश्वरूप धारी रसस्वरूप आप नारायण को नमस्कार है। अपने तेज और किरणों से जगत का हित और उसे आलोकित करने वाले सूर्यस्वरूप आप जगन्नाथ को नमस्कार है। वायु का स्पर्शगुण–शीत, ऊष्ण एवं सुख प्रदान करने वाला है। वह वायु और उसके गुण आप ही हैं, आपको प्रणाम है। आप ही आकाश हैं–जिसमें स्थित शब्द सबके कानों में प्रवेश करता है। अतः विष्णो आपका मैं अभिवादन करता हूँ। हे सर्वात्मा ! हे जगदीश्वर ! आपने माया रूप से मनुष्य शरीर धारण करके सम्पूर्ण जगत् को स्वयं ही धारण कर रखा है। आप मायाधर तथा मोक्ष देने वाले हैं। (स्वयं ही माया के स्वामी होने से माया रचते हैं और

स्वयं ही उस माया का निवारण कर मोक्ष देते हैं)–आपको प्रणाम है। सबके आदिकारण, निर्गुण, गुणस्वरूप, अचिन्त्य, सुचिन्त्य एवं चिन्त्यरूप हैं–उन आप परमात्मा को नमस्कार है। आप हरिरूपधारी हर हैं। ब्रह्मा को वेद प्रदान करने वाले, ब्रह्मवेत्ता व ब्रह्म और यज्ञरूप हैं–आपको प्रणाम है। आपको प्रणाम है। आप के हजारों सिर हैं। आप हजारों किरणों से प्रकाशित होते हैं, आपके नेत्र, मुख भी हजारों हैं। आप को प्रणाम है। आप विश्व, विश्वरूप और विश्वकर्ता हैं, आपको प्रणाम है। प्रणाम है। आप समस्त विश्व के उपदेशक हैं। आपको प्रणाम है, प्रणाम है। आप समस्त विश्व के उपदेशक हैं, सम्पूर्ण भूतों के आवासस्थान हैं। हे विष्णु ! आपको बार-बार प्रणाम है।'

'हे हरि ! इन्द्रियरूप, विषयरूप, इन्द्ररूप वेद के आभरण वाले हैं। आप हयग्रीव रूपधारी को नमस्कार करता हूँ। हे अग्नेश ! आप अग्निरूप हैं, गृहनक्षत्रों के स्वामी हैं, सूर्य, सूर्यपुत्र और तेजेश्वर हैं। आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। आप सोम, सौम्य तथा शीतात्मा हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। आप वषट्कार, स्वाहा-स्वधा-स्वरूप, यज्ञरूप, यज्ञों द्वारा पूजनीय तथा हविष्यरूप हैं। हव्यों द्वारा संस्कृत परमात्मा भी आप हैं। आप ध्रुव हैं,

यज्ञपात्र हैं, यज्ञों के अंगभूत उपकरण हैं और इन सबसे परे भी हैं–आपको प्रणाम है। प्रणव ही आप का शरीर है। आप क्षर (भूत स्वरूप) तथा अक्षर (कूटस्थ) हैं। आप वेद हैं, वेदरूप हैं, शस्त्रधारी और शस्त्ररूपधारी हैं। आप को नमस्कार है। आप गदा, खंग, शंख, चक्र, शूल और ढाल धारण करने वाले तथा सदा वर देने वाले हैं। आपका मैं बारम्बार अभिवादन करता हूँ।'

'हे गुरुदेव ! आप बुद्धिप्रिय, बोधसम्पन्न, प्रबुद्धस्वरूप व सुखरूप हैं। आप ही सर्वात्मा पापहारी विष्णु हैं। आपको प्रणाम है। हे सब लोकों के नाथ ! हे सबके कर्त्ता ! आपको बारम्बार प्रणाम है। हे यज्ञ वाराह ! आप स्वभाव से ही शुद्ध हैं, आपको नमस्कार है। विष्णो ! आपको नमस्कार है। विष्णो ! आपको नमस्कार है। विष्णो ! आप को नमस्कार है। हरे ! आपको नमस्कार है। हे अन्तर्घटवासी बुद्धिमान वसुदेवनन्दन आपको नमस्कार है। सबके आवासस्थान जनार्दन आप नाम से कृष्ण हैं, रंग से भी कृष्ण हैं। आपको बारम्बार प्रणाम है। आप को पुनः प्रणाम है। प्रणाम है। आप सब लोकों की रक्षा कीजिए।'

प्रसंग व फल –यह स्तोत्र भी पिछले स्तोत्र के प्रसंग से सम्बन्धित हैं। यह भगवान् विष्णु की प्रसन्नता

तथा कल्याण प्राप्त कराने वाला है। जैसा कि स्वयं भगवान् शंकर ने कहा है–

ये चेमं धारयिष्यन्ति स्तवं पापविमोचनम्।
तेषां प्रीतः प्रसन्नात्मा पठतां श्रृण्वतां हरिः॥
श्रेयो दास्यति धर्मात्मा नात्र कार्या विचारणा॥

(जो इस पाप नाशक स्तोत्र को हृदय में धारण करेंगे उन पर भगवान् विष्णु शीघ्र प्रसन्न होंगे। और इस स्तोत्र का पाठ करने वालों को तथा श्रवण करने वालों को विष्णु प्रसन्न होकर कल्याण प्रदान करेंगे। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। अर्थात् इसे अन्यथा समझने या इसके विषय में शंका करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है)।

अगले स्तोत्र का प्रसंग–इसी प्रसंग के अंतर्गत ऋषियों, सिद्धों आदि के द्वारा श्रीकृष्ण और शिवजी का एक ही स्थान पर एक साथ दर्शन करने के कारण दोनों ही की एक स्तोत्र से स्तुति की गई थी। प्रसंग वश हम उसे यहाँ पर दे रहे हैं। यद्यपि इस प्रसंग के शेष स्तोत्रों के सामने इसका प्रासंगिक महत्व अपेक्षा कृत कम है। क्योंकि पहले स्तोत्र क्रमशः कृष्ण और शिव द्वारा कहे गए हैं। जबकि यह ऋषियों के द्वारा।

४. हरिहर स्तोत्र (पूजन के लिए)

ऋषियों द्वारा विष्णु व शिव की स्तुति के लिए :

जय विष्णो हृषीकेश नारायण परायण ।
जय रुद्र पुराणात्मञ्जय देव हरेश्वर ॥ (१)
आदिदेव जगन्नाथ जय शंकर भावन ।
जय कौस्तुभदीप्ताङ्ग जय भस्मविराजित ॥ (२)
जय चक्रगदापाणे जय शूलिंस्त्रिलोचन ।
जय मौक्तिकदीप्ताङ्ग जय नागविभूषण ॥ (३)
जय देव जगन्नाथ जय रुद्र जनार्दन ॥

अर्थ– 'इन्द्रियों के प्रेरक, सर्वव्यापी नारायण। आपकी जय हो। सबको आश्रय देने वाले पुराणात्मन, रुद्रदेव ! हे हरि के ईश्वर आपकी जय हो। आदिदेव ! जगत्-पति ! शंकर ! हे सबके पालक व उत्पादकदेव आपकी जय हो। कौस्तुभमणि से उद्‌भासित अंगों वाले नारायण आपकी जय हो। भस्ममय अंगराग से विराजमान शिव आपकी जय हो। चक्र तथा गदा को हाथ में धारण करने वाले विष्णु की जय हो। त्रिशूल को धारण करने वाले, तीन नेत्रों वाले त्रिपुरारी की जय हो। मोतियों की माला से उद्‌भासित अंग वाले श्रीकृष्ण की जय हो। नागों के हार से विभूषित होने वाले महादेव की जय हो। जगदीश्वरों

रुद्र और जनार्दन की जय हो। जय हो।'

५. आर्यास्तोत्र (सर्वकामना सिद्धि)

विष्णु द्वारा आर्यादेवी की स्तुति के लिए :

नारायणीं नमस्यामि देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ॥(१)
त्वं हि सिद्धिर्धृतिः कीर्तिः श्रीर्विद्या संनतिर्मतिः ।
संध्या रात्रिः प्रभा निद्रा कालरात्रिस्तथैव च ॥(२)
आर्या कात्यायनी देवी कौशिकी ब्रह्मचारिणी ।
जननी सिद्धसेनस्य उग्रचारी महाबला ॥(३)
जया च विजया चैव पुष्टिस्तुष्टिः क्षमा दया ।
ज्येष्ठा यमस्य भगिनी नीलकौशेयवासिनी ॥(४)
बहुरूपा विरूपा च अनेक विधिचारिणी ।
विरुपाक्षी विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी ॥(५)
पर्वताग्रेषु घोरेबु नदीषु च गुहासु च ।
वासस्ते च महादेवि वनेषूपवनेषु च ॥(६)
शबरैर्बर्बरैश्चैव पुलिन्दैश्च सुपूजिता ।
मयूर पिच्छध्वजिनी लोकान् क्रमसि सर्वशः ॥(७)
कुक्कुटैश्छागलैर्मेषैः सिंहैर्व्याघ्रैः समाकुला ।
घण्टानिनादबहुला विन्ध्यवासिन्यभिश्रुता ॥(८)
त्रिशूलपट्टिशधरा सूर्यचन्द्रपताकिनी ।
नवमी कृष्ण पक्षस्य शुक्लस्यैकादशी तथा ॥(९)

भगिनी बलदेवस्य रजनी कलहप्रिया ।
आवासः सर्वभूतानां निष्ठा च परमा गतिः ॥(१०)
नन्दगोपसुता चैव देवानां विजयावहा ।
चीरवासाः सुवासाश्च रौद्री सन्ध्याचरी निशा ॥(११)
प्रकीर्णकेशी मृत्युश्च सुरामांसबलिप्रिया ।
लक्ष्मीरलक्ष्मीरूपेण दानवानां वधाय च ॥(१२)
सावित्री चापि देवानां माता भूतगणस्य च ।
कन्यानां ब्रह्मचर्ये त्वं सौभाग्यं प्रमदासु च ॥(१३)
अन्तर्वेदी च यज्ञानामृत्विजां चैव दक्षिणा ।
कर्षकाणां च सीतेति भूतानां धरणीति च ॥(१४)
सिद्धिः सांयात्रिकाणां तु वेला त्वं सागरस्य च ।
यक्षाणां प्रथमा यक्षी नागानां सुरसेति च ॥(१५)
ब्रह्मवादिन्यथो दीक्षा शोभा च परमा तथा ।
ज्योतिषां त्वं प्रभा देविनक्षत्राणां च रोहिणी ॥(१६)
राजद्वारेषु तीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च ।
पूर्णा च पूर्णिमा चन्द्रे कृत्तिवासा इति स्मृता ॥(१७)
सरस्वती च वाल्मीके स्मृतिर्द्वैपायने तथा ।
ऋषीणां धर्मबुद्धिस्तु देवानां मानसी तथा ॥(१८)
सुरा देवी तु भूतेषु स्तूयसे त्वं स्वकर्मभिः ।
इन्द्रस्य चारूदृष्टिस्त्वं सहस्त्रनयनेति च ॥(१९)

तापसानां च देवी त्वमरणी चाग्निहोत्रिणाम् ।
क्षुधा च सर्वभूतानां तृप्तिस्त्वं दैवतेषु च ॥ (२०)
स्वाहा तृप्तिर्धृतिर्मेधा वसूनां त्वं वसूमती ।
आशा त्वं मानुषाणां च पुष्टिश्च कृतकर्मणाम् ॥ (२१)
दिशश्च विदिशश्चैव तथा ह्यग्निशिखा प्रभा ।
शकुनी पूतना त्वं च रेवती सुदारुणा ॥ (२२)
निद्रापि सर्वभूतानां मोहिनी क्षत्रिया तथा ।
विधानां ब्रह्मविद्या त्वमोङ्कारोऽथ वषट् तथा ॥ (२३)
नारीणां पार्वतीं च त्वां पौराणीमृषयो विदुः ।
अरुन्धती च साध्वीनां प्रजापतिवचो यथा ॥ (२४)
पर्यायनामभिर्दिव्यैरिन्द्राणी चेति विश्रुता ।
त्वया व्याप्तमिदं सर्वे जगत् स्थावरनङ्गमम् ॥ (२५)
संग्रामेषु च सर्वेषु अग्निप्रज्वलितेषु च ।
नदीतीरेषु चौरेषु कान्तारेषु भयेषु च ॥ (२६)
प्रवासे राजबन्धे च शत्रूणां च प्रमर्दने ।
प्राणात्ययेषु सर्वेषु त्वं हि रक्षा न संशयः ॥ (२७)
त्वयिमे हृदयं देवि त्विय चित्तं मनस्त्वयि ।
रक्षमां सर्वपापेभ्यः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ (२८)

अर्थ–'मैं तीनों लोकों की अधीश्वरी नारायणी देवी को नमस्कार करता हूँ। हे देवि ! तुम ही सिद्धि, धृति, कीर्ति, श्रीविद्या, संनति, मति, संध्या, रात्रि,

प्रभा, निद्रा और कालरात्रि हो। तुम ही आर्या, कात्यायनी, देवी, कौशिकी, ब्रह्मचारिणी, कार्तिकेय। सिद्धसेन की माता, उग्रचारिणी तथा महानबल से सम्पन्न हो। तुम जया, विजया, पुष्टि, तुष्टि, क्षमा, दया, यम की ज्येष्ठ बहिन, तथा नील वर्णीय रेशमी साड़ी पहनने वाली हो। बहुत से रूप होने से तुम बहुरूपा हो। तुम विकराल रूप धरने से विरूपा और बहुत सी विधियों को आचरण में लाने वाली हो। तीन होने के कारण तुम्हारे नेत्र विरूप प्रतीत होते हैं, अतः तुम विरुपाक्षी हो। विशालाक्षी तथा भक्तों की रक्षा करने वाली हो। पर्वतों के घोर शिखरों पर, नदियों, गुफाओं, वनों तथा उपवनों में भी तुम्हारा निवास है। शबरों, बर्बरों और पुलिन्दों द्वारा भी तुम्हारी भली प्रकार पूजा की जाती है। मोर पंखीय ध्वजा से सुशोभित तुम सभी लोकों में विचरण करती हो। मुर्गे, बकरे, भेड़, सिंह तथा व्याघ्र आदि तुम्हें सदा घेरे रहते हैं। तुम्हारे पास घण्टा ध्वनि अधिक होती है। तुम 'विन्ध्यवासिनी' के नाम से प्रसिद्ध हो। देवी तुम त्रिशूल व पट्टिश धारण करने वाली तथा सूर्य व चन्द्र के चिन्हों से युक्त पताका धारण करने वाली हो। तुम प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की नवमी तथा शुक्लपक्ष की एकादशी हो। बलदेव जी की बहिन हो। रात्रि स्वरूपा हो, कलह

(युद्ध) प्रिय हो। सब भूतों का आवास स्थान, मृत्यु तथा परम गति हो।'

तुम नन्दपुत्री, देवताओं को जय दिलाने वाली, चीरवस्त्र धारिणी, सुवासिनी, रौद्री, संध्याकाल में विचरने वाली व रात्रि हो। बिखरे केशों वाली तुम प्राणियों की मृत्यु हो। मधु युक्त तथा माँस व मदिरा से युक्त बलि को पसंद करती हो। तुम्हीं लक्ष्मी हो, किन्तु दानवों के वध के लिए अलक्ष्मी बन जाती हो। सावित्री, अदिति व समस्त भूतों की जननी तुम्हीं हो। कन्याओं का ब्रह्मचर्य (कौमार्य) तथा विवाहिताओं का सौभाग्य भी तुम हो। यज्ञों की अन्तेंवदी व ऋत्विजों की दक्षिणा हो। किसानों की सीता (हल जोतने से बनी रेखा) व समस्त प्राणियों को धारण करने वाली धरणी भी तुम हो। सागर में यात्रा करने वाले व्यापारियों की सिद्धि, समुद्रतट भूमि, कुबेर की माता तथा नागमाता 'सुरसा' भी तुम हो। तुम्हीं ब्रह्मवादिनी दीक्षा, परमशोभा, ज्योर्तिमय ग्रहों व तारों की चमक हो, और हे देवी ! नक्षत्रों में रोहिणी भी तुम्हीं हो। राजद्वारों, तीर्थों व नदियों के संगमों में तुम पूर्ण लक्ष्मी रूप से रहती हो। चन्द्रमा में पूर्णिमा रूप से तुम्हीं विराजित होती हो और तुम्हीं कृत्तिवास हो। महर्षि वाल्मीकि में सरस्वती बनकर, कृष्ण द्वैपायन व्यास में

स्मृति बनकर तथा ऋषि-मुनियों में सद्बुद्धि बनकर तुम्हीं स्थित हो। देवताओं में तुम सत्यसंकल्पात्मक चित्तवृत्ति बनकर स्थित हो। अपने कर्मों द्वारा प्रशंसा पाने वाले समस्त भूतों की सुरादेवी भी तुम हो, इन्द्र की मनोहर दृष्टि भी तुम हो। हजार नेत्रों वाली होने से तुमको 'सहस्त्रनयना' भी कहा जाता है।'

'तुम तपस्वियों की देवी, अग्निहोत्रियों की अरणी, समस्त प्राणियों की क्षुधा तथा देवताओं में सदा रहने वाली तृप्ति हो। स्वाहा, तृप्ति, धृति, मेधा, वसुओं की वसुमती, मनुष्यों की आशा तथा कृतकृत्य पुरुषों की पुष्टी भी तुम्हीं हो। दिशा, विदिशा, अग्निशिखा, प्रभा, शकुनी, पूतना तथा अत्यन्त दारुण रेवती भी तुम हो। सब प्राणियों को मोहित करने वाली निद्रा तुम हो, क्षत्रिया भी तुम हो। विद्याओं में ब्रह्मविद्या तुम हो तथा तुम्हीं 'ॐकार और वषट्कार हो। ऋषि तुम्हें नारियों में पुराण प्रसिद्ध पार्वती-उमा के रूप में जानते हैं। साध्वियों में तुम अरुंधती हो, जैसा कि प्रजापति कहते हैं। अपने पर्याय दिव्य नामों द्वारा तुम इन्द्राणी के रूप में प्रसिद्ध हो। तुमसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है। सब संग्रामों में, आग से जलते घरों में, नदी के तटों पर, लुटेरों के दलों में, दुर्गम स्थानों में, भय के सभी

अवसरों पर, परदेश में, राजा के द्वारा बन्दी बना लिए जाने पर, शत्रुओं का मर्दन करते समय तथा सभी प्राण संकटों की घड़ियों में तुम्हीं सबकी रक्षा करने वाली हो। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है देवी ! मेरा हृदय तुम्हीं में रत है। मेरा चित्त और मन भी तुम्हारे ही चिन्तन तथा मनन में संलग्न है। तुम समस्त पापों से मेरी रक्षा करो। तुम्हें मुझ पर कृपा करनी चाहिए।'

प्रसंग और फल—देवकी के गर्भ से जन्म लेने से पहले विष्णु ने अपनी योगमाया देवी को यशोदा के गर्भ से पुत्री के रूप में उत्पन्न होने के लिए कहा था। उससे पूर्व उन्होंने आर्यादेवी की स्तुति में यह स्तोत्र कहा था। इसे कात्यायनी स्तोत्र भी कहते हैं। यह मनोवांछित फल, सर्वसिद्धि तथा देवी का वरदान प्राप्त कराने वाला अत्यंत महत्वपूर्ण स्तोत्र है। जैसा कि स्वयं विष्णु ने इसके विषय में कहा है—

इमं यः सुस्तवं दिव्यमिति व्यासप्रकल्पितम् ।
यः पठेत् प्रातयत्थाया शुचिः प्रयतमानसः ॥

अर्थात्—जो कोई मेरे (विष्णु के) द्वारा किए गए तथा व्यास द्वारा रचे गए इस सुंदर दिव्य स्तोत्र का शुद्ध भाव व शांतचित्त से नित्य प्रातःकाल पाठ करता है।

त्रिभिर्मासैः काङ्क्षितं च फलं वै सम्प्रयच्छसि ।

षड्भिर्मासैर्वरिष्टं तु वरमेकं प्रयच्छसि ॥

अर्थात्–उसे तुम तीन महीने में मनोवांछित फल देती हो। तथा जो छः महीने तक निरंतर पाठ करता है। उसे कोई एक विशिष्ट वर देती हो। इसके अलावा एक वर्ष तक श्रद्धा सहित, संयम व नियम सहित पाठ करने वाले को सिद्धि तथा दिव्य दृष्टि मिलने की बात भी कही गई है। स्वयं विष्णु के अनुसार–

अर्चिता तु त्रिर्भिमासैर्दिव्यं चक्षुः प्रयच्छसि ।
संवत्सरेण सिद्धिं तु यथा कामं प्रयच्छसि ॥

अतः यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण व प्रभावी स्तोत्र है।

यश्चैतत् पठते स्तोत्रं शृणुयाद् वाप्यभीक्ष्णशः ।
सर्वार्थसिद्धिं लभते नरो नास्त्यत्र संशय ॥

अर्थात् – बार-बार इस स्तोत्र का पाठ या श्रवण करने वाला अपने सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध कर लेता है। इसमें कोई संशय नहीं है। (पाठक अवश्य इस स्तोत्र पाठ से लाभ उठाएँ।)

६. शिव स्तोत्र-२ (विजय दायक)

श्रीकृष्ण द्वारा शिवस्तुति युद्ध में विजय के लिए

रुद्रो देवत्वं रुदनाद रावणाश्च
रोरूयमाणो द्रावणाच्चाति देवः ।

भक्तं भक्तानां वत्सलं वत्सलानां
कीर्त्या युङ्क्ष्वेशाद्य प्रपद्ये शरण्यम् ॥ (१)
ग्राम्यारण्यानां त्वं पतिस्त्वं पशूनां
ख्यातो देवः पशुपतिः सर्वकर्मा ।
नान्यस्त्वक्तः परमो देवदेव
जगत्पतिः सुरवीराररिहन्ता ॥ (२)
यस्मादीशो महतामीश्वराणां
भवातद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ।
तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं
संतो विद्वांसः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः ॥ (३)
भूतं यस्माज्जगदत्यन्त धीर
त्वत्तोऽव्यक्तादक्षरादक्षरेश ।
तस्मात् त्वामाहुर्भव इव्येव
भूतं सर्वेश्वराणां महतामत्युदारम् ॥ (४)
यस्माज्जि तैरभिषिक्तोऽसि
सर्वैर्देवासुरैः सर्वभूतैश्च देव ।
महेश्वरं विश्वकर्माणमाहुस्त्वां
वै सर्वे तेन देवातिदेवम् ॥ (५)
पूज्यो देवैः पूज्यसे निव्यदा वै
शश्वच्छ्रेयः काङ्शभिर्वरदामेयवीर्य ।

तस्माद् विख्यातो भगवान्
देवदेवः सताभिष्टः सर्वभूतात्मभावी ॥(६)
भूमित्रयाणां देव यस्मात् प्रतिष्ठा
पुनर्लोकानां भावनामेयकीर्तिः ।
त्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम
तवाप्रमेय त्रिदशेशनाथ ॥(७)
शर्वः शत्रूणां शासनादप्रमेयस्तथा
भूयः शासनाच्चेश्वरेण ।
सर्वव्यापित्वाच्छङ्करत्वाश्च सद्भिः
शब्दस्येशानः श्रीकरार्कप्रयतेजाः ॥(८)
संसक्तानां नित्यदा यत् करोष
शमं भ्रातृव्यान् यद्यनैषीः समस्तान् ।
तस्माद् देवः शङ्करोऽस्यप्रमेयः
सद्भिर्मज्ञैः कथ्यसे सर्वनाथः ॥(९)
दत्तः प्रहारः कुलिशेन पूर्वे
तवेशान सुरराज्ञातिवीर्य ।
कण्ठेनैल्यं तेन ते यत् प्रवृत्तं तस्मात्
ख्यातस्त्वं नीलकण्ठेति कल्पः ॥(१०)
यल्लिङ्गाङ्कं यच्च लोके भगाङ्कं
सर्वे सोमत्वं स्थावरं जङ्गमं च ।

प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिनं त्वविज्ञास्तथा
ध्येयामम्बिकां लोकधात्रीम् ॥ (११)
वेदैर्गीता सा हि तत् त्वं प्रसूता
यज्ञो दीक्षाणां योगिनां चातिरूपः ।
नात्यद्भुतं त्वत्समं देव भूतं भूतं
भव्यं भवदेवाथ नास्ति ॥ (१२)
अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः
पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः ।
त्वत्तः मर्वे देवदेव प्रसूता एव
सर्वेशः कारणात्मा त्वामीड्यः ॥ (१३)

अर्थ–'आप रोदन (रोना), रावण (रुलाना), अतित्यधिक 'रव' और जन्ममरण रूप संसार का द्रावण (निवारण) करने वाले होने से 'रुद्र' कहे जाते हैं। आप महादेव हैं। मैं आपके भक्तों का भक्त और स्नेहियों का स्नेही हूँ। आप मुझे विजय दिलाइए। मैं आप शरणागत वत्सल की शरण लेता हूँ। आप ग्रामीण और वन्य पशुओं के पालक होने से पशुपति कहे जाते हैं। सारा जगत आप ही का विलास है। आप-अद्वितीय हैं। जगदीश्वर तथा देवशत्रुओं के हनन कर्त्ता हैं। आप ईश्वरों के भी ईश्वर, आदिपुरुष, प्रीतिदाता तथा प्राणदाता हैं। अतः तत्त्व ज्ञाता आपको 'ईश' या ईश्वर कहते हैं। अर्व्यन्त,

धीर, अक्षरेश्वर, अव्यक्त, अविनाशी, परमेश्वर तथा जगतोत्पादक आप ही हैं। अतः विद्वान आपको 'भव' कहते हैं। आप वास्तव में 'भूत' (नित्यसिद्ध) हैं। सर्वेश्वरों पर भी दया करने वाले हैं। अतः पराजित देवताओं, असुरों व सर्वप्राणियों ने आपका 'महेश्वर' पद पर अभिषेक किया है। और आप को 'देवाधिदेव' या 'महादेव' कहते हैं। बल पराक्रम से सम्पन्न वरद 'महेश' आप सदा कल्याण चाहने वाले देवताओं द्वारा पूजे जाते हैं। अतः आपको 'भगवान् देवदेव' भी कहते हैं। सत्पुरुषों के ईष्ट आप ही हैं। आप सब भूतों को अपने भीतर उत्पन्न करने वाले हैं।'

'ब्रह्मा आदि देवेश्वरों के भी स्वामी ! अप्रमेय स्वरूप, बार-बार लोकों को उत्पन्न करने वाले लोक भावन ! तीनों लोकों में भूमियों के आश्रय तथा तीन नेत्र वाले आप ही हैं। अतः आपको 'त्र्यम्बक' कहा जाता है। आप की कीर्ति अमेय है। संहारक होने से आप 'शर्व' कहलाते हैं। समस्त शत्रुओं पर शासन करने की अप्रमेय शक्ति से सम्पन्न हैं जगत् का शासन करने वाले विभु व शंकर (कल्याणकारी) होने से भी आपको 'अप्रमेय' कहते हैं। सब शब्दों में ईश्वर आप ही हैं आपका तेज सूर्य से भी बढ़कर है। आप भक्तों को सदैव सुख शांति देने

वाले, शत्रुभाव रखने वाले समस्त असुरों को दण्ड देने वाले, अप्रमेय शक्ति सम्पन्न तथा कल्याणकारी होने से 'शंकर' कहे जाते हैं। धर्मज्ञ आपको 'सर्वनाथ' भी कहते हैं। महानतम पराक्रमी ईशान ! पूर्वकाल में इन्द्र के वज्र प्रहार से आपका कंठ नीला हो जाने से आप 'नीलकण्ठ' कहे गए। आप समर्थ होते हुए भी दया और क्षमा वश ऐसे अपराध सह लेते हैं। उमा सहित महेश्वर (अर्धनारीश्वर)! इसलिए संसार में सब कुछ भग और लिंग के चिन्ह से अंकित हैं। तत्वज्ञ ब्राह्मण आपको गुणवान और ध्येयस्वरूपा अम्बिका लोक जननी को त्रिगुणरूपा कहते हैं।'

'वे अम्बिका ही वेदवर्णित 'अजा' (माया) हैं। वही महतत्त्व की जननी हैं। यज्ञदीक्षित यजमानों के द्रव्य यज्ञ तथा योगियों के योगयज्ञ आप ही हैं। लौकिक रूप से ऊपर उठे दिव्य चिन्मय विग्रहधारी हैं। हे देव ! आपके जैसा अत्यंत अद्‌भुत, भूत (तत्व) वर्तमान, भूत और भविष्य में दूसरा कोई नहीं है। हे देवदेवी मैं ब्रह्मा, कपिल, शेषनाग तथा आन्तरिक शत्रुओं (क्रोध, मद, मोह, काम, मात्सर्प, ईर्ष्या, अहंकार आदि) पर विजय पाने के कारण अतिवीर सनकादिक ब्रह्मपुत्र—सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। अतः आप सर्वेश्वर और सर्वकारण

रूप होने के कारण सदैव ही स्तुति किए जाने योग्य हैं।'

प्रसंग व फल—पारिजात वृक्ष हरण के अवसर पर इन्द्र से युद्ध के बाद रात्रि में पारिपात्र पर्वत पर कृष्ण ने शिव स्तुति कर 'बिल्वोदकेश्वर' की स्थापना की थी। जहाँ माँगने से कुछ भी मिल जाता है। तथा इस स्तोत्र से उन्होंने शिव की पूजा की थी। यह स्तोत्र युद्ध में विजय दिलाता है, जैसा कि स्वयं शिव ने कृष्ण से कहा है—'जो भक्तिभाव से तुम्हारे द्वारा कहे इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा उसे समय में विजय व उत्तम सम्मान प्राप्त होंगे तथा धर्मलाभ होगा।' यथा—

यश्चस्तवेन मां भक्त्या स्तोष्यतेऽमरसत्तम। त्वया कृतेन धर्मज्ञ धर्मभाक् सम्भविष्यति।

समरे च जयं विष्णो प्राप्य पूजां तथोत्तमाम् ॥

७. देवी स्तोत्र (संकट-बंधन मुक्ति)

अनिरुद्ध द्वारा कात्यायिनी स्तुति संकट व बन्धन मुक्ति के लिए :

महेन्द्रविष्णुभगिनीं नमस्यामि हितायवै ।
मनसा भावशुद्धेन शुचिः स्तोष्ये कृताञ्जलिः ॥(१)
गौतमीं कंसभयदां यशोदानन्दवर्द्धिनीम् ।
मेध्यां गोकुल सम्भूतां नन्दगोपस्य नन्दिनीम् ॥(२)

प्राज्ञां दक्षं शिवां सौम्यां दनुपुत्रविमर्दिनीम् ।
तां देवीं सर्वदेहस्थां सर्वभूतनमस्कृताम् ॥(३)
दर्शनीं पूरणीं मायां व ह्रसूर्य शशिप्रभाम् ।
शातिं ध्रुवां च जननीं मोहनीं शोषणीं तथा ॥(४)
सेव्यां देवे: सर्विगणैः सर्वदेवनमस्कृताम् ।
कालीं कात्यायनीं देवीं भयदां भयनाशिनीम् ॥(५)
कालरात्रिं कामगमां त्रिनेत्रां ब्रह्मचारिणीम् ।
सौदामिनीं मेघरवां वेतालीं विपुलाननाम् ॥(६)
यूशस्याद्यं महाभागं शकुनीं रेवतीं तथा ।
तिथीनां पञ्चमीं षष्ठीं पूर्णमासीं चतुर्दशीम् ॥(७)
सप्तविशंति ऋक्षाणि नद्यः सर्वा दिशो दश ।
नगरोपवनोद्यान द्वाराट्टालकवासिनीम् ॥(८)
ह्रीं श्रीं गङ्गां च गंधर्वी योगिनीं योगदां सताम् ।
कीर्तिमाशां दिशं स्पर्शी नमस्यामि सरस्वतीम् ॥(९)
वेदानां म तरं चैव स वित्रीं भक्तवत्सलाम् ।
तपस्विनीं शान्तिकरींमकानंशां सनातनाम् ॥(१०)
कौटीर्या मदिरां चण्डामिलां मलयवासिनीम् ।
भूतधात्रीं भयंकारीं कूष्माण्डीं कुसुमप्रियाम् ॥(११)
दारूणीं मदिरावासां विन्ध्यकैलाश वासिनीम् ।
वराङ्गनां सिंहरथीं बहुरूपां वृषध्वजाम् ॥(१२)

दुर्लभां दुर्जयां दुर्गाम् निशुम्भभयदर्शिनीम् ।
सुरप्रियां सुरांदेवी वज्रपाण्यनुजां शिवाम् ॥ (१३)
किरातीं चीरवसनां चौरसेनानमस्कृताम् ।
आज्यपां सोमयां सौभ्यां सर्वपर्वतवासिनीम् ॥ (१४)
निशुम्भशुम्भमथनीं गजकुम्भेपमस्तनीम् ।
जननीं सिद्धसेनस्य सिद्धचारण सेविताम् ॥ (१५)
चरां कुमार प्रभवां पार्वतीं पर्वतात्मजाम् ।
पञ्चाशद्देवकन्यानां पत्न्यो देवगणस्य च ॥ (१६)
कद्रुपुत्रसहस्त्रस्य पुत्रपौत्रवस्त्रियः ।
माता पिता जगत्मान्या दिवि देवाप्सरोगणेः ॥ (१७)
ऋषिपत्नागणानांच यज्ञगन्धर्वये पिताम् ।
विद्याधराणं नारीषु साध्वीषु मनुजासु च ॥ (१८)
एवमेतासु नारीषु सर्वभूताश्रया ह्यसि ।
नमस्कृतासि त्रैलोक्ये किन्नरोद्गीतसेविते ॥ (१९)
अचिन्त्या ह्यप्रमेयासि यासि सासि नमोऽस्तु ते ।
एभिर्नामभिरन्यैश्च कीर्तिता ह्यसि गौतमि ॥ (२०)
त्वत्प्रपादादविघ्नेन क्षिप्रं मुच्येत बन्धनात् ।
अवेक्षस्व विशालाक्षि पादौ ते शरणं व्रजे ॥ (२१)
सर्वेषामेव बन्धानां मोक्षणं कर्तुमर्हसि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्याग्निमारूताः ॥ (२२)

अश्विनौ वसवश्चैव विश्वेसाध्यास्तथैव च ।
मरुता सह पर्जन्योधाता भूमिर्दिशोदश ॥ (२३)
गावो नक्षत्रवंशाश्च ग्रहा नद्यो ह्रदास्तथा ।
सरितः सागराश्चैव नानाविद्याधरोरगाः ॥ (२४)
तथा नागाः सुपर्वाणो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
कृत्स्नं जगदिदं प्रोक्तं दैव्या नामानुकीर्तनात् ॥ (२५)
देव्याः स्तवमिमं पुण्यं चः पठेत् सुसमाहितः ।
सा तस्मै सप्तमे मासि वरमग्रयं प्रयच्छति ॥ (२६)
अष्टादशभुजा देवी दिव्याभरणभूषिता ।
हारशोभितसर्वाङ्गी मुकुटोज्जवलभूषणा ॥ (२७)
कात्यायनि स्तूयसे त्वं वरमग्रयं प्रयच्छसि ।
अतः स्तवीमि त्वां देवीं वरदे वामलोचने ॥ (२८)
नमोऽस्तु ते महादेवि सुप्रीता मे सदाभव ।
प्रयच्छ त्वं वरं ह्यायुः पुष्टिं चैव क्षमां धृतिम ॥ (२९)
बंधनस्थो विमुच्येयं सत्यमेतद् भवेदिति ॥ (३०)

विशेषः (इस स्तोत्र को 'दुर्गा स्तोत्र' के नाम से भी जानते हैं।)

अर्थ–'इन्द्र और विष्णु की बहिन जो देवी हैं उन्हें अपने हितार्थ प्रणाम करता हूँ और शुद्ध भाव व पवित्रता के साथ करबद्ध हो स्तुति करता हूँ। गौतमी (गोदावरी) स्वरूपा, कंस को भय देने वाली, यशोदा

को आनन्द देने वाली, पवित्र, गोकुल में आदिर्भूत हुई, नन्दगोप की पुत्री जो हैं उन आर्यादेवी को मेरा प्रणाम है। प्राज्ञा (विदुषी), दक्षा (कुशल), कल्याण स्वरूपा, सौम्या (सुंदर), दानवों का मर्दन करने वाली, सब शरीरों में (शक्ति रूप से) विद्यमान, समस्त भूतों द्वारा वंदनीय जो आर्या देवी हैं, उन्हें मेरा प्रणाम है। जो दर्शनी, पूरणी (इच्छाएँ पूर्ण करने वाली) मायास्वरूपा, अग्नि, सूर्य, और चन्द्र के समान कांति वाली, शांतिमयी, अविनाशिनी, सबकी माता, मोहिनी तथा शोषणी हैं, ऋषि व देवता जिनकी सेवा करते हैं, जिनके चरणों में समस्त देवता सिर झुकाते हैं–उन काली, कत्यायनी भयदायिनी (दुष्टों के लिए) और भयनाशिनी (सज्जनों के लिए) देवी को मेरा प्रणाम है। कालरात्रि, इच्छानुसार सब जगह जा सकने वाली त्रिनेत्रवाली, ब्रह्मचारिणी, विद्युतस्वरूपा, मेघगर्जन करने वाली, वैताली और विशाल मुखवाली जो देवी है उनको मेरा नमस्कार है। यूथ की प्रधनायक्षा (अध्यक्षा), महासौभाग्यशालिनी, शकुनी, रेवती आदि ग्रहस्वरूपा तथा तिथियों में पंचमी, षष्ठी, पूर्णिमा तथा चतुर्दशी स्वरूपा हैं, उन देवी को प्रणाम है।'

'सत्ताईस नक्षत्र, दसों दिशाएँ व सम्पूर्ण नदियाँ

जिनके स्वरूप हैं, नगरों, उपवनों, वनों, अट्टालिकाओं में अधिष्ठात्री रूप से रहने वाली आर्यादेवी का अभिवादन करता हूँ। जो ह्रीं (लज्जा) और श्रीं (सम्पत्ति), गंगा, गंधर्वा (राधा), योगिनी तथा सत्पुरुषों को योग प्रदान करने वाली है–उन कीर्ति, दिशा, आशा, स्पर्शा और सरस्वती नामक देवी को प्रणाम है। वेदमाता, तपस्विनी, भक्तवत्सला, शांतिकरी, सावित्री, एकानंशा और सनातन स्वरूपा आर्यादेवी को प्रणाम है। कुटीर वासिनी, मत्त बनाने वाली, अतिक्रोधा, इला, मलयवासिनी, समग्रभूतों की धारिणी, भयंकारी, कूष्मांडी और कुसुम प्रिया देवी को प्रणाम है। दारुण स्वभाव वाली, विन्ध्यव कैलाश पर्वत पर रहने वाली, श्रेष्ठ अंगों वाली, सिंहवाहिनी, बहुरूपा और वृषभ चिन्ह वाली ध्वजा धारण करने वाली उन देवी को नमस्कार है, जिनका आवास भी मत्त बना देने वाला है। दुर्लभ, दुर्जय, दुर्गम, निशुम्भसुर नाशिनी (उसे भय देने वाली), देवप्रिया, सुरस्वरूपा तथा वज्रवाणी इन्द्र की बहिन कल्याणी देवी को नमस्कार है।'

'किरातवेषधारिणी, चीरवस्त्र धारिणी, चोरों की सेना से नमस्कृत, घी पीने वाली, सोमरस पीने वाली, सौम्या, सब पर्वतों पर वास करने वाली देवी को प्रणाम

है। निशुम्भ तथा शुम्भ दैत्यों का वध करने वाली, हाथी के कुम्भ स्थलों के समान पुष्ट स्तनों वाली सिद्ध व चारणों से सेवित, कार्तिकेय की माता, कुमार की जननी, पर्वत पुत्री, सर्वत्र विचरने वाली, पार्वती देवी को प्रणाम है। पचास देव कन्याओं में (दक्ष पुत्रियों में) देवताओं की पत्नियों में, कद्रू की हजारों पुत्रवधुओं तथा पौत्रवधुओं में, माता पिताओं में देवताओं, अप्सराओं व ऋषिपत्नियों में, यक्षों व गंधर्वों की स्त्रियों में आपका ही निवास है। क्योंकि हे देवमाता आप सम्पूर्ण भूतों का आश्रय हैं। त्रिलोकी में सर्वत्र आपके चरणों में सिर झुकाए जाते हैं। किन्नर उच्च स्वर में गायन द्वारा आपको प्रसन्न करते हैं। आप अप्रमेय, अचिन्त्य हैं। जो आप हैं, सो आप हैं (यानी आपकी कोई तुलना, उपमा नहीं हो सकती)! आपको नमस्कार करता हूँ। हे गौतम की नन्दिनी ऊपर कहे गए नामों से तथा अन्य दूसरे नामों से भी आपका कीर्तन किया जाता है।'

'विशाल नेत्रों वाली, आप की कृपा से मैं बिना किसी विघ्नबाधा के शीघ्र ही बंधनमुक्त हो जाऊँ। आप मुझपर कृपा करें, मैं आपके चरणों की शरण लेता हूँ, आप मुझे समस्त बंधनों से छुड़ाने में समर्थ हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, अश्विनीकुमार,

वसु, विश्वेदेव, साध्यगण, मरुद्गण, पर्जन्य, धाता, भूमि, दसों दिशाएँ, गौ, नक्षत्र, ग्रह, नदियाँ, सरोवर, समुद्र, विद्याधर, सर्प, नाग, गरुड़, गंधर्व, अप्सराएँ आदि–देवी के नाम का कीर्तन करने से सम्पूर्ण जगत् का कीर्तन हो जाता है। (अर्थात् ये सब आप ही के रूप हैं।) जो कोई एकाग्रचित्त होकर देवी के इस पवित्र स्तोत्र का पाठ करता है। देवी उसे सातवें महीने में उत्तम वर प्रदान करती हैं। देवी की १८ भुजाएँ हैं। वो दिव्य आभूषणों से विभूषित तथा हार से उनका अंग शोभित है। मुकुट की आभा से सारे आभूषण और भी चमक जाते हैं। कात्यायनी आप स्तुति करने पर उत्तम वर देती हैं। अतः वरदा वामलोचने मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ। महादेवी ! आपको प्रणाम है। आप सदा मुझ पर प्रसन्न रहें और मुझे श्रेष्ठ आयु, पुष्टि, क्षमा, धैर्य प्रदान करें। मैं बाँधवों में पड़ा हूँ। किन्तु इनसे मुक्त हो जाऊँ। मेरा यह संकल्प सत्य है।'

प्रसंग व फल–श्री कृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध बाणासुर की पुत्री ऊषा से विवाह के समय बाणासुर द्वारा पकड़ कर बन्दी बना लिया गया था। तब उसने देवी की इस स्तोत्र से स्तुति की थी। उससे प्रसन्न होकर देवी ने उसे शीघ्रमुक्ति का वर दिया था। तब श्रीकृष्ण आदि यादवों

ने रण में बाणासुर को जीतकर अनिरुद्ध को मुक्त करा दिया था।

कुछ फलों का वर्णन तो स्तोत्र में ही हो चुका है। तथापि जैसा कि वैशम्पायन जी ने कहा है– 'एकाग्रचित्त होकर इस स्तोत्र का नियमित पाठ करने से पाप नष्ट होते हैं, सद्गति प्राप्त होती है और बंधनों या संकटों में घिरा व्यक्ति शीघ्र ही उनसे छूट जाता है। यथा–

आर्यास्तवमिदं पुण्यं यः पठेत् सुसमाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।
बंधनसो विमुच्येत सत्यं व्यासवचोयथा ॥

८. हरिहरात्मक स्तोत्र-२

(सर्वार्थ सिद्धि के लिए)

मार्कण्डेय द्वारा शिव विष्णु स्तुति के लिए रचित

पृष्ठभूमि :

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे ।
यथान्तरं न पश्यामि तेन तौ दिशतः शिवम् ॥
यो विष्णुः स तुवै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः ।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः ॥

(विष्णु रूपधारी शिव तथा शिव रूपधारी विष्णु को नमस्कार है। मैं इन दोनों में कोई अंतर नहीं देखता,

मेरे इस भाव से संतुष्ट होकर दोनों मेरा कल्याण करें। जो विष्णु हैं–वही रुद्र हैं। जो रुद्र हैं–वही ब्रह्मा हैं। इनका मूलस्वरूप एक ही है। किन्तु कार्यभेद से वे रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा–त्रिदेव कहे जाते हैं)!

यथा जले जलं क्षिप्तं जलमेव तु तद् भवेत्।
रुद्रं विष्णुः प्रविष्टस्तु तथा रुद्रमयो भवेत्॥
अग्निमग्निः प्रविष्टस्तु अग्निरेव यथा भवेत्।
तथा विष्णुं प्रविष्टस्तु रुद्रो विष्णुमयो भवेत्॥

(जैसे जल में डाला हुआ जल-जलरूप-एकात्म हो जाता है। उसी प्रकार रुद्र देव में प्रविष्ट हुए विष्णु रुद्रमय हो जाते हैं। जैसे कि अग्नि में प्रविष्ट हुई अग्नि-अग्निरूप-एकरूप हो जाती है। वैसे ही विष्णु में प्रविष्ट हुए रुद्रदेव विष्णुरूप हो जाते हैं।)

रुद्रमग्निमयं विद्याद् विष्णुः सोमात्मकः स्मृतः।
अग्नीषोमात्मकं चैव जगत् स्थावरजंगमम्॥

(रुद्र को अग्नि स्वरूप तथा विष्णु को सोम स्वरूप माना गया है। अतः यह समस्त चराचर जगत् अग्नीषोमात्मक' (आग व जल से मिलकर बना हुआ है) कहा जाता है।)

कर्तारौ चापहर्तारौ स्थावरस्य चरस्य तु।
जगतः शुभकर्तारौ प्रभविष्णु महेश्वरौ॥

(यह हरि और हर ही समस्त चराचर जगत् के कर्त्ता, संहारक, शुभकारक हैं। यही प्रभावशाली महेश्वर-ईश्वरों के भी ईश्वर हैं।) यह गूढ़ रहस्य ब्रह्मा को मार्कण्डेय इस स्तोत्र से पूर्व बताते हैं।'

स्तोत्रारम्भ

रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः ।
एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः ॥(१)
न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः ।
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा ॥(२)
नमो रुद्राय कृष्णाय नमः संहतचारिणे ॥
नमः षडर्धनेत्राय सद्धिनेत्राय वै नमः ।
नमः पिङ्गल नेत्राय पद्मनेत्राय वैनमः ॥ (३)
नमः कुमार गुरवे प्रद्युम्नगुरवे नमः ।
नमोधरणी धराय गङ्गधराय वैनमः ॥(४)
नमो मयूर पिच्छाय नमः केयूरधारिणे ।
नमः कपालमालाय वनमालाय वै नमः ॥(५)
नमस्त्रिशूलहस्ताय चक्रहस्ताय वै नमः ।
नमः कनकदण्डाय नमस्ते ब्रह्मदण्डिने ॥(६)
नमश्चर्मनिवासाय नमस्ते पीतवास से ।
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये उमायाः पतयेनमः ॥(७)

नमः खट्वाङ्गधाराय नमो मूसलधारिणे ।
नमो भस्माङ्गरागाय नमः कृष्णाङ्गधारिणे ॥(८)
नमः श्मशानवासाय नमः सागरवासिने ।
नमो वृषभवाहाय नमो गरुड़वाहिने ॥(९)
नमस्त्वनेकरूपाय बहुरूपाय वैनमः ।
नमः प्रलयकर्त्रे च नमस्त्रैलोक्यधारिणे ॥(१०)
नमोऽस्तु सौम्यरूपाय नमो भैरवरूपिणे ।
विरुपाक्षाय देवाय नमः सौम्येक्षणाय च ॥(११)
दक्षयज्ञविनाशाय बलेर्नियमनाय च ।
नमः पर्वतवासाय नमः समुद्रवासिने ॥(१२)
नमः सुररिपुघ्नाय त्रिपुरघ्नाय वै नमः ।
नमोऽस्तु नरकघ्नाय नमः कामाङ्गनाशिने ॥(१३)
नमस्त्वन्धकनाशाय नमः केटभनाशिने ।
नमः सहस्त्रहस्ताय नमोऽसंख्येयबाहवे ॥(१४)
नमः सहस्त्रशीर्षाय बहुशीर्षाय वै नमः ।
दामोदराय देवाय मुञ्जमे खलिने नमः ॥(१५)
नमस्ते भगवन् विष्णो नमस्ते भगवञ्छिव ।
नमस्ते भगवन् देव नमस्ते देवपूजित ॥(१६)
नमस्ते सामभिर्गीत नमस्ते यजुभिः सह ।
नमस्ते सुरशत्रुघ्न नमस्ते सुरपूजित ॥(१७)
नमस्ते कर्मिणां कर्म नमोऽमितपराक्रम ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु स्वर्ण केश नमोऽस्तुते ॥(१८)

अर्थ– 'रुद्र के आराध्य विष्णु और विष्णु के आरध्य रुद्र हैं। एक ही परमेश्वर दो रूपों में विभक्त होकर सदा समस्त जगत में विचरण करते हैं। भगवान् शंकर के बिना विष्णु और भगवान् विष्णु के बिना शंकर नहीं हैं। (दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं।) अतः पूर्वकाल से ही ये दोनों एकत्व को प्राप्त हैं। संयुक्त या एकरूप होकर विचरने वाले हर और हरि को प्रणाम है। त्रिनेत्रधारी शिव और द्विनेत्रधारी विष्णु को प्रणाम है। पिंगल नेत्र वाले शिव और कमलनयन वाले विष्णु को प्रणाम है। कार्तिकेय के पिता शंकर और प्रद्युम्न के पिता माधव को प्रणाम है। शेषरूप से पृथ्वी को धारण करने वाले (अथवा वाराह रूप से भूमि को धारण करने वाले) श्रीहरि तथा गंगा को सिर पर धारण करने वाले (तथा चन्द्रमा को सिर पर धारण करने वाले) शम्भु को भी प्रणाम है। मस्तक पर मोर पंख धारण करने वाले केशव और सर्पों का बाजूबंद धारण करने वाले शिव को प्रणाम है। वनमाला-वैजयन्ती माला पहनने वाले विष्णु और कपाल माला धारण करने वाले रुद्र को प्रणाम है। त्रिशूल पाणी शिव और चक्रपाणी नारायण को प्रणाम है। स्वर्ण दण्ड (गदा) धारी केशव और ब्रह्मदण्ड (जिस पर हाथ टिका कर माला जपते हैं) धारी शर्व

को प्रणाम है। व्याघ्र चर्म पहनने वाले चन्द्रशेखर तथा पीताम्बर धारी कृष्णचन्द्र को प्रणाम है। रमापति विष्णु और उमापति महेश को नमस्कार है। खट्वांग धारी महादेव और मूसलधारी (गदधारी-बलराम रूप से) देवाधिदेव को प्रणाम है। अंगों पर भभूत मलने वाले शंकर तथा काले अंगों वाले कृष्ण को प्रणाम है। श्मशानवासी शर्व और समुद्रनिवासी केशव को प्रणाम है। वृषभवाहन महेश्वर और गरुड़ वाहन परमेश्वर को प्रणाम है। अनेकावतार धारी विष्णु और बहुरूप धारी शंकर को प्रणाम है। प्रलय करने वाले रुद्र तथा त्रिलोकों की रक्षा (पालन) करने वाले नारायण को प्रणाम है।'

'सौम्य (सुंदर) रूपी श्रीहरि तथा भैरव (भयंकर) रूप वाले महाकाल को प्रणाम है। विरूपनेत्र वाले महादेव और सुंदर नेत्रों वाले जनार्दन को प्रणाम है। दक्षयज्ञ का विनाश करने वाले शूलपाणी तथा बलि को बाँधने वाले गदापाणी को प्रणाम है। पर्वतों के वासी डमरू बजाने वाले शंकर और सागर के वासी मुरली बजाने वाली श्याम को नमस्कार है। (डमरू के कारण ताल तथा लय पर शिव का और मुरली के कारण सुर तथा राग पर विष्णु का अधिकार है। इस प्रकार शिव नृत्य के और विष्णु गान के स्वामी हैं।) देवताओं के

शत्रुओं का नाश करने वाले (षट्पुर नाशक) विष्णु और त्रिपुरनाशक रुद्र को प्रणाम है। नरकासुर को जला देने वाले हरि और कामदेव को जला देने वाले हर को प्रणाम है। अन्धकासुर के वधकर्ता शिव और कैटभासुर के वधकर्ता नारायण को प्रणाम है। सहस्त्रों हाथों वाले विष्णु और असंख्य भुजाओं वाले शंकर को प्रणाम है। सहस्त्रों मस्तक वाले हरि और बहुत से मस्तक वाले हर को प्रणाम है। दामोदर (उदर पर रस्सी बाँधी थी–यशोदा ने) कृष्ण और मूंजमेखला कमर पर बाँधने वाले कराल (शंकर) को प्रणाम है। भगवान् विष्णु को प्रणाम है। भगवान् शिव को प्रणाम है। महादेव को प्रणाम है। देवाधिदेव को प्रणाम है। महेश्वर को प्रणाम है। परमेश्वर को प्रणाम है। सामवेद के मंत्रों द्वारा गाए जाने वाले प्रभु को प्रणाम है। यजुर्वेद के साथ संबंध रखने वाले विभु को प्रणाम है। आप ही कर्मपरायणों के कर्म हैं। आप ही असीम पराक्रम वाले हैं। आप दोनों को नमस्कार है। देवद्रोहियों के नाशक (तथा नाग को ही अपना बिछौना बनाने वाले) विष्णु को प्रणाम है। देवताओं द्वारा पूजित (तथा नाग को ही अपना आभूषण बनाने वाले) शिव को मेरा प्रणाम है। हृषीकेश को प्रणाम है। सुनहरे केश वाले (शिव) को भी मेरा प्रणाम है।'

प्रसंग व फल—बाणासुर के वध के लिए जब कृष्ण ने शोणितपुर पर आक्रमण किया तब शिवजी ने वरदान के कारण शोणितपुर की रक्षा के लिए कृष्ण से युद्ध किया। कृष्ण (विष्णु) और शिव का युद्ध किसी निर्णय पर पहुँच ही नहीं सकता था अतः ऐसा उपाय किया गया कि कृष्ण शोणितपुर में प्रविष्ट हो सकें और शिव का वरदान भी असत्य न हो। इसके लिए 'जम्भास्त्र' का प्रयोग किया गया। किन्तु शिव और विष्णु को यूँ द्वन्द करते देख ब्रह्मा संभ्रम में पड़ गए थे। तब मार्कण्डेय जी ने ब्रह्मा को शिव और विष्णु की एकरूपता का रहस्य बताते हुए यह स्तोत्र कहा था। इस स्तोत्र के बहुत से फल मार्कण्डेय जी ने कहे हैं। प्रति दिन पाठ करने या सुनने पर विष्णु और रुद्र की कृपा से परमपद प्राप्त होता है। जैसा कि कहा है—

यश्चैनं पठते नित्यं यश्चैनं शृणुयान्नरः।
प्राप्नोति परमं स्थानं विष्णु रुद्रप्रसादजम्॥

और नीरोग, बलवान शरीर प्राप्त होता है। धन सम्पत्ति तथा मरने पर स्वर्ग प्राप्त होता है। राक्षस, पिशाच, विघ्न आदि का भय नहीं रहता पुत्रहीन को पुत्र प्राप्त होता है। कुमारी कन्या को श्रेष्ठ पति प्राप्त हो जाता है। तथा गर्भवती स्त्री यदि इसका श्रवण करती है।

तो वह उत्तम पुत्र को जन्म देती है। इस प्रकार से यह 'पुंसवन स्तोत्र' भी है। यथा–

अपुत्रो लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ।
गुर्विणी शृणुते या तु वरं पुत्रं प्रसूयते ॥
राक्षसाश्च पिशाचाश्च विघ्नानि च विनायकः ।
भयंतत्र न कुर्वन्ति यत्रायं पठ्यते स्तवः ॥

९. मोक्षविंशक स्तोत्र (मोक्षदायक)

नारद द्वारा बलि को कहा गया मोक्ष प्राप्ति स्त्रोत

ॐ नमोऽस्त्वनन्तपतये अक्षयाय महात्मने ।
जलेशयाय देवाय पद्मनाभाय विष्णवे ॥(१)
सप्तसूर्यवपुः कृत्वा त्रींल्लोकान् क्रान्तवानसि ।
भगवन् कालकालस्त्वं तेन सत्येन मोक्षय ॥(२)
नष्टचन्द्रार्कगगने क्षीणयज्ञतपः क्रिये ।
पुनश्चिन्तय से लोकांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥(३)
ब्रह्मरुद्रेन्द्रवाय्वग्निसरिणु जगपर्वताः ।
त्वत्स्था दृष्टा द्विजेन्द्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥(४)
मार्कण्डेनं पुरा कल्पे प्रविश्य जठरं तव ।
चराचर गतं दृष्टं तेन सत्येन मोक्षय ॥(५)
एको विद्यासहायस्त्वं योगी योगमुपागतः ।
पुनस्त्रैलोक्यमुत्सृज्य तेन सत्येन मोक्षय ॥(६)

जलशय्यामुपासीनो योग निद्रामुवागतः ।
लोकांश्चिन्तयसे भूयस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ (७)
वाराहं रूपमास्थाय वेदयज्ञपुरस्कृतम् ।
धरा जलोद्धृता येन तेन सत्येन मोक्षय ॥ (८)
उद्धृत्य दंष्ट्रया यज्ञांस्त्रीन् पिण्डान् कृतयानसि ।
त्वं पितृणामयि हरे तेन सत्येन मोक्षय ॥ (९)
प्रदुद्रुवुः सुराः सर्वे हिरण्याक्षभयार्दिताः ।
परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१०)
दीर्घवक्त्रेण रूपेण हिरण्याक्षस्य संयुगे ।
शिरो जहार चक्रेण तेन सत्येन मोक्षय ॥ (११)
भग्नमूर्धास्थिमस्तिष्को हिरण्यकशिपुः पुरा ।
हुंकारेण हतो दैत्यस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१२)
दानवाभ्यां हृता वेदा ब्राह्मणः पश्यतः पुरा ।
परित्रातास्त्वया देव तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१३)
कृत्वा हयशिरोरूपं हत्वा तु मधुकैटभौ ।
ब्रह्मणे तेऽर्पिता वेदास्तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१४)
देवदानव गंधर्वा यक्षसिद्धमहोरगाः ।
अन्तं तव न पश्यन्ति तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१५)
अपान्तरतमा नाम जातो देवस्य वै सुतः ।
कृताश्च तेन वेदार्थास्तने सत्येन मोक्षय ॥ (१६)

वेदयज्ञाग्नि होत्राणि पितृयज्ञहवींषि च।
रहस्यं तव देवस्य तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१७)
ऋषिर्दीर्घतमा नाम जात्यन्धो गुरुशापतः।
त्वत्प्रसादाच्च चक्षुष्मांस्तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१८)
ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं च दीनं मृत्युवशं गतम्।
भक्तं मोक्षितवांस्त्वं हि तेन सत्येन मोक्षय ॥ (१९)
अक्षयश्चाव्ययश्च त्वं ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः।
उच्छ्रितानां नियन्तासि तेन सत्येनमोक्षय ॥ (२०)

नोटः स्तोत्र २० श्लोकों का है। यह सहायक श्लोक हैं। मूल स्तोत्र का अंग नहीं।

शङ्खं, चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गं गरुडमेव च।
प्रसादयामि शिरसा ते बन्धान्मोक्षयन्तु माम् ॥ (२१)
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गं च गरुड़ादयः।
हरिं प्रसादयामासुर्बुलिं मोक्षय बन्धनात् ॥ (२२)

अर्थ–'जो अनन्त नाग के स्वामी, अविनाशी, महात्मा, जल में शयन करने वाले, दिव्यस्वरूप और नाभि के कमल प्रकट करने वाले हैं, उन भगवान् विष्णु को नमस्कार है। आप काल के भी काल, सात सूर्यों के समान तेजस्वी शरीर धारण कर तीन लोक नापने वाले हैं। इस सत्य के प्रभाव से मुझे इस बंधन से छुड़ाइए (मोक्ष दीजिए)। महाप्रलय में चन्द्र, सूर्य और

आकाश का भी जब लय हो जाता है, यज्ञ व तप रूपी कर्म क्षीण हो जाते हैं तब आप सृष्टि के आरम्भ में सब लोकों की कल्पना करके संकल्प मात्र से उन्हें प्रकट कर देते हैं। इस सत्य के प्रभाव से मुझे इस बंधन से मुक्त कीजिए। (मोक्ष दीजिए।)। प्रलय में द्विजराज मार्कण्डेय ने ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, अग्नि, नदी, सर्प और पर्वत आदि को आपके भीतर ही स्थित देखा था। इस सत्य के प्रभाव से मुझे बंधन मुक्त कीजिए (मोक्ष दीजिए)। पूर्वकल्प में मार्कण्डेय जी ने आपके उदर में प्रवेश कर वहाँ चराचर प्राणियों से पूर्ण जगत् को देखा था–उस सत्य के प्रभाव से मुझे बंधनमुक्त कीजिए। (मोक्ष दीजिए।)। आप योगी हैं। योग का आश्रय ले एकमात्र विद्या (योगमाया) की सहायता से पुनः त्रिलोकी की सृष्टि कर उसमें अन्तर्यामी आत्मा रूप से व्यापते हैं। इस सत्य के प्रभाव से मुझे बंधनों से मुक्त कीजिए। मोक्ष दीजिए। योगनिद्रा का आश्रय लेकर जल पर शयन करते हुए आप पुनः लोकों का चिन्तन करते हैं। (प्रलय के बाद)–उस सत्य के प्रभाव से मुझे बंधन मुक्त कीजिए। (मोक्ष दीजिए)।

'आपने वेदमय, यज्ञमय, वाराहमय धारण कर जिस सत्य के प्रभाव से इस पृथ्वी का जल से उद्धार किया

था, उसी सत्य के प्रभाव से मुझे भी संकट से छुड़ाइए। (मुक्त कीजिए)। आपने (वाराह रूप में) अपनी दाढ़ों से यज्ञों का उद्धार कर पितरों के लिए भी तीन पिण्डों की व्यवस्था की है। हे हरि ! इस सत्य के प्रभाव से मुझे इस नागपाश से मुक्त करें। (मोक्ष दें) हिरण्याक्ष से डरकर जब सारे देवता भाग गए थे, तब आपने ही उनकी रक्षा की थी। उसी सत्य के बल पर मुझे मुक्त कीजिए। (मोक्ष दीजिए) लंबे मुंहवाले वाराह का रूप धर आपने युद्ध में चक्र से हिरण्याक्ष का सिर काटा था, उस सत्य के प्रभाव से मुझे बंधनों से मुक्त कर मोक्ष दीजिए। पूर्व काल में आपने हुँकार द्वारा ही (नृरसिंह रूप से) हिरण्यकशिपु नामक दैत्य के मस्तक की हड्डी और मस्तिष्क चूर्ण कर उसे मार डाला था। उस सत्य के प्रभाव से मुझे भी संकटों से मुक्त कीजिए। (मोक्ष दीजिए।) हे देव ! पूर्व काल में ब्रह्मा जी के देखते-देखते मधु और कैटभ नामक दो दैत्यों ने सारे वेदों का हरण कर लिया था। तब आपही ने वेदों का उद्धार किया। उस सत्य के प्रभाव से मुझे बंधन मुक्त कर मोक्ष दीजिए। हयग्रीव रूप धारण करके मधु व कैटभ का वध कर आपने पुनः वेदों को ब्रह्माजी को दिया था। इस सत्य के प्रभाव से मुझे बंधन मुक्त करके

मोक्ष दीजिए। देव, दानव, यक्ष, गंधर्व, सिद्ध और नाग भी आपका अन्त नहीं देख पाते। (आपको पूर्णतः जान नहीं पाते)–इस सत्य के प्रभाव से मुझे संकटमुक्त कर मोक्ष दें। अपान्तरतमा नामक आपके पुत्र जो थे उन्होंने सब वेदों का अर्थ किया इस सत्य के बल पर मुझे बंधन मुक्त कीजिए। वेद, यज्ञ, अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, हर्वियज्ञ–सब आप ही के रहस्य हैं। इस सत्य के बल पर मुझे बंधन मुक्ति दें। दीर्घतमा ऋषि अपने गुरु या पिता के श्राप से जन्मान्ध हुए जो आपकी कृपा से नेत्रवान् हो गए थे। इस सत्य के बल पर मुझे निबन्ध करें। ग्राह से ग्रसित गजराज जब दीन होकर मृत्यु के मुख में पड़ गया था तब आपने उसे संकट से उबारा था। इस सत्य के प्रभाव से मुझे भी संकट से मुक्त करें। आप अक्षय, अविनाशी, ब्राह्मणभक्त, भक्तवत्सल तथा दुष्टों का दमन करने वाले हैं। इस सत्य के प्रभाव से मेरा भी उद्धार कीजिए।'

सहयोगी श्लोकों का अर्थ–'मैं शंख, चक्र, गदा, कमल, शार्ङ्गधनुष तथा गरुड़ को भी प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूँ। ये मुझे इस बंधन से मुक्त करें। (आपसे मेरी सिफारिश करें) तब शंख, चक्र, गदा, कमल और शार्ङ्ग तथा गरुड़ ने भी भगवान् को प्रसन्न करके कहा–'आप बलि को बंधन मुक्त कर दीजिए।'

प्रसंग व फल—वामनावतार के समय, बलि का राज्य तीन पदों से छीन कर बलि को नागपाश द्वारा बाँध कर वामन चले गए थे। तब बलि को नारद ने यह स्तोत्र बताया था। इस स्तोत्र के बल पर बलि ने मुक्ति पाई थी। इस स्तोत्र के फल इस प्रकार कहे गए हैं।'

गोवध, ब्रह्महत्या आदि जघन्य पापों के प्रभाव भी इससे नष्ट होते हैं। पुत्रहीन को पुत्र तथा कुमारी को श्रेष्ठ पति प्राप्त होता है। गर्भवती स्त्री इसे सुने तो प्रसव वेदना नहीं होती और पुत्र प्राप्त होता है। इस स्तोत्र से मोक्ष के इच्छुक मोक्ष पाते हैं। तथा समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। यथा—

यः पठेत नरो भक्त्या तस्य नश्यति किल्विबम् ।
गोहत्यायाः प्रभुच्येत ब्रह्मध्नो ब्रह्महत्यया ।
अपुत्रो लभते पुत्र कन्या चैवेप्सितं पतिम् ।
ये च मौक्षेषिणो लोके योगिनःसांख्य कपिलाः ।
सर्वान् कामनावारनोति मानवो नात्र संशयः ।

विनम्र निवेदन—इन स्तोत्रों के अलावा भी छोटे-बड़े कई स्तोत्र हरिवंश पुराण में आए हैं। किन्तु प्रमुख, महत्वपूर्ण, विशेषफल दायी तथा प्रभावी स्तोत्र यही हैं। इनके अतिरिक्त बलराम द्वारा प्रद्युम्न को 'आह्निक स्तोत्र' भी कहा गया है। जो पापनाशक, यश, बल,

बुद्धि, आरोग्य तथा पवित्रता को देने वाला व सद्गति प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण स्तोत्र है। किन्तु बहुत बड़ा (९७ श्लोकों से अधिक) होने से उसे यहाँ न दे पाने के लिए पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ। इच्छुक पाठक उसे मूल हरिवंश पुराण में देख सकते हैं।

१०. श्री विष्णुशतनामस्तोत्रम्

नारद द्वारा कहा गया भक्ति प्राप्ति स्तोत्र :

ॐ वासुदेवं हृषीशं वामनं जलशायिनम् ।
जनार्दनं हरिं कृष्णं श्रीवत्सं गरुड़ध्वजम् ॥
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं नरकान्तकम् ।
अव्यक्तं शाश्वतं विष्णुमनन्तमत मणययम् ॥
नारायणं गदाध्यक्षं गोविदं कीर्तिभाजनम् ।
गोवर्धनोद्धरं देवं भूधरं भुवनेश्वरम् ॥
वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम् ।
चक्रपाणिं गदापाणिं शङ्खपाणिं नरोत्तमम् ॥
वैकुण्ठं दुष्टदमनं भूगभे पीतवाससम् ।
त्रिविक्रमं त्रिकालज्ञं त्रिमूर्तिं नन्दकेश्वरम् ॥
रामं श्यामं हयग्रीवं भीमं रौद्रं भवोद्भवम ।
श्रीपतिं श्रीधरं श्रीशं मंगलं मंगलायुधम् ॥

दामोदरं दमोपेतं केशवं केशिसूदनम् ।
वरेण्यं वरदं विष्णुमानन्दं वसुदेवजम् ॥
हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
सकलं निष्कलं शुद्धं निर्गुणं गुणशाश्वतम् ॥
हिरण्यतनुसंकाशं सूर्यायुतसमप्रभम् ।
मेघश्यामं चतुर्बाहुं कुशलं कमलेक्षणम् ॥
ज्योतीरूपमयं च स्वरूपं रूपसंस्थितम् ।
सर्वज्ञं सर्व रूपस्थं सर्वेशं सर्वतोमुखम् ॥
ज्ञानं कूटस्थमचलं ज्ञानदं परमं प्रभुम् ।
योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम् ॥
ईश्वरं सर्वभूतानां वन्दे भूतमयं प्रभुम् ।

(केवल नामों का ही वर्णन होने से इसके अर्थ की आवश्यकता नहीं)

भक्ति व पवित्रता के लिए

शुभकामना—पाठकगण इन सभी स्तोत्रों से आवश्यकतानुसार चयन करके श्रद्धा, भक्ति, शुद्धि, संयम और नियमपूर्वक इनका पाठ करके अवश्य ही लाभ उठायेंगे। पाठकों का श्रम फलीभूत हो, उनकी श्रद्धा, ये स्तोत्र और ये पुराण उनका कल्याण करे। उनके दुख, कष्ट, संकट, रोग, बंधन, दरिद्रता, निसंतानता, दीनता,

अल्पआयु, तम (अज्ञान) तथा पापों का नाश करने वाले सिद्ध हों। ऐसी हमारी भगवान् विष्णु से हार्दिक प्रार्थना है।

॥ ॐ श्री रमापतये नमः॥

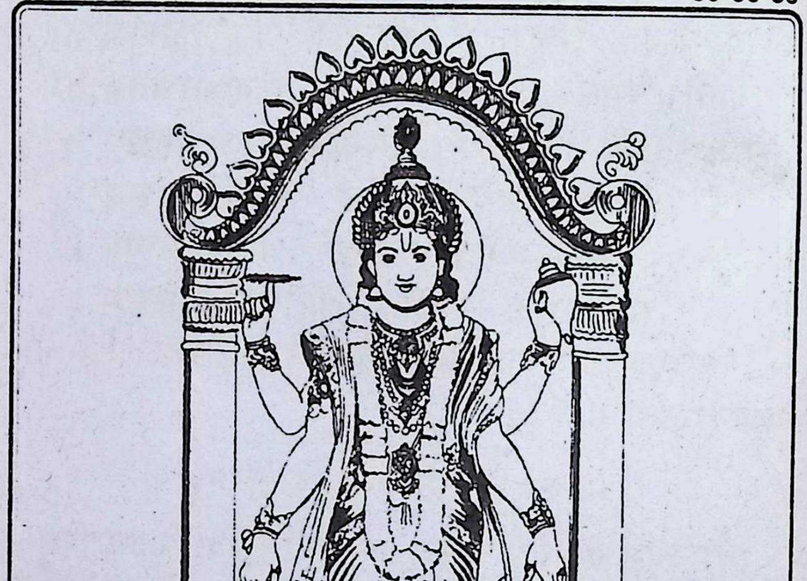

नि:सन्तान दम्पति को सन्तान प्रदान करने वाला व प्रचुर धन, यश, समृद्धि देने वाला एवं पापों को नाश करने वाला एक अति उत्तम ग्रंथ

प्रकाशकः- पूजा प्रकाशन, दिल्ली-6 (भारत)
PUBLISHED BY:- POOJA PRAKASHAN DELHI-6 (INDIA)